विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

RNI Number : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814
वर्ष : 9, अंक : 33
अप्रैल-जून 2024
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्य समागम एवं अलंकरण समारोह

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

शिवना कृति सम्मान

शिवना अलंकरण समारोह

चित्रमय झलक

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

शिवना कृति सम्मान

शिवना अलंकरण समारोह

चित्रमय झलक

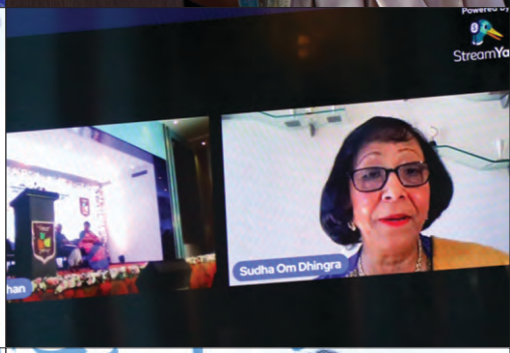

अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान

शिवना कृति सम्मान

कार्यक्रम में श्रोताओं की गरिमामयी उपस्थिति की चित्रमय झलक

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर'
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html

फेसबुक पर 'विभोम-स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)

बैंक खाते का विवरण-
Name: Vibhom Swar
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000312
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 33, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2024
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

क्रीसेंट रिज़ॉर्ट एंड क्लब सीहोर में आयोजित शिवना साहित्य समागम तथा अलंकरण समारोह के चित्र।

आयोजन के छायाचित्र
राहुल पुरविया

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 9, अंक : 33

अप्रैल-जून 2024

संपादकीय 3

मित्रनामा 5

कथा-कहानी

अधूरेपन के उस पार
रमेश शर्मा 6

चिड़ियाँ दा चम्बा
कमलेश भारतीय 9

काँघी-कढ़ाई
आकाश माथुर 13

नक़्क़ाशी
अनुजीत इकबाल 18

मोहभंग
शैल अग्रवाल 22

पेट्स केयर होम
सुनीता मिश्रा 28

कर्ज़
डॉ. मलिक राजकुमार 31

गुमशुदा सपने
डॉ. रंजना जायसवाल 33

भाषांतर

बाहर कुछ जल रहा है
हंगेरियन कहानी
मूल लेखक : लैस्ज़्लो क्रैस्ज़्नअहोरकाइ
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय 36

भूमि
पंजाबी कहानी
मूल लेखक : सुरिन्दर नीर
अनुवाद : जसविंदर कौर बिन्द्रा 40

लघुकथा

ज़िंदा
विजयानंद विजय 21

मूक अन्तरात्मा
बसन्त राघव 39

रिश्तों का आर्थिक गणित
सुभाष चंद्र लखेड़ा 49

कवच
प्रगति त्रिपाठी 51

संस्मरण

कोंपल के कंधों पर चमकती धूप
हंसा दीप 46

'दुर्घटना पुरुष'
गोविन्द सेन 50

ललित निबंध

रोटी एक आख्यान, एक महाकाव्य
डॉ. गरिमा संजय दुबे 52

शिवना प्रकाशन की घोषणाएँ 54

रेखाचित्र

कलई वाला
ज्योति जैन 55

व्यंग्य

सद्य जागृत का साक्षात्कार
कमलेश पाण्डेय 57

आलेख

आलोचना रचना का सुविधावादी संस्करण नहीं
डॉ. शोभा जैन 59

ग़ज़ल
शुभम 'शब' 34
नुसरत मेहदी 58
इस्मत ज़ैदी 'शिफ़ा' 60

शहरों की रूह

सिडोना-लाल पत्थरों का स्वर्ग
रेखा भाटिया 61

रपट

शिवना साहित्य समागम
आकाश माथुर 66

आख़िरी पन्ना 72

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष) 11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण-

Name of Account : Vibhom Swar, Account Number : 30010200000312, Type : Current Account, Bank : Bank Of Baroda, Branch : Sehore (M.P.), IFSC Code : BARB0SEHORE (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके: 1- नाम, 2- डाक का पता, 3- सदस्यता शुल्क, 4- चैक/ड्राफ़्ट नंबर, 5- ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र है), 6-दिनांक (यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

कृत्रिम बुद्धिमत्ता कहीं मनुष्य की मौलिकता और बुद्धिमत्ता को ही न हरण ले

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) आज के तकनीकी युग की एक अद्भुत देन है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता से कोई प्रश्न पूछा जाए तो हर कोण से सोच कर पूरे शोध के साथ उसके द्वारा उत्तर दिया जाता है। बड़ा ताज्जुब होता है। कभी-कभी मानव को यह भी सोचवा दिया जाता है या सोचने के लिए वे बिंदु दिये जाते हैं, जहाँ मानव मस्तिष्क पहुँच नहीं पाता या जो उसकी सोच से छूट गए होते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता लोगों को सोने की खान की तरह लगती है। मानव मस्तिष्क की यह नई-नई खोज है। ख़ूब प्रयोग किये जा रहे हैं। तरह-तरह के विषयों पर अलग-अलग जानकारियाँ जुटाई जा रही हैं। जिस तरह अंतर्जाल के आने से डायरियाँ और चिट्ठियाँ गुम हो गईं, उनके साथ ही वे सरल-तरल भावनाएँ, अभिव्यक्तियाँ, संवेगों से भीगे शब्द, आँखों से टपके आँसुओं से धुँधलाए शब्द, डायरियों में पड़े सूखे फूल भी अंतर्जाल के जाल में उलझ कर रह गए। अब अंतर्जाल से चिट्ठी अगर लिखी भी जाती है, तो बड़ी औपचारिक सी। उससे भी अधिक औपचारिकता वट्सएप की चिट्ठियों में होती हैं। विकास किसे अच्छा नहीं लगता! पर डर इस बात का लगता है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता कहीं मनुष्य की मौलिकता और बुद्धिमत्ता को ही न हरण ले।

अमेरिका के विश्वविद्यालयों में आजकल कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) पर बहुत काम हो रहा है। विश्व का कोई ऐसा विषय नहीं, जिस पर कोर्स (पाठ्यक्रम) तैयार नहीं हो रहे। एम बी ए और बिज़नेस मैनेजमेंट में तो विशेष कार्य हो रहा है, कंपनियों में जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता के ज्ञाता नहीं होंगे या जिनमें क्रिएटिविटी नहीं होगी, उनके लिए काम नहीं होगा। वैसे इसका उछाल आते ही बहुत-सी नौकरियाँ उपलब्ध करवाई जाएँगी। अंतर्जाल और सोशल मीडिया पर तो मैं बहुत बार लिख चुकी हूँ, उसके लाभ-हानि पर भी बहुत बात हो चुकी है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इंसानी मन के भावों को समझती हुई जब मस्तिष्क की सोच तक भी पहुँच जाएगी तो मानव का अपना कुछ नहीं रह जाएगा। अगर खुराफ़ाती लोग इसमें अधिक सक्रिय हो

संपादकीय

गए, तो कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्या हो सकता है?

यहाँ तो विज्ञान की पत्रिकाएँ इस तकनीक से हर लेख को परखने लगी हैं, कहीं किसी ने किसी से कोई हिस्सा चुरा तो नहीं लिया। क्या लेख मौलिक है? या उसके कुछ अंश किसी और लेख से उठाए गए हैं। क्योंकि विज्ञान में शोध होता है और शोध बिलकुल मौलिक होता है। उस पर लिखे गए लेख भी शुद्ध मौलिक होने चाहिए।

वैज्ञानिक तो इस तकनीक से यह भी ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे हैं, कि कैसे पुरानी दवाइयों से नई पैदा हो रहीं या नई बीमारियाँ जो फ़ैल गई हैं, को ठीक किया जा सकता है! इस तकनीक से दुनिया भर में हर विषय की जानकारी ली जा सकती है। निर्भर यह करता है कि विचारों और सोच को इस तकनीक के माध्यम से कैसे प्रयोग में लाया जा सकता है? इसका उदाहरण हाल ही में मिला और इस विषय पर लिखने की ज़रूरत महसूस हुई।

हुआ यूँ, विभोम-स्वर के लिए बहुत कहानियाँ छपने के लिए आती हैं। त्रैमासिक पत्रिका है और हर तीन महीने बाद ख़ूब कहानियाँ पढ़ती हूँ। इस बार एक नए लेखक की कहानी आई। उस कहानी का क्राफ्ट मुझे अजीब लगा। कहानी पढ़कर ऐसा महसूस हुआ कि कहानीकार प्रथम पुरुष, द्वितीय और तृतीय पुरुष का अंतर भी नहीं जानता। लगता था कई लोगों ने अपने विचार देकर कहानी लिखी है, पर उन्हें कहानी का मूल तत्व ही नहीं मालूम। कहानी लिखना भी एक कला है। वह कला ग़ायब ही थी। मैंने कहानी लौटा दी तो उस लेखक ने बड़ी शान से लिखा कि उसके विचारों और सोच को कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने कहानी का बाना पहनाया और आपको कहानी पसंद नहीं आई।

महसूस हुआ, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और प्राकृतिक बुद्धिमत्ता का अंतर तो हमेशा रहेगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए बनाई है। अपने जीवन को आसान करने के लिए। सोशल मीडिया के प्रति जिस तरह लोग सतर्क रहते हैं, उसी तरह इसके प्रति भी सतर्क रहना पड़ेगा, कहीं ऐसा न हो कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता स्वाभाविक, असली और प्राकृतिक बुद्धिमत्ता को निगल जाए और कृत्रिम बुद्धिमत्ता विश्व को चलाने लगे। हर नई तकनीक कुछ देती है तो कुछ लेती भी है। विकास आगे बढ़ाता है तो पीछे भी बहुत कुछ छूट जाता है। देखते हैं, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) भविष्य के गर्भ में मानव की झोली में क्या डालती है ? क्या परिणाम सामने आते हैं ?

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

अंतत: प्रकृति की ही तरफ़ लौटना पड़ेगा, क्योंकि उसी के पास हमार सारे प्रश्नों के उत्तर हैं तथा समस्याओं के समाधान भी। जैसे-जैसे हम प्रकृति से दूर होते जाएँगे, वैसे-वैसे हमारी समस्याएँ बढ़ती जाएँगी, मानसिक भी और शारीरिक भी। मानव जीवन और प्रकृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं यह अंतत: हमें समझना ही होगा।

मित्रनामा

लेखनी को सलाम

सलाखों को झकझोरते हाथ और हवा में लटकते पाँव को पढ़ते हुए बदन में सिहरन हुई। पुरुष सत्ता की भुक्त-भोगी मैं भी हूँ, इसलिए ख़ूब रिलेट कर पाई। अनिल प्रभा कुमार की लेखनी को सलाम! जीवन की ऐसी कठोर तहों को पलटना इतना आसान नहीं होता। बड़ी कुशलता से अनिल जी ने उसे उकेरा है, आँखें नम हुईं और कई बूँदें टपक पड़ीं। मेरी तरफ से बधाई स्वीकार करें।

-अनुभा योगराज सिंह, दिल्ली

000

पठनीय और सारगर्भित

विभोर-स्वर का जनवरी-मार्च 2024 अंक मिला। कहानी और साक्षात्कार आलेख सभी पठनीय और सारगर्भित हैं। ख़ासकर 'अमेरिका में राम' रेखा भाटिया जी का जानकारी प्रधान आलेख अच्छा लगा।

-अरुण नामदेव

000

अविश्वसनीय अनुभव

गुलज़ार का एक शेर है, जिसका ज़िक्र यहाँ मैं ज़रूरी समझता हूँ - ज़िंदगी यूँ हुई बसर तन्हा / क़ाफ़िला साथ और सफ़र तन्हा। यह शेर सोशल मीडिया पर एकदम सटीक बैठता है, क्योंकि कहने को तो आप सबके साथ रहते हैं, पर ये साथ आभासी होता है, दरअसल आप अकेले ही होते हैं! आभासी संसार आपके समक्ष खुला रहता है, यदि आप बुद्धि और विवेक से इसका उपयोग कर पाते हैं तो ठीक, नहीं तो पतन और दिशाहीनता की प्रबल संभावनाएँ यहाँ पग-पग पर विद्यमान हैं। किसी से सदेह मिलने और संवेदना के आदान-प्रदान में जो आनन्द है, क्या वैसा ही आनन्द सोशल मीडिया पर भी प्राप्त होता है? अगर उदासी और अवसाद आपके भीतर विद्यमान है, तो उसे सोशल मीडिया पर जाकर कोई कैसे दूर कर सकता है और कब तक दूर कर सकता है ? आनन्द के स्रोत हमें हमारे भीतर ही तलाशने पड़ेंगे, क्योंकि अगर वह स्रोत हम बाहर खोजने जाते हैं, तो वह अधिक देर तक टिकने वाला नहीं होगा। सोशल मीडिया हो या असल ज़िंदगी तुलना से बच कर हमें अपना काम करते रहना चाहिए, क्योंकि तुलना करते ही उदासी और अवसाद में घिर जाना लाज़िमी है। सोशल मीडिया पर जाकर हमें ऐसे लोगों से, ऐसी विचारधाराओं से जुड़ना चाहिए, जो हमारे सर्वांगीण विकास में उर्वरक का काम करें। नकारात्मक लोगों और विचारों को डिलीट करते रहने में ही हमारी भलाई है!

लक्ष्मी शर्मा की लेखनी से परिचित ही नहीं प्रभावित भी रहा हूँ, सो जब उनका साक्षात्कार दिखाई दिया, तो सौ काम छोड़कर उसे ही पढ़ने बैठ गया। पूछनेवाले ने जिस बेबाकी से प्रश्न पूछे हैं, जवाब भी उसी साफगोई से दिये गये हैं। स्त्री विमर्श के नाम पर देह विमर्श की वकालत करने को ग़लत मानते हुए लक्ष्मी शर्मा ने स्त्री को यौनिकता से परे, बौद्धिकता के खाँचे में फिट करके देखने की ताकीद की है। स्त्री जो सोचती-विचारती है, अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता उसे है कि नहीं, यह बात स्त्री विमर्श की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। यौनिकता से पहले उसके विचारों और निर्णयों को सम्मान मिलना चाहिए। हिन्दी के प्रवासी लेखकों से संबंधित प्रश्न पूछे जाने पर जो उनका जवाब है, वो भी प्रशंसनीय है। अपने व्यस्ततम जीवन में प्रवासी लेखकों को न जाने कितनी ही चुनौतियों से जूझना पड़ता हो ! भारत में रह कर लेखन और भारत से बाहर सर्वथा प्रतिकूल और भिन्न परिस्थितियों में हिन्दी लेखन दोनों में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। लेकिन प्रवासी लेखकों से वाकई उम्मीदें रखना लाज़िमी है।

विस्मृतियों के धूल-गर्द को झाड़ कर स्मृतियों के तलघर में भटकते तो हम सब हैं, लेकिन कम ही लोग जानते हैं, कि कैसे उन स्मृतियों को शब्दों के पैरहन पहना कर एक रोचक संस्मरण का रूप दिया जाए। अनिल प्रभा कुमार एक सशक्त और सक्षम लेखिका हैं जिनकी रचनाएँ अद्वितीय होती हैं, सो 'सलाखों को झकझोरते हाथ और हवा में झूलते पाँव ' की अवहेलना न कर सका। स्त्री के साथ बर्बरता और हिंसा के मामले में हमारा समाज अव्वल है, आए दिन अख़बारों, न्यूज चैनलों और सोशल मीडिया पर ऐसी घटनाओं को देखता हूँ, जो हृदयविदारक, वीभत्स और भर्त्सनीय होते हैं। लेकिन हमारा समाज इन अमानवीय घटनाओं को रोकने की बजाए किसी तमाशबीन की तरह या तो तमाशा देखता है या अपनी मूक सहमति देकर अपराध को ही बढ़ावा देता है ! परिवार या परिवार के बाहर स्त्री कहीं सुरक्षित नहीं है, जबकि हम अपनी सभ्यता और संस्कृति की दुहाइयाँ देते नहीं थकते। पुरुष हिंसा करें तो बात समझ में आती है कि वे तो स्त्रियों से कम सभ्य होता है, लेकिन स्त्रियाँ अपनी ही सजातीय निरीह स्त्री के प्रति उसे हिंसा करने के लिए उकसाए, तो यह तो असभ्यता की पराकाष्ठा हो गई। मर्द तो अपनी मर्दानगी का नाजायज़ फायदा औरत को पीटकर उठाता है, लेकिन एक औरत को तो एक औरत के दर्द का अहसास होना चाहिए ! पितृसत्तात्मक समाज के सामंती सोच और परंपरा की पक्षधर और संरक्षिका के रूप में हमेशा ही स्त्री ने स्त्री का पुरुषों से अधिक शोषण किया है ! एक प्रबुद्ध लेखिका अनिल प्रभा कुमार को भी यह सब झेलना पड़ा, यह मेरे लिए एक अविश्वसनीय अनुभव था !!

रमाकांत शर्मा जी की कहानी ने थोड़ा सा हैरान परेशान कर दिया, कि जो वंदना उदय को प्रेम करती थी उसका बर्ताव उदय के प्रति उदासीन-सा क्यों होता चला गया। जब कारण का पता चला तो बड़ा ही अटपटा सा लगा, कि कोई अधेढ़ उम्र का व्यक्ति अपनी बेटी की उम्र की लड़की से प्रेम करने लगा है। लेकिन जब पूरी कहानी पढ़ी तो अपनी भूल का अहसास हुआ, कि वह प्रेम शारीरिक न हो कर आत्मिक सुख प्राप्त करने का एक ज़रिया था! किसी को देख कर ग़ज़ल लिखना और फिर उसे ही सुना कर आनंदित होना कोई अपराध तो नहीं है? डॉ. रमाकांत शर्मा ने वाकई एक अच्छी कहानी लिखी है, जिसमें मानवीय मन की जटिलता को सहजता से अभिव्यक्त किया गया है।

-नवनीत कुमार झा, हरिहरपुर

000

अधूरेपन के उस पार

रमेश शर्मा

रात ढलान पर थी बावजूद इसके अँधेरा अब भी अपने पूरे शबाब पर था। सुबह के यही कोई चार बजने को थे। मुर्गे बाँग देने की तैयारी ही कर रहे थे कि अचानक उसकी नींद खुल गई। उसकी आँखें एकदम लाल दिख रहीं थीं। उसके चेहरे से ही लग रहा था कि उसकी नींद आज फिर अधूरी ही रह गई। सिर्फ नींद की ही कौन कहे, देखा जाए तो अधूरेपन की एक लम्बी फेहरिस्त है उसके हिस्से ! उसके जीवन में तो बहुत कुछ ऐसा है जो अधूरा ही रहा आया है अब तक। उसने अब तक जो उम्र बिताई क्या वह उसकी मर्ज़ी से बीत सकी ? शायद नहीं ! उसकी मर्ज़ी भी जीवन में अधूरी ही रह गई। उम्र के इस बीतने पर भी उसका पूरा हक़ कभी नहीं रहा। उसे तो घर में हर वक़्त पति और बच्चों की ख़ातिरदारी में ही खटते हुए अपनी उम्र बितानी पड़ी। ऑफ़िस में बॉस का हुक्म बजाना पड़ा और इस तरह घर और घर के बाहर बिताई हुई उम्र दूसरों के नाम ही चढ़ गई। उसकी देह भी पूरी तरह कभी उसकी मर्ज़ी की देह कहाँ रही ! उस पर तो पति ने ही अपना अधिकार जमाए रखा, मानों वह मिट्टी का कोई बेजान पुतला हो। और उसका मन... वह तो हमेशा उसके क़ाबू से बाहर ही होता रहा। आज उसकी नज़र जहाँ तक जाती है... यहाँ से वहाँ तक हर जगह एक पसरा हुआ अधूरापन ही नज़र आता है उसे ! ठहरे वक़्त में वह अक्सर सोचती है ....उसके हिस्से ऐसा क्या है अब तक, जिसको लेकर वह कह सके कि मुकम्मल तौर पर वह उसका अपना ही है !

नींद से जागते ही कमरे का झरोखा खोलकर उसने बाहर झाँका। उफ्फ... बाहर अब भी कितना घना अँधेरा है। उसने आसमान की तरफ देखा..चाँद आसमान में अब भी चहलक़दमी करता हुआ दिख पड़ा उसे। उसने झट से झरोखा बंद कर दिया, पर चाँद का चेहरा अब भी उसके भीतर आता-जाता रहा। उस समय उसके भीतर इच्छा उत्पन्न हुई कि कोई उसके सामने आकर उसके लिए यह गीत गा दे- चौदहवीं का चाँद हो या आफ़ताब हो, जो भी हो तुम ख़ुदा की क़सम लाजवाब हो ! उसे कभी पता ही नहीं चला कि उसके भीतर की इच्छाएँ एक-एक कर किस तरह उसके जीवन से रुख़सत होती चली गईं। पर आज अचानक मन के भीतर इस तरह की इच्छा उत्पन्न होने से उसे भीतर से थोड़ी गुदगुदी होने लगी। उसे एहसास हुआ कि उसके भीतर अब भी इच्छाएँ जीवित हैं। वर्षों बाद अपने भीतर आए इस तरह के अप्रत्याशित बदलाव से उसे थोड़ा अजीब सा अनुभव भी होने लगा।

कहीं वह शुचिता के मार्ग से विचलित तो नहीं हो रही ? इस तरह के सवालों का सामना भी उसे अपनी ही दुनिया के भीतर करना पड़ा। ज़िंदगी के एक ही ट्रेक पर चलती हुई मन की गाड़ी को उसी ट्रेक पर चलने की आदत सी हो जाती है। कुछ समय के लिए उसे दूसरी ट्रेक पर ले जाने की इच्छा मात्र से मन में तरह तरह की आशंकाएँ उठने लग जाती हैं। मन की गाड़ी अनियंत्रित सी होने लग जाती है। शुचिता के उल्लंघन को लेकर ऐसा तो कुछ हुआ नहीं उसके जीवन में कभी कि इस तरह उसे अशांत होना पड़े ! वह सोचने लगी कि शुचिता के नाम पर स्त्रियाँ इतनी अपराधबोध से क्यों ग्रसित होने लग जाती हैं ? यह शब्द आख़िर गढ़ा किसने है कि स्त्रियाँ इस शब्द से इतना भय खाने लग जाती हैं ?

उसे रह-रह कर यह बात उद्वेलित करने लगी है कि कोई उससे आज मिलने आने को कहकर गया है। इसे लेकर मन के अवचेतन में कोई कौतूहल रहा हो इसलिए भी उसकी नींद आज जल्दी खुल गई है। नींद खुल जाए सुबह-सुबह फिर दोबारा लौटती कहाँ है। उसके लिए तो फिर रात की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

उसने थोड़ी देर के लिए फिर झरोखे को खोलकर बाहर झाँका। झरोखे के उस पार की ठंडी हवा ने इस बार जब उसकी देह को छुआ तब आभास हुआ कि बाहर कितना सर्द मौसम है। उसने झट से कमरे का झरोखा फिर बंद कर दिया और कुछ देर तक कमरे में यूँ ही टहलती रही। अटैच बाथरूम के वॉश बेसिन के पास जाकर नल की टोंटी खोलकर चेहरे और आँखों को पानी के छींटो से धोने की उसकी इच्छा हुई। इस बीच घड़ी का अलार्म बज उठा। आँखों को धोने के बजाय उसका ध्यान घड़ी की तरफ़ अचानक चला गया।

रमेश शर्मा
92, श्रीकुंज, बीज निगम के सामने,
बोईरदादर, रायगढ़ छत्तीसगढ़ 496001
मोबाइल- 9752685148, 772297501
ईमेल- rameshbaba.2010@gmail.com

घड़ी देखकर उसे याद आया कि यह घड़ी तो उसे वर्षों पहले किसी ने गिफ़्ट की थी। वह उसे 'किसी ने' कहकर आख़िर क्यों याद कर रही है? क्या उसका नाम भी उसे अब याद नहीं रहा ? आज उसके ज़ेहन में सवालों का सिलसिला थमने का नाम ही नहीं ले रहा था।

गिफ़्ट देने वाले को याद करते हुए धीरे-धीरे उसके मन में नए-नए सवाल आने लगे ... आख़िर वह उसकी क्या लगती है कि उसने उसे इतनी महँगी घड़ी गिफ़्ट की थी ? क्या रिश्ता है उससे उसका कि आज उसकी मुलाक़ात होने भर की संभावना से वह भीतर से इतनी बेचैन होने लगी है ? उस रिश्ते को वह टटोलने की कोशिश करने लगी ? सोचने लगी कि आज उससे मिलकर वह क्या कहेगी ? उसे समझ में नहीं आ रहा था कि बातों का सिरा जिसे वह पकड़ना चाह रही है, वह कहाँ गुम हो गया है।

वह नल की टोटी खोलकर अपनी अंजुरियों के सहारे चेहरे पर पानी का छींटा मारने लगी। ओह्ह..पानी कितना ठंडा है। देहरादून में ठंड के महीने में सुबह-सुबह नल की टोटी से निकल कर बाहर आ रहे पानी को छूना कितना चैलेंजिंग होता है। उसे याद आया ...कभी-कभी ठंड के दिनों में वह उसके साथ देहरादून की सड़कों पर मॉर्निंग वॉक पर निकल जाया करती थी। वे दोनों आपस में क़दम ताल करते हुए झील तक कब पहुँच जाते थे पता ही नहीं चलता था। वे दोनों आपस में दोस्त थे या और किसी रिश्ते के तार उनके बीच धीरे-धीरे जुड़ने लगे थे, इसका खुलासा उनके बीच कभी हो नहीं पाया।

एक दिन उनमें शर्त लगी थी कि एकदम सुबह-सुबह ठंडे पानी से जो पहले नहा लेगा तब दूसरा उसे महँगी घड़ी गिफ़्ट करेगा। उसका घर उसके घर के बगल में ही था। वह वहाँ किरायेदार के रूप में कुछ दिनों से आकर रहने लगा था। पच्चीस की उम्र का हँसमुख जवान। बेंक में प्रोबेशनरी ऑफ़िसर था वह। बातचीत में किसी को अपनी ओर आकर्षित कर लेने की कला शायद उसे विरासत में मिली हो। वह भी उन दिनों तेईस की थी और कॉलेज में पीजी करके नौकरी की तलाश में निकल पड़ने वालों की जमात में शामिल होने की तैयारी ही कर रही थी। उनके घरों के छत इस तरह आपस में भौगोलिक रूप से संलग्न थे कि दोनों अगर एक साथ अपने-अपने घर की छत पर चढ़ें तो उनका चेहरा एक दूसरे के एकदम आमने सामने इस पोजीशन में आ जाए जैसे कि कोई आईने में अपना ही चेहरा देख रहा हो। उनकी पहली मुलाक़ात इसी छत पर हुई थी जब वह एक दिन छत पर धूप सेंकने के लिए बैठी थी।

'धूप सेंकना सेहत के लिए लाभदायक होता है' यह कहते हुए उस दिन पहली बार वह उससे मुख़ातिब हुआ था। उसे उसका इस तरह मुख़ातिब होना बुरा नहीं लगा था। पड़ोसी होने का एक धर्म भी होता है, जिसका उसने पालन किया था। बातचीत की शुरुआत उसने की थी फिर उस सिलसिले को आगे बढ़ाने की ज़िम्मेदारी अब उसके ऊपर आ गई थी। और फिर इस ज़िम्मेदारी को वह निभाती चली गई थी। उन दिनों सुबह-सुबह छत पर आकर घंटों बातचीत करना उनके दिनचर्या का एक हिस्सा बन गया था।

कड़कड़ाती ठंड में एक दिन सुबह-सुबह छ: बजे नहा धोकर तैयारी के साथ जब वह छत पर पहुँची तो छत पर आँखें मलते हुए उसे उसका चेहरा दिख पड़ा था।

'अरे तुम इतनी सुबह तैयार हो गईं ?' - आँखें मलते-मलते ही उसने पूछ लिया था

'और क्या ! मैं तो एकदम ठंडे पानी से नहा-धोकर सीधे छत पर आ गई हूँ!' उसने मुस्कराते हुए उससे कहा था।

'तो क्या आज कहीं जाने की तैयारी है ?' पूछते हुए उसकी आवाज़ धीमी हो गई थी।

'न... आज नहीं ! बिलकुल नहीं ! आज तो तुम्हारा भी छुट्टी का दिन है।' - उसकी ओर से एक चहकता हुआ जवाब आया था।

'तो फिर इतनी सुबह नहाना-धोना ?'

' ओह्हो कितना जल्दी भूल जाते हो तुम ! ठन्डे पानी में पहले नहाने और घड़ी गिफ़्ट करने वाली बात भी तुम जल्दी भूल गए!'

'ऐसी बेवक़ूफ़ी न किया करो, तुम्हें कहीं सर्दी लग गई तो ?" उसकी बातें उसे उस दिन अच्छी लगीं थीं क्योंकि उन बातों में उसके सेहत को लेकर एक चिंता का भाव था।

वे भी क्या दिन थे जब सुबह-सुबह ठंडे पानी में नहा लेने की हिम्मत इस देह के भीतर मौजूद थी। देह की हिम्मत कहें या मन के भीतर का उत्साह ! .. पर वे दिन सचमुच कितने ख़ूबसूरत दिन थे। अब आलम यह है कि इस भारी ठंड में चेहरे पर पानी का छींटा मारने में भी आज उसे कितनी परेशानी महसूस हो रही है, मानों मन के भीतर का उत्साह और देह के भीतर हिम्मत की मौजूदगी दोनों जीवन से जैसे विदा हो गए हों। उसने आज उस घड़ी की ओर जी भरकर निहारा। टिक-टिक करती घड़ी की सुइयाँ जैसे उससे बातें करने लगीं हों। घड़ी के भीतर बैटरी चार्ज अवस्था में हो तो वह चलती रहती है। उसने इस घड़ी के भीतर लगने वाली बैटरी का ध्यान हमेशा रखा। बैटरी डिस्चार्ज होने से पहले ही उसने नई बैटरी लाकर उसके भीतर लगा दिया। घड़ी के बंद हो जाने की चिंता ने उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित किया था या बात कुछ और थी, इस पर उसका ध्यान कभी गया हो उसे याद नहीं। पर आज उसे लगा कि उससे जुड़ी कोई तो बात थी, जो उसके अवचेतन में बसी रहकर उसे ऐसा करने के लिए निर्देश देती रही। हरेक चीज़ की उम्र होती है, इस घड़ी की भी उम्र अब चौबीस के पार जाने को थी। उसे आश्चर्य हुआ कि यह घड़ी आज भी चल रही है। बहुत सी चीज़ें उम्र के पार जाकर भी अपने अस्तित्व को बचाए रखती हैं ! उसे लगा कि देहरादून में आज भी सब कुछ वैसा ही है, बस उसके युवावस्था के जोश से भरे हुए दिन कहीं उड़कर अब दूर जा चुके हैं। कहते हैं दिन जो उड़कर चले जाते हैं फिर लौटकर कभी नहीं आते। कोई पूछे कि वह उन दिनों को क्यों नहीं बचा पाई तो उसके पास अब कोई जवाब नहीं है। इसका जवाब तो ज़्यादातर इंसानों के पास नहीं होता है। कुछ सवालों के जवाब क्यों नहीं होते ? वह आज उसे 'किसी ने' शब्द से क्यों संबोधित कर रही है ? ..वह सोचती चली जा रही थी।

वह अब पचास को छू रही है। वह चकित है कि पूरे 24 वर्षों के बाद उसे इस तरह भी वह प्रपोज़ करेगा जबकि उसे अच्छी तरह मालूम

है कि वे दोनों शादीशुदा हैं, और अपने-अपने परिवारों की गाड़ी का बोझ काँधे पर लादे हुए ज़िंदगी की सीधी और सपाट ट्रेक पर चले जा रहे हैं। क्या किसी से प्रेम का इज़हार करने के लिए भी किसी को इतने बरस लग जाते हैं? इस सवाल का भी उसके पास कोई जवाब नहीं है। उसने मन ही मन सोचा ... " जीवन ही तो है ! यहाँ कुछ भी संभव है। किसी अधूरी कहानी की टूटी हुई डोरी हवा में कब लहराने लगे कुछ कहा नहीं जा सकता। संभव है कुछ लोगों के जीवन में ऐसा भी कभी होता हो। पर उन कुछ लोगों में एक दिन वह भी शामिल हो जाएगा उसने सोचा तक नहीं था !"

और उस दिन की घटना से एक अजीब तरह के अनुभव का दौर उसके जीवन में चलकर आया था।

"अचानक चौबीस वर्षों बाद यूनिवर्सिटी कैंपस में कोई परिचित अफरा-तफरी में मिले, उससे उसकी बातचीत बस कुछ ही देर की हो, और इसी कुछ देर की बातचीत के दरमियान ही वह पूरी हिम्मत के साथ उससे कह दे .... "आई लव यू मंजू ! मैं तुम्हें चौबीस वर्ष पहले यह कहना चाहता था, पर कभी हिम्मत न कर सका। शायद तुम्हें याद हो न हो पर मुझे याद है सब कुछ आज भी, हमारे बीच बातचीत का सिलसिला लम्बा ज़रूर था पर इस तरह की बातचीत के लिए अपने आपको हम कभी तैयार नहीं कर सके और मन की बातें मन के भीतर ही रह गईं। माफ़ करना मंजू... उन दिनों की बातें जो मेरे मन में ही रह गई थीं आज मैंने उसे हिम्मत के साथ कहकर अपने मन का बोझ उतार लिया है। मंजू तुम अब भी वैसी ही लगती हो मुझे ! एकदम कमसिन और ख़ूबसूरत!" बस पाँच मिनट की बातचीत में उसने सब कुछ एक ही साँस में कह दिया था।

उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि वह उसके साथ किस तरह का व्यवहार करे। एक बार मन में आया कि वह उसे डाँट कर इस तरह कुछ भी कहने से मना कर दे। आज वह एक शादीशुदा स्त्री है और एक शादी शुदा स्त्री से कोई इस तरह की बातचीत कैसे कर सकता है? इस तरह का सवाल भी उसके ज़ेहन में उस समय आने लगा था। पर उस दिन वह उससे कुछ कह नहीं पाई थी। जीवन में उसकी तरह अब तक कोई उसे नहीं मिला था जिसने इस तरह उसकी सुन्दरता की तारीफ़ की हो। उसके पति ने उसकी सुन्दरता को लेकर कभी इस तरह उसकी तारीफ़ नहीं की थी और अंतत: एक अधूरेपन की चोट उसके मन के भीतर वर्षों से आकार लेती रही थी। अपनी सुन्दरता का ज़िक्र आते ही अमूमन औरतें भीतर से खिल उठती हैं। एक शादीशुदा औरत होते हुए भी न जाने क्यों उसे उसकी बातें उस दिन अच्छी लगी थीं। पचास को छूने की उम्र में उसकी सुन्दरता का ज़िक्र उसके कानों को गुंजित कर गया था। एक औरत अपने जीवन में बहुत कुछ सुनने की इच्छा लिए इस धरती पर आती है। कई बार लम्बे इन्तज़ार के बाद भी चीज़ें कानों में सुनाई ही नहीं पड़तीं और उसे सुनने की इच्छा लिए ही एक स्त्री का जीवन समाप्त होने लगता है। यह जीवन है बड़ा विचित्र ! सुनने की इच्छा भी रखो तो कई बार कोई सुनाने वाला ही नहीं मिलता। पर उसे यह चमत्कार की तरह लगा कि चैबीस वर्ष बाद ही सही पर इच्छित चीज़ों को कोई सुनाने वाला उसे मिल ही गया था। वह भली-भाँति जानती-समझती है कि उसकी संगत या उसके साथ किसी रिश्ते को लेकर कुछ सोचना-विचारना आज उसके लिए बिलकुल बेमानी है, पर जब से यह प्रसंग उसकी स्मृति में जीवित होकर सामने आकार लेने लगा है वह जीवन में पसरे अधूरेपन के दर्द से थोड़ी राहत महसूस करने लगी है। उसे अच्छी तरह मालूम है कि अपने जीवन में किसी दूसरे के लिए अब कोई स्पेस ही नहीं बचा है, फिर भी लगता है उसे कि इस 'किसी ने' नामक शख्स ने उसके जीवन की घड़ी के भीतर वर्षों से डिस्चार्ज पड़ी बैटरी को बदलकर जैसे नई बैटरी लगा दी है। उसका मन इसी बात को सोच सोचकर आज उद्विग्न है- "अधूरेपन की नदी को पार कराने वाले शख्स, कई बार जीवन में अचानक मिलते हैं, और फिर मन के भीतर मृत पड़े उत्साह को पुनर्जीवित कर दूर चले जाते हैं।"

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 11 मार्च 2024

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

चिड़ियाँ दा चम्बा

कमलेश भारतीय

माँ कहती थी, 'भप्पी। जब तक मैं हूँ तब तक आ जाया कर। मेरे बाद कौन पूछेगा ? माँ से ही मायका होता है। माँ के बाद भाई-भाभी कैसा व्यवहार करें, कह नहीं सकती।'

आज माँ की कही यह बात बहुत याद आ रही है। भाई ने फ़ोन पर जो कहा उसके बाद तो माँ की कही बात याद कर बेसाख्ता आँसू निकल आए।

'देख भप्पी। आना तो तेरी ख़ुशी। रोक नहीं सकता लेकिन अब तेरी भाभी बूढ़ी हो गई है। काम होता नहीं। मैं भी जैसी हालत में हूँ तुझे पता है। कहीं बाहर अंदर जाकर कुछ ला नहीं सकता। फिर बता कैसे स्वागत करूँगा तेरा।'

'वीर, मैं बना दूँगी न चार रोटियाँ और सब्ज़ी। बस। बहुत मन है आने का, मिलने का।'

'लो, यदि मायके आकर भी रोटियाँ ही थापनी हैं तो अपने घर ही खा पका लेना। यहाँ आकर काम क्यों करना ? और अब तू भी कौन-सी जवान रह गई है जो रोटियाँ पका लेगी और सब्ज़ी बना लेगी सबकी।'

अरे। भाई ने कितनी आसानी से मायके आने से इंकार कर दिया। कितनी मासूमियत से आने से रोक दिया। सच ही तो कहती थी माँ कि भप्पी। मेरे बाद तू तरसेगी इसी घर को। इन्हीं गलियों को। बस। यादें ही रह जाएँगीं। कितना सच बोल गई थी माँ। मैं नादान नहीं समझी थी।

माँ कितनी सच्ची और कड़वी बात कह गई थी। मैं भोली कहने लगी -'नहीं माँ। मेरे भाई-भाभी बहुत अच्छे हैं। ऐसा क्यों कहती हो।'

'अरी भोली लड़की एक पर्दा है जो मैंने डाल रखा है तेरी आँखों पर। बाद में पता चलेगा तुझे जब आँखों की शर्म उतर जाएगी। जब इनकी आँखों का पानी मर जाएगा। तब तू कहेगी कि माँ क्या कहती थी और जो कहती थी सच कहती थी।' तो क्या आज वह पर्दा गिर गया ? वह आँखों की शर्म उतर गई ? भाई का वह प्यार का मुलम्मा उतर गया। माँ की लीपापोती सब बारिश के पानी से धुली दीवारों जैसी एक ही बार में उतर गई ? उतर गई ऊपरी कलई ?

कितना भरा-पूरा परिवार था हमारा। छह भाई-बहन। पाँच बहनें और एक भाई। राखी के दिन सारी बहनें जब वीर को राखियाँ बाँधतीं तो उसकी बाज़ू भर जाती और वह कहता कि मुझे भगवान् इतना दे कि सबको तोहफ़े पे तोहफ़े दे पाऊँ। और आज ? आज कैसे मायके आने से भी बड़ी मासूमियत से रोक रहा है। वीर। मैं तब भी कहती थी कि मुझे कोई तोहफ़े-वोहफ़े नहीं चाहिए, बस मेरा माँ जाया वीर चाहिए और आज उसी वीर ने कैसे रुला दिया। आँसू हैं कि रुकने का नाम नहीं ले रहे। झर-झर बहते जा रहे हैं।

एक वह दिन भी था जब मैं शादी के बाद पहला फेरा डालने ससुराल से आई थी। बस स्टैंड पर यही भाई कितना बेचैन खड़ा मेरी राह देख रहा था। बस से उतरते ही हमारी ओर भागा-भागा आया था और गले लगकर रोता चला गया था। फिर हमारे लिए पहले से तय रिक्शा पर हमारा

कमलेश भारतीय
1034 बी, अर्बन एस्टेट -2, हिसार-125005 (हरियाणा)
मोबाइल -9416047075
ईमेल– bhartiyakamleshhsr@gmail.com

अटैची रखकर पीछे-पीछे स्कूटर चलाता आया और गली में आते ही माँ को आवाज़ दी -बीजी। भप्पी आ गई। भप्पी आ गई। गली के सभी घरों की खिड़कियाँ पट-पट खुलीं मुझे देखने के लिये। यह एक बेटी का स्वागत था। आँखों में प्यार के तोरण थे।

सच एक दिन में ही कितना कुछ बदल जाता है एक लड़की का। जीवन में जैसे एक बहुत बड़ा तूफ़ान आ जाता है। सब कुछ बदल जाता है -घर संसार से लेकर अंतर्मन तक। कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है और क्या से क्या हो जाती है एक लड़की। अपने पराये हो जाते हैं और पराये अपने। नए रिश्ते अपनाने पड़ते हैं और पुराने मन के कोने में छिपाने पड़ते हैं। यह कितना बड़ा फ़ासला एक ही दिन में तय करना पड़ता है एक लड़की को। कैसे वह एक-एक सहेली से मिली थी और कैसे अपने सारे कपड़े उसी गूँगे दर्जी से ही सिलवाती रही थी। वही जलोखाना के गोलगप्पे ही मज़ेदार लगते थे जिन्हें देखते ही मुँह में पानी आ जाता था। वह ठंडी सड़क और शालीमार बाग -सब जगह गई थी। कितनी पसंद नापसंद हो जाती हैं या भुलानी पड़ती हैं एक लड़की को। कितनी नई पसंद बन जाती हैं। यही भाई सब जगह लेकर गया -यह ले लो। यह खा लो।

आज वही भाई कहता है कि क्या करोगी आकर ? अरे क्या करती हैं लड़कियाँ मायके आकर ? यह भी कोई कहने या पूछने की बात है। लड़कियाँ अपनी स्मृतियों में खो जाने के लिए आती हैं और उस पर भी सवाल या रोक?

जब तक माँ रही हर साल बच्चों की छुट्टियों से पहले ही पापा का अंग्रेज़ी में लिखा ख़त आ जाता जैसे कोई आदेश-नो एक्सक्यूज़। मस्ट कम विद चिल्ड्रन इन हॉलीडे। माँ-पापा को काला अंग्रेज़ कहती थीं कि बता हिन्दी में दो अक्षर नहीं लिख सकता तेरा पापा। अंग्रेज़ बना फिरता है। हम सब भाई-बहन जब इकट्ठे होते तो पापा को काला अंग्रेज़ कहते और वे बस मुस्कराते रहते और मज़ा लेते। मेरे बच्चों समेत आने पर माँ को जैसे नई से नई सब्ज़ी बनाने का चाव चढ़ जाता। और पापा भी सब्ज़ी मंडी जाकर थैले भर-भर कर फल और सब्ज़ियाँ लाते। वीर शाम को ऑफ़िस से आता तो किसी न किसी रेस्तराँ में ले जाता। क्या दिन थे वे। हँसते खेलते दिन। आह। अब कहाँ उड़न छू हो गए? आँसू और बहने लगे, बहते गए, झर झर।

सच किसी ने बड़े पते की बात कही थी -मैंने अपनी पत्नी के संदूक को चोरी से खोला, उसमें मायके की यादों के सिवा कुछ न था। यह पंक्ति मेरे दिल को छू गई और याद रही। सच ही तो कहा लिखने वाले ने। एक बेटी के पास ससुराल में मायके की यादें ही तो होती हैं। अब याद आ रहा है जब गर्मी की छुट्टियाँ ख़त्म होतीं तब मेरी माँ ख़ूब सारे कच्चे आम मँगवाती और फिर अचार में डालने वाले मसाले लेकर पापा आते। माँ मेरी विदाई से पहले आम का अचार डालती और अमृतसर की बड़ियाँ भी मँगवाती। एक मर्तबान भर के पूरे साल चलने वाला अचार सौग़ात में देते कहतीं-'तेरी माँ इससे ज़्यादा कुछ दे नहीं सकती भप्पी।'

मैं कहती, 'माँ इतना कुछ तो दे दिया और क्या चाहिए मुझे।' फिर गले लग कर माँ बेटी ख़ूब मिलतीं और वीर हमारा अटैची और सौग़ातें पहले से ही रिक्शा में रखवा कर तैयार रहता। जब तक बस चल न देती तब तक खड़ा बाय-बाय करता रहता। आज उसी वीर ने क्या कह दिया ? क्यों कह दिया ? ओह माँ। कहाँ हो ? कितना सच बोल गई थी, बता गई थीं कि माँ से ही मायका होता है।। मेरे बाद इन गलियों को तरसेगी भप्पी।

मेरे इस तरह जल्दी-जल्दी मायके आने पर आस-पड़ोस के लोग दबी ज़ुबान में कहने लगे कि भप्पी अपनी ससुराल में ख़ुश तो है ? तब बीजी ने कहा कि आप सबको पता है कि मेरी दो बड़ी बेटियाँ विदेश में रहती हैं। उनकी शादियों के बाद न उनके बच्चों को गोदी में खिला पाई और न ही उनके कोई लाड़-चाव कर पाई। वही लाड़-चाव अब भप्पी के बच्चों के साथ पूरे कर रही हूँ। बस। इतनी सी बात है। और कोई भेद नहीं इसमें। फिर उसके बाद यह कानाफूसी बंद हो गई। सच में ससुराल से जल्द-जल्द आना कोई खेल तो नहीं था। वहाँ भी सासु माँ कहती थीं, 'क्या दौड़ी फिरती हो बार-बार ? टिक कर ससुराल में रहो। क्या नहीं है यहाँ ?' सासु माँ भी कभी मायके जाती होंगी और जानती होंगी कि मायके में क्या होता है। पर अपने समय को भूल गईं।

हाँ, मेरी दो बहनें विदेश में थीं। जब हम बच्चियाँ थीं तब एक बार बड़ी बहन सरोज आई थीं विदेश से। शादी के बाद पहली बार और हम सबके लिये ख़ूब सारे कपड़े लेकर आई थीं। उन दिनों बड़ा क्रेज़ था विदेशी कपड़ों का। हम छोटी बहनें जब गली या स्कूल में विदेशी कपड़े पहन कर जातीं तब सबकी निगाहें हमारे ऊपर रहतीं। तब देश ने इतनी तरक्की नहीं की थी। अब तो विदेशी फ़ैशन से ज़्यादा हमारे देश में फ़ैशन है। क्या नहीं है। पर हमारी बड़ी दीदी को एक इम्प्रेशन यह रह गया कि हम इंडिया में रहने वाले भाई-बहन तो ग़रीब हैं और पता नहीं जैसे-कैसे गुज़ारा चलाते हैं। वीर नौकरी पर लग गया था और मेरे पति भी एक ज़मींदार परिवार के साथ-साथ नौकरी करते थे। कहीं कोई कमी नहीं थी। वीर और इन्होंने जब दूसरी दीदी कांता इंग्लैंड से आई तब मिल कर उनका इतना स्वागत-सत्कार किया कि यह इम्प्रेशन न जाए कि हम किसी तरफ से ग़रीब हैं। और वे इसमें कामयाब भी रहे। सच, हमारे दिन फिर चुके थे।

मेरी वह बड़ी बहन सरोज फिर मेरी बड़ी बेटी की शादी में आई और उसका यह इम्प्रेशन न गया कि इंडिया में जो परिवार के लोग हैं वे ग़रीब हैं। और वह बार-बार घबरा कर पूछती रही कि भप्पी, कैसे करोगी बिटिया की शादी ? मैंने इतना ही कहा कि दीदी। आप निश्चिंत रहिये और, देखती रहिये सब हो जाएगा आपकी आँखों के सामने। जब धूमधाम से बेटी की शादी हुई तब ख़ुद ही बोलीं कि मैंने गंगा नहा ली। बहुत अच्छी शादी हुई है। शुक्र है इसी जन्म में दीदी हमें ग़रीब मानने का भरम तोड़ सकी।

'मम्मी। यह क्या रोनी सूरत बनाये अकेली बैठी हुई हो ?' बेटी रिशी कमरे में आते ही बोली।

'नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं।'

'हमारे नाना तो आपकी तारीफ़ करते पापा से कहते थे -'एवर स्माइलिंग फेस और यह सोते भी उठेगी तो स्माइल के साथ और आज यह चेहरे पर कैसे बारह बज रहे हैं?'

'जा अपनी ड्यूटी पर जा। कुछ नहीं। सब ठीक है।'

माँ ने बेटी को टालने की कोशिश की लेकिन बेटी भी माँ को जानती थी। बोली -''मम्मी। क्या मामा ने कुछ कहा ? फ़ोन कर रही थी न मामा जी को ?'

'हाँ। कर रही थी। यूँ ही हालचाल पूछने के लिए किया था। हम अपने रिश्तेदारों से बहुत दूर हैं न। कोई आता-जाता भी नहीं तो मन थोड़ा उदास सा हो जाता है कभी-कभी। इसलिये फ़ोन पर बात कर ही दिल को तसल्ली-सी दे लेती हूँ।'

'तो आज तसल्ली नहीं हुई न।'

'चल हट। अपने काम पे जा। टाइम हो रहा है तेरा। नाश्ता बना दिया है। चल।'

फिर भी बेटी रिशी की तसल्ली न हुई। माँ के गले में बाहें डालकर बोली -'वो सीआईडी प्रोग्राम में कहते हैं न कि कुछ तो गड़बड़ है। मम्मी कुछ तो छिपा रही हो।'

'कुछ नहीं। भाई-बहन की बात क्या छिपानी ? कोई गड़बड़ नहीं बाबा। जा।'

'ठीक है। जाती हूँ पर लौटने तक यह रोनी सूरत दिखलाई नहीं देनी चाहिए।'

'अरी ऐसा कुछ नहीं है।'

'तो पक्का। आने पर स्माइल दोगी न।'

'जा बाबा जा। तुझे देर हो रही है।' बेटी ने नाश्ता किया और अपना टिफिन तैयार कर चली गई। माँ को देखती-देखती।

आख़िर ये हँसते खेलते दिन बीत गए और बीजी की सेहत गिरती चली गई। सेहत इतनी गिर गई कि वे दूसरों के हाथों की ओर देखने लगीं। बिल्कुल बिस्तर पर लग गई थीं बीजी। बस बिस्तर पर बैठी टुकुर-टुकुर देखती रहतीं। पापा भागदौड़ कर हार गए पर कोई फ़र्क़ न पड़ा। अब भाभी ही चूल्हा-चौका सँभालतीं। फिर भी बीजी कुछ न कुछ बताती रहतीं कि यह बना लो भप्पी के लिये। यह बहुत पसंद करती है। हाँ, बिस्तर पर बैठे-बैठे ही अचार डालने की कोशिश करतीं पर मैं ही बीजी को रोक देती -'बहुत अचार खिला लिया बीजी। अब तो मेरी बेटी रिशी बिल्कुल आप जैसा अचार डालना सीख गई आपको देखते-देखते।' मुश्किल से बीजी हाथ पीछे हटातीं। ऐसे भी बीजी को बहुत प्यार उमड़ता मुझ पर।

पापा एक सुबह-सुबह इस दुनिया को अलविदा कह गए। तब तो मैं मायके से बहुत दूर रहती थी। फिर भी इन्होंने फटाफट गाड़ी की और हम अंतिम संस्कार से पहले पहुँच ही गए थे। इंग्लैंड से सरोज और छोटी दीदी कांता भी आ गई थीं और वही घर जो हँसता, खेलता और महकता रहता था, एकदम उदासी में डूब गया था।

संस्कार की दूसरी सुबह जब मैं जागी तब वीर और कांता दीदी पापा के संदूक में से सारे कागज़ पलट कर रहे थे। मैं एकदम सन्न रह गई कि क्या एक ही दिन बाद यह खोजबीन ? पापा जैसे जीवन यात्रा पर जाने की पूरी तैयारी किये बैठे थे। हर चीज़ ऐसे सँभाल कर रखी थी कि कोई बच्चा भी सारा हिसाब-किताब जान ले। और हिसाब-किताब मिल भी गया। वीर और कांता दीदी के चेहरे पर ज़रा भी कोई शिकन नहीं आई कि हम क्या कर रहे हैं।

फिर एक दो दिन बाद ही वीर ने हम बहनों के आगे मकान को अपने नाम किये जाने के कागज़ रख दिये और हमने भी कहा कि वीर हमें आपसे बढ़कर कौन ? हमारे लिये तो अब आप ही हो। हम सबने ख़ुशी-ख़ुशी कोर्ट के कागज़ पर साइन कर दिये।

पर मैं यह ज़रूर सोचती रही कि वीर को इस कार्यवाही की इतनी जल्दी क्या पड़ी थी ? क्या वीर को हम बहनों पर भरोसा नहीं था ? जायदाद के लिये तो हमें कभी कोई लालच नहीं था बल्कि मेरे पति भी इस मामले में मेरे से आगे की सोच रखते थे। उन्होंने अपनी पुश्तैनी ज़मीन से अपनी छोटी बहन को विवाह के बाद उसके हिस्से की ज़मीन देने में देर नहीं लगाई थी। फिर वीर को इतनी जल्दी क्यों ? क्या इसलिए कि दो बहनें विदेश रहती हैं, फिर इस काम के लिये कब आएँगी ? वैसे बीजी हमारे पापा को कहा करती थीं -'एक ही तो बेटा है हमारा। जीते जी इसके नाम कर दें मकान।' पर पापा कहते यदि ऐसा कदम उठाया तो किसी भी दिन इस छत से बाहर होंगे। कौन सही था, कौन ग़लत ? नहीं जानती।

रब्ब-रब्ब करते वे दुख भरे दिन भी बीते और फिर बेटियों के साथ लौटने का दिन भी आ गया। इस बार न आम के अचार का मर्तबान था और न ही अमृतसर की बड़ियाँ। न पापा इधर-उधर उदास डोल रहे थे। बस बीजी थी जो बेड पर बैठी टुकुर-टुकुर मेरी विदाई देख रही थीं कि अचानक कांता दीदी ने आदेश सुना दिया -'भप्पी, तू न एक काम कर। बीजी को अपने साथ ले जा। वीर को कुछ दिन आराम चाहिए। अभी पापा के दुख में डूबा है और ऊपर से बीजी की हालत देख ही रही हो। तू वीर को कुछ दिनों के लिये छुट्टी दे दे इस काम से।'

मैं क्या कहती। चुपचाप देखती रही। गाड़ी में बीजी को उनके कुछ ज़रूरी सामान के साथ उनकी इच्छा पूछे बिना लाद दिया गया। हम अपने घर आ गए। बीजी के लिये हमारे पास बाथरूम में इंग्लिश सीट भी नहीं थी। इन्होंने भागदौड़ कर एक ही शाम में वह सीट लगवा दी। बीजी ने आशीष दी इन्हें और कांता को बद्दुआ देते कहा, 'कांता बंदिये तूने मुझे अपने पति के दुख में अपने ही घर में रोने भी न दिया। मैं अपने घर से आना नहीं चाहती थी पर मेरी न तेरे वीर ने सुनी और न तेरी दीदी कांता ने। बस एक फालतू सामान की तरह घर से बाहर फेंक दिया। जैसे तेरे पापा के गंदे बचे सामान को फेंका था। मैं भी शायद वैसा ही कोई सामान थी उन भाई-बहन की नज़र में। कांता बंदिये। तू भी कभी ज़िंदगी में ऐसे ही तड़पे।'

ये एकदम से बोले- 'बीजी क्या मैं आपका बेटा नहीं ? मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता ? आप यह क्यों सोच रही हैं कि दामाद हूँ और इसके घर रहना पड़ेगा ? आप यह सोचिए कि दूसरे बेटे के पास आ गई हैं। मैं आपको किसी तरह की कोई कमी नहीं महसूस होने दूँगा।'

बीजी ने इन्हें गले लगाते कहा, 'मेरी भप्पी। सबसे प्यारी बेटी है और आप भी सबसे प्यारे बेटे। मुझे क्या चिंता है पर ये दुख के दिन

मैं अपने घर रहना चाहती थी पर कोई बात नहीं। सब दिन एक समाना।'

इस तरह बीजी हमारे पास ख़ुशी-ख़ुशी रहने को मान गईं और उनके मन का बोझ भी कम होने लगा। फिर पापा की पेंशन बीजी के नाम ट्रांस्फर करवाने का ज़िम्मा भी इनके ऊपर आया और इन्होंने भागदौड़ कर यह काम भी कर लिया तो एक दिन वीर का फ़ोन आया, 'भप्पी, मैं बीजी की देखभाल के लिये कुछ पैसे हर महीने भेज दिया करूँगा।' इस पर इन्हें बहुत ग़ुस्सा आया और मेरे हाथ से फ़ोन छीन कर बोले 'हम ये पैसे कभी नहीं लेंगे। यहाँ कोई पेशेंट दाखिल नहीं और न यह कोई केयर सेंटर है। यहाँ तो एक माँ अपने बेटे के पास रहने आई है और मैं इनकी देखभाल कर सकता हूँ। इनकी पेंशन से भी रुपया नहीं लूँगा और दोबारा ऐसी बात भी मत कहना।'

बीजी की आँखों में ख़ुशी के आँसू थे और बोलीं-'मैंने ही आपको प्यारी बेटी भप्पी के लिये चुना था। आज मैं बहुत ख़ुश हूँ कि मेरा चुनाव ग़लत नहीं था।' हम दोनों को बीजी ने गले लगा लिया। मेरी दोनों बेटियों की भी आँखें यह मंज़र देखकर भर आईं।

इस तरह बीजी ने हमारे यहाँ दिल लगाने की कोशिश शुरू की। मैं पड़ोस वाली बूढ़ी अम्मा को भी बुला लाती ताकि वह दोनों हमउम्र मिल बैठ कर कुछ बातें कर सकें। अपने गुज़रे समय को जी सकें। दोनों धूप में चाँदी वाले बालों की छाया में बातें करतीं कभी रोतीं तो कभी खिलखिलातीं। ये शाम को आते तो बीजी के पसंद की कोई न कोई मिठाई ले आते। बीजी मना करतीं तो कहते और क्या पसंद है, वह बता दो बीजी, कल वही ले आऊँ। इस तरह एक साल बीत गया। हमें बीजी के आने से रौनक ही मिली। हमारा घर भरा-भरा सा लगता। पर कहते हैं न कि हर दिन होत न एक समाना। वही बात हुई। जो मेरी बीच वाली बहन थी नीरू वह अपने पति के साथ सारी उम्र तो रही जमशेदपुर लेकिन पापा ने समय रहते वीर के लिए प्लाट लेते समय नीरू को भी साथ वाला प्लाट खरीद दिया था। इस तरह दोनों भाई-बहन पड़ोसी हो गए थे। जब नीरू को बातों-बातों में यह ख़बर लगी कि बीजी के नाम पेंशन आ रही है और वीर यह पेंशन देने को तैयार है, जो बहन बीजी को अपने पास रख ले। पता नहीं नीरू के मन में क्या था और क्या नहीं लेकिन उसका फ़ोन आया कि मैं बीजी को लेने आ रही हूँ। 'भप्पी। तूने बहुत सेवा कर ली बीजी की। कुछ समय दूसरों को भी मौका दे सेवा का।' मैं क्या कहती? नीरू आई और बीजी को वापस ले गई। हमें अपना घर बीजी के बिना खाने को दौड़ने लगा पर क्या कर सकती थी? बीजी सबकी एक जैसी माँ जो थीं।

ले तो गई नीरू बीजी को पेंशन के लोभ में लेकिन बिना मोह के आधी-आधी रात जाग कर सेवा कैसे करती? बड़ा मुश्किल है अपनी नींद किसी के ऊपर क़ुर्बान करना। नीरू का पेंशन का मोह जल्द ही टूट गया और उसने वीर के घर ही बीजी को सौंप दिया। इस तरह बीजी भाई-बहनों के बीच एक अनचाही ज़िम्मेदारी बन कर रह गई।

फिर एक दिन वीर का संदेश आया कि बीजी नहीं रही और हम सब काम छोड़कर भागे। बीजी के बिना वही घर खाने को दौड़ रहा था। वह अचार के मर्तबान। वह अमृतसरी बड़ियाँ सब जैसे बीते सपने की तरह थीं। आज मायके वाला सपना भी चकनाचूर हो गया।

फिर दोनों बेटियों के बच्चों ने अमृतसर जाने की ज़िद्द पकड़ ली। तभी मैंने सोचा कि मायका थोड़ा पास ही तो पड़ेगा क्यों न वीर को भी मिलती चलूँ। और जैसे ही वीर से बात की तो उसका रूखा जवाब पाकर मेरी आह निकल गई। हाय माँ वीर ने यह क्या और क्यों कह दिया? क्या चिड़ियाँ दा चम्बा नहीं रहा? कैसे यक़ीन करूँ? मेरा सपनीला मायका छूट गया? कैसे विश्वास करूँ...

एक बार तो दिल में आया कि बच्चों के साथ अमृतसर फेरी लगा ही आऊँ और राह में अपने मायके वाले शहर भी हो आऊँ लेकिन वीर को न मिलूँ और बस एक फ़ोन कर कहूँ कि वीर मैं आई तो थी पर बच्चों ने जल्दी मचा दी और बिना घर आए जाना पड़ा।

नहीं। इतनी हिम्मत नहीं है मेरी। आख़िर चिड़ियों के चम्बे का भरम तो बना रहे।

000

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

काँधी-कढ़ाई

आकाश माथुर

सब्ज़ी का कटोरा टेबल पर रखते हुए प्रभा ने ग़ुस्से से कहा 'मुझे लगता है कि मैं अब भी १९वीं सदी में रह रही हूँ। जहाँ जातिवाद, ऊँच-नीच, रूढ़िवाद और पता नहीं किस-किस तरह के वाद हैं। पता नहीं किस तरह की सोच है, जो अपने ही घर में अपने ही घर के एक सदस्य के साथ इस तरह का भेदभाव किया जा रहा है। मेरे हाथ का बना खाना नहीं खाएँगे, मेरे हाथ का खाना खाने से इनकी नस्ल ख़राब हो जाएगी। बाहर का खाना शौक से खा लेंगे। बाहर कौन बना रहा है, कैसे बना रहा है। इससे किसी को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। पता नहीं किस तरह के लोग हैं। मेरी कमाई से परेशानी नहीं। मेरे होने से इनका मान बढ़ता है। बाहर मेरी तारीफ़ हो तो इनका सिर गर्व से उठ जाता है। किसी का ख़याल रखना हो तो सबसे पहले मुझे याद किया जाता है। कोई बीमार हो तो भी मुझे ही देखभाल करना है। बस मेरे हाथ का खाना खाने से परेशानी है। इस तरह का भेदभाव मुझे अंदर से तोड़ देता है।' बड़बड़ाते हुए प्रभा रसोई में चली गई। शहर का दो बेडरूम का फ्लैट- एक लिविंग और डाइनिंग रूम, जहाँ बैठ कर अनिल खाना खा रहा है और प्रभा परोस रही है। अधिकतर प्रभा अस्पताल से अपना काम ख़त्म करके पहले आ जाती है और अनिल से पहले ही खाना खा लेती है। इसके बाद वह अनिल को गर्म खाना ही परोसती है। अनिल क्या घर का कोई भी सदस्य हो, वह कोशिश करती है कि वह उसे गर्म खाना ही खिलाए। अगर वह खाए तो!

अनिल और प्रभा दोनों पेशे से डॉक्टर हैं। दोनों ने वैसे तो प्रेम विवाह किया है, लेकिन वे दोनों एक ही जाति के हैं। इसलिए पहले प्रेम हुआ, फिर उसका विरोध हुआ, फिर दोनों के घर से दूर शहर में रहने की बात पर विवाह हुआ। विवाह होने के साथ ही तय हो गया था कि उन्हें अब गाँव में नहीं रहना है। ऐसे भी दोनों शहर के बड़े अस्पतालों में नौकरी करते हैं, इसलिए दोनों ने पहले से ही तय किया हुआ था कि वे विवाह के बाद रहेंगे तो शहर में ही। ये उनकी मर्ज़ी थी पर उन्हें घर से निष्कासित किया गया था। उनका विवाह ही इस शर्त पर तय हुआ कि वे अब गाँव में नहीं रह सकते और यदि रहेंगे भी तो घर से अलग। यह फैसला अनिल के घर के लोगों का था। प्रभा के घर के लोगों को इस विवाह से कोई परेशानी नहीं थी। विवाह के समय का अपमान और फिर उसके बाद लगातार घर के कुछ लोगों का उसके हाथ का खाना न खाना, ख़ासकर उसकी सास निर्मला का प्रभा के हाथ का खाना न खाना उसे परेशान करता है। उसे लगता है जैसे उसी के घर में उसका अपमान किया जाता है। प्रभा को विवाह से पहले से पता था कि उसकी सास ननद या कोई भी महिला उसके हाथ का बना खाना नहीं खाएगी। पहले भी उसकी माँ और बहन को छोड़कर कोई और महिला उसके हाथ का खाना कहाँ खाती थी। मौसियाँ और नानी खाती थीं। तब उसे यह मंज़ूर था, लेकिन अब उसे यह बात परेशान करती है। शहर के नामी डॉक्टरों में शामिल होने के बाद भी उसके अंदर हीन भावना ला देती।

इस तरह के झगड़ों के बाद भी अनिल और प्रभा के प्रेम में कभी कोई अंतर नहीं आया। अनिल कभी प्रभा को कुछ नहीं कहता, पर आज वह कुछ कहना चाहता है। अनिल ने हिम्मत की और रसोई की तरफ देखते हुए कहा 'तुम अपना मूड ठीक कर लो, कल माँ के सामने इस तरह की कोई बात मत करना।' प्रभा ने भी रसोई से बाहर देखा, उसने अनिल की आँखों में देखा और बिना कुछ कहे एक सवाल या नज़र उस पर डालकर फिर से पलट गई।

अनिल को डर है कि कल उसकी माँ आने वाली है। प्रभा यदि इस तरह का व्यवहार उसकी माँ के सामने करेगी, तो वह दुखी हो जाएगी। अनिल की माँ प्रभा के व्यवहार से ख़ुश है। वह उसकी सभी जगह तारीफ़ करती है। वह आ भी प्रभा के लिए ही रही है। गाँव से कई घंटों का सफ़र तय कर वह अपनी बहू के सम्मान समारोह में शामिल होने आ रही है। वह ख़ुश है कि पूरा समाज उनकी बहू का सम्मान कर रहा है। समाज द्वारा प्रभा को 'समाज का गौरव' सम्मान से सम्मानित किया जाएगा। एक भव्य आयोजन में प्रभा का सम्मान होने वाला है। जिसमें बिरादरी के लगभग सभी वरिष्ठ, लोग शामिल होंगे। जो पूरे परिवार के लिए गौरव की बात है।

०००

आकाश माथुर
152, राम मंदिर के पास, क़स्बा, सीहोर,
मप्र 466001,
मोबाइल- 9200004206
ईमेल- akash.mathur77@gmail.com

सुबह अलार्म बजा तो अनिल जाग गया, तैयार होकर माँ को लेने चला गया। अनिल के जाने के बाद प्रभा उठी और घर को व्यवस्थित करने लगी। घर की साफ-सफाई और व्यवस्थित करने का काम वह पहले ही कर चुकी थी, पर जो थोड़ी बहुत कमी थी वह भी पूरी कर दी। उसकी सास निर्मला ग्रामीण परिवेश से आती है। इसलिए उसके सामने प्रभा को ज़्यादा ध्यान रखना पड़ता है। दरवाज़े की घंटी बजी। वह समझ गई कि उसकी सास आ चुकी है। दरवाज़ा खोलते ही सामने उसकी सास दिखी। उनके ठीक पीछे हाथ में बैग लिए अनिल है। अनिल की आँखों में प्रभा को याचना दिखाई दी। मानों वह कह रहा हो 'प्लीज़... कुछ मत कहना।' दोनों की नज़रें मिलीं और अचानक प्रभा के चेहरे पर मुस्कान तैर गई। वह झुकी और उसने अपनी सास के पैर छुए। निर्मला ने उसे कंधे पकड़कर उठाया और गले लगा लिया। निर्मला ने कहा 'बेटा, तुमने तो हमारा सिर गर्व से ऊँचा कर दिया, बिरादरी में हर कोई तुम्हारी ही तारीफ़ कर रहा है। मेरे पास कई रिश्तेदारों के फ़ोन आए और गाँव वालों ने तो घर आकर मुझे और पूरे परिवार को बधाई दी।' निर्मला अपनी बात कहते हुए प्रभा को बहुत ही प्यार से देखती रही।

निर्मला सोफ़े पर बैठ गई तो उसके ठीक सामने प्रभा भी बैठ गई। अनिल ने निर्मला की तरफ़ देखते हुए पूछा 'माँ क्या आपके लिए चाय बना दूँ।' निर्मला ने गर्दन हिलाकर हामी भर दी। अनिल प्रभा की तरफ़ देखते हुए चुपचाप रसोई की तरफ चला गया और दोनों सास बहू आपस में बात करने लगी। बात ही बात में निर्मला ने प्रभा से कहा 'गाँव वाले घर से बाहर निकलते ही पूछते हैं- कहाँ जा रही हो... अब इन्हें हर बार बताओ। कह दो कि अनिल के घर जा रही हूँ, तो बातें बनाना शुरू कर देते हैं। हर बार कहना पड़ता है। अपनी बेटी नेहा के यहाँ जा रही हूँ।'

इतना सुनकर प्रभा के अंदर बिजली सी दौड़ गई। अपने को सँभालते हुए प्रभा उठी और कहा 'माँ मैं तैयार हो जाती हूँ। मुझे अस्पताल जाना है। मैं जल्दी लौट आऊँगी फिर हम सब साथ कार्यक्रम में चलेंगे।'

'पर तुम आज अस्पताल क्यों जा रही हो। तुम्हें तो छुट्टी लेनी थी। इतना बड़ा कार्यक्रम है।' निर्मला ने पूछा।

'जाना तो पड़ेगा माँ, मुझे कुछ ज़रूरी काम है। मैं जल्द लौट आऊँगी।' कहते हुए प्रभा अपने कमरे की तरफ चली गई ।

थोड़ी देर में तैयार होकर बाहर आई और अस्पताल जाने लगी। निर्मला ने कहा 'प्रभा कुछ खा कर तो जाओ।'

प्रभा ने कहा 'नहीं मैं अस्पताल के केंटीन से कुछ मँगाकर खा लूँगी और आपके लिए ये कुछ ले आएँगे।' और तेज़ी के साथ बाहर निकल गई।

अस्पताल पहुँचकर प्रभा ने रिसेप्शन पर ही रजिस्टर में हस्ताक्षर किए और ओपीडी में जाकर बैठ गई। वह जल्दी अस्पताल पहुँच गई। वह चाहती तो छुट्टी ले सकती थी, लेकिन वह अपनी सास का सामना ज़्यादा देर तक नहीं करना चाहती थी। उसे डर है कि कहीं वह अपनी सास से ऐसी कोई बात न कह दे जिससे वह दुखी हो जाए। वह यह भी जानती है कि उसकी सास उसी के लिए आई है। वह भी ज़माने भर से झूठ बोलकर, ऐसे में वह उनका दिल भी नहीं दुखाना चाहती। इसलिए वह जानबूझकर अस्पताल आ गई। आकर ओपीडी में बैठी ही थी कि अस्पताल में उसकी सबसे नज़दीकी मित्र डॉ. अंजली आ गई।

अंजली ने आते ही प्रभा से पूछा 'आज तो तुम्हारा सम्मान है न। तुम आज यहाँ क्या कर रही हो। तुम्हें तो छुट्टी लेनी चाहिए थी आज की।' प्रभा, अंजली को देखती रही। वह उससे कुछ कहना चाहती है, लेकिन क्या कहे और कैसे कहे यही सोच रही है। अंजली ने देखा कि प्रभा किसी सोच में डूबी है।

अंजली ने उसके चेहरे के सामने चुटकी बजाई और पूछा 'बता क्या हुआ, इतनी परेशान क्यों है।'

'मैं परेशान कहाँ, बस रात को नींद पूरी नहीं हुई। इसलिए थकावट है।' अंजली ने गर्दन नीचे कर कहा।

अंजली ने ज़ोर देकर कहा 'अच्छे से जानती हूँ तुझे। तू सोई भी इसलिए नहीं क्योंकि तू परेशान थी। बता क्या बात है। अनिल से झगड़ा हुआ या कोई और बात है।'

प्रभा ने कहा 'वह बेचारा कहाँ कुछ कहता है। कभी-कभी तो इस बात का भी दुख होता है कि उसकी कोई ग़लती नहीं, फिर भी मैं जो कुछ कहती हूँ चुपचाप सुन लेता है। जिस बात से मैं परेशान हूँ उसके बारे में हम दोनों को पहले से पता था और हम तैयार भी थे, लेकिन अब मुझे वह बात परेशान कर रही है।'

अंजली कुछ चिढ़ गई, उसे कुछ समझ नहीं आ रहा कि प्रभा क्या कहना चाहती है। उसने प्रभा को डाँटते हुए कहा 'सीधे-सीधे बोल क्या कहना है, घुमाफिरा कर बात मत कर।'

प्रभा ने अंजली की आँखों में देखा और कहा 'यार, मेरी सास और मेरे ससुराल की कोई भी महिला मेरे हाथ का बना हुआ खाना नहीं खाती। ये बात मुझे बहुत परेशान करती है। मेरी सास को मैं हर तरह से पसंद हूँ। वे कभी मुझे लेकर कोई बुराई नहीं करतीं और न ही कभी उन्होंने अनिल से मेरे बारे में कोई बात की, पर उनका यह व्यवहार मुझे छुआ-छूत जैसा लगता है। ऐसा लगता है जैसे मुझे दोयम दर्जे का समझा जा रहा हो।'

अंजली ने माहौल बदलने के लिए कहा 'तू भी अजीब है यार! यहाँ बहुएँ चाहती हैं कि सास उनसे काम ही न करवाएँ और तू है कि सास के लिए खाना बनाने के लिए मरी जा रही है।'

इस बात पर प्रभा को बिल्कुल हँसी नहीं आई, पर उसने सिर्फ दिखाने के लिए फीकी सी मुस्कान अपने होठों पर लाने का प्रयास किया, पर वह सफल नहीं रही। अंजली उसे ऐसा देख गंभीर हो गई। उसने बहुत ही गंभीरता के साथ पूछा 'चल बता वे क्यों नहीं खातीं तेरे हाथ का बना खाना।'

'सिर्फ रूढ़िवाद है इसके पीछे। एक अजीब सा पागलपन जिसे परंपरा कहा जाता है। वे मेरी तारीफ़ ज़माने में करती फिरती हैं। यहाँ तक की आज के समारोह में शामिल होने भी वे आई हैं। लेकिन जब कोई महिला उनसे कह देती है कि बहू कितनी बढ़िया है। बस

'काँघी-कढ़ाई' नहीं होती तो अच्छा रहता। यह सुनते ही उनके मुँह पर ताला पड़ जाता है।'

अंजली की सुई 'काँघी-कढ़ाई' पर अटक गई। उसने उत्सुकता के साथ पूछा ये 'काँघी-कढ़ाई' क्या है।'

प्रभा ने निराशा भरे स्वर में कहा 'एक अभिशाप जो मुझे लगा मेरी माँ से, उन्हें मेरी नानी से और नानी को उनकी माँ से और उनकी माँ को उनकी माँ से। माँ अपनी बेटियों को संस्कार देती है, लेकिन हमें अपनी माँ से अभिशाप मिला। जिसका कोई अर्थ नहीं।'

'अभिशाप मतलब...?' अंजली की उत्सुकता और बढ़ गई। उसने ये शब्द ही पहली बार सुने हैं।

अंजली की बात का जवाब देने हुए प्रभा ने कहा 'हाँ, अभिशाप। लोग कहते हैं न कि इस दुनिया में महिला की सबसे बड़ी दुश्मन महिला ही है। यह बिल्कुल सही है। पता है 'काँघी-कढ़ाई' अभिशापित महिला के हाथ का बना खाना महिला नहीं खाती, बाकी सब खा लेते हैं। सब में बचता कौन है सिर्फ पुरुष। वे खा लेते हैं। वे कभी इसके लिए मना नहीं करते, पर महिलाएँ यदि अभिशापित महिलाओं के हाथ का खाना खाएँगी तो उन्हें भी श्राप लग जाएगा और फिर उनकी बेटियाँ अपने आप ही अभिशापित हो जाएँगी। फिर पीढ़ी दर पीढ़ी यह उनकी बेटियों को मिलता रहेगा। फिर उनके हाथ का बना खाना भी कोई महिला नहीं खाएगी। उनसे कोई शादी नहीं करना चाहेगा और यदि किसी ने शादी कर भी ली तो उसे अपने ही घर से अलग कर दिया जाएगा। उसे परिवार से अलग कर दिया जाएगा।'

'यह कैसी परंपरा है। इसका क्या तर्क है।' अंजली ने हैरानी के साथ पूछा।

'रूढ़िवाद का कोई तर्क होता है कभी, यह तो बस किसी को छोटा दिखाने का एक तरीक़ा है। पता है, मैं डॉक्टर हूँ और मेरे गाँव की अनपढ़ महिलाएँ मेरे हाथ का खाना नहीं खातीं। मैं कभी अपनी ससुराल नहीं जाती, मेरी सास गाँव में यह कह कर आती हैं कि वे मेरी ननद के यहाँ जा रही हैं। यदि लोगों को पता चल जाए कि वे मेरे यहाँ आई हैं तो वे भी शापित मान ली जाएँगी।' इतना कह कर प्रभा कुछ देर को चुप हो गई। फिर अपनी बात को जारी रखते हुए कहा 'पता है। हम जिस कंघे को उपयोग कर लेते हैं उस कंघे का भी उपयोग कोई महिला नहीं करती, नहीं तो वह शापित हो जाएगी, इसका तो कोई तर्क नहीं।'

अंजली ने पूछा 'और तुम्हारे हाथ का खाना न खाए जाने का क्या तर्क है।'

प्रभा ने कहा 'मेरे हाथ का या मेरे जैसी 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाओं के हाथ का खाना न खाए जाने के पीछे एक किंवदंती है। कहा जाता है कि बहुत पहले किसी शादी में एक महिला खाना बना रही थी। वह दुल्हन के साथ जाने वाली मिठाई और मैदे की पपड़ी बना रही थी। चूल्हे की आग तेज़ हो गई। आग बढ़ने से कढ़ाई में आग लग गई। आग लगने से हंगामा मच गया। महिलाओं में इस घटना की चर्चा शुरू हो गई और महिलाओं ने उसे अशुभ करार दिया। फिर उसके हाथ का बना खाना खाना बंद कर दिया। उसे अभिशापित मान लिया। जिसके बाद उसकी बेटी और फिर पोतियों और फिर उनकी भी बेटियों तक यह अभिशाप आगे बढ़ता रहा। उस एक महिला ने कोई ग़लती नहीं की, लेकिन उसकी भूल आज समाज की दस प्रतिशत महिलाओं के लिए अभिशाप बन गई है। मैं तो डॉक्टर हूँ जिससे भी मुझे प्रेम होता मैं उससे शादी कर लेती, लेकिन जो गाँव और छोटे क़स्बों की लड़कियाँ हैं और जिनकी शादी समाज में ही करने का दबाव परिवार पर होता है। उन लड़कियों की शादी नहीं होती या उन्हें किसी नालायक़ के पल्ले बाँध दिया जाता है। योग्य लड़की को अयोग्य लड़का।'

प्रभा चुप हो गई। वह सामने दीवार पर नज़रें गड़ाए बैठी है। अंजली भी कुछ देर चुप रही। उसने कहा 'यदि तेरी बेटी होगी तो उसे भी 'काँघी-कढ़ाई' ही समझा जाएगा।'

प्रभा ने कहा 'हाँ, लेकिन उससे मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। हम बड़े शहरों में रहने वाले लोग तो अब यह सब मानते ही नहीं। और अब तो शादियाँ भी जाति के हिसाब से नहीं एक व्यवसाय के हिसाब से हो रही है। डॉक्टर डॉक्टर से, कलेक्टर, कलेक्टर से और व्यापारी व्यापारी से शादी कर रहे हैं, पर यार गाँव की लड़कियों का क्या।'

अंजली ने कहा 'कह तो तू सही रही है, पर इसमें तू क्या कर सकती है।'

प्रभा ने कहा 'आधी परेशानी तो यही है कि मैं क्या कर सकती हूँ।'

अंजली ने प्रभा का मूड ठीक करने के लिए बात बदली। उसने प्रभा से पूछा 'आज कुछ खाया तो होगा नहीं आपने, चलिए आपको केंटीन में कुछ खिलवाते हैं।'

दोनों केंटीन की तरफ चल दीं। अंजली ने पूछा 'तेरी सास का खाना कहाँ से आएगा। तू तो कुछ बना कर आई नहीं और अनिल खाना बना नहीं पाएगा। फिर...'

प्रभा ने गहरी साँस ली और कहा 'वैसे तो मेरी ननद नेहा जो यहीं रहती है उसके यहाँ से आता है, पर फिलहाल उसे बेटी हुई है। अभी तो एक महीना भी नहीं हुआ। वह ख़ुद का और अपनी बेटी का अकेले ध्यान रखती है। तो उसके यहाँ से भी नहीं आएगा। इसलिए अनिल किसी रेस्टोरेंट से खाना ले आएगा।'

अंजली यह सुनकर चौंक गई। उसने आश्चर्य के साथ कहा 'यार! प्रभा एक बात बता वहाँ रेस्टोरेंट में रसोइये तो दाल-सब्ज़ी को बघारते समय फ्राई-पेन में आग लगा लेते हैं। फिर उनके हाथ का खाना कैसे खाती हैं तेरी सास। वह भी तो अभिशापित हो गया न। उससे वह शापित नहीं होती। तूने तो कभी इस तरह से फ्राई-पेन में आग भी नहीं लगाई फिर भी तेरे हाथ से नहीं खाएँगी। उसके हाथ का खा लेंगी। बड़ी अजीब बात है यार।'

प्रभा ने अंजली की बात को गंभीरता से सुना और कहा 'हाँ, यार ये तो मैंने कभी सोचा ही नहीं।'

खाना खाते समय भी अंजली और प्रभा इसी मुद्दे पर बात करती रहीं।

000

आयोजन को लेकर प्रभा की सास निर्मला अतिउत्साहित है। वह तैयार होते-होते बोली 'अनिल, प्रभा को कहना वहाँ मंत्री होंगे, जो हमारे समाज के ही हैं। उनके साथ ही समाज के अध्यक्ष और कई बड़े लोग होंगे। उनसे बात करे।' अनिल सिर्फ़ हाँ... हाँ... करता

रहा। उसके ध्यान में बार-बार बीती रात की बातें आती रहीं। वह परेशान है कि प्रभा की मानसिक स्थिति ठीक नहीं है, माँ भी यहीं हैं और साथ में उसके जीवन का इतना बड़ा दिन है। समाज की पहली डॉक्टर है प्रभा। प्रभा और अनिल दोनों ही उतने ख़ुश नही हैं, लेकिन आयोजन में तो जाना ही है।

तैयार होकर वे आयोजन में पहुँच गए। शहर का बहुत बड़ा ऑडिटोरियम जिसमें आयोजन किया जा रहा है, वह पूरा भरा हुआ है।

डॉक्टर प्रभा को मंच पर सम्मान लेने हेतु बुलाने से पहले उद्घोषक ने लम्बी तारीफ़ की। शिक्षा मंत्री इंद्रजीत सिंह ने एक सम्मान पत्र प्रभा को भेंट दिया। प्रभा सम्मान पत्र लेकर माइक की तरफ़ चल दी।

प्रभा ने सम्मान पत्र पोडियम पर रखा और माइक को हाथ से अपने पास खींचते हुए बोली 'नमस्कार, मैं डॉक्टर प्रभा 'काँघी-कढ़ाई' हूँ।' यह सुनकर पूरे ऑडिटोरियम में सन्नाटा छा गया। सब सन्न रह गए। इस सन्नाटे को फिर से प्रभा ने ही तोड़ा। उसने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा 'मुझे आप सम्मानित कर रहे हैं, लेकिन समाज में हर दिन मेरा या मेरे जैसी किसी 'काँघी-कढ़ाई' से अभिशापित महिला का अपमान होता है। मुझे इस मामले में पुरुषों से कम शिकायत है क्योंकि वे तो हमारे हाथ का बना खा लेते हैं। कहा जाता है न कि औरत ही औरत की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। ऐसे ही हमारे समाज की महिलाएँ ही हमारी दुश्मन हैं। मेरी सास को मुझ पर बड़ा गर्व है। वे मेरी तारीफ़ करती हैं, लेकिन समाज की महिलाएँ सब कुछ सुनने के बाद कह देती हैं- सब बढ़िया है बस बहू 'काँघी-कढ़ाई' है।'

प्रभा ने निर्मला की आँखों में देखते हुए कहा 'मुझे आज ही किसी ने एहसास कराया कि हमारे समाज की महिलाएँ बाहर ढाबों, होटलों और रेस्टोरेंट का खाना चाव से खाती हैं, जहाँ कढ़ाई में आग लगा कर ही बघार लगाई जाती है। मुझे बुज़ुर्गों ने बताया था कि किसी महिला के हाथ से शादी में खाना बनाते समय कढ़ाई में आग लग गई थी, जिसके बाद उसे शापित करार दिया गया। तब वह अकेली थी और अब समाज में मेरे जैसी उसी महिला की दस प्रतिशत संतानें हैं जो यह दंश झेल रही हैं। यदि समाज मेरा सम्मान ही करना चाहता है, तो इस कुरीति को बंद करें। जब मेरे जैसी डॉक्टर को इस कुरीति से हीनभावना आती है तो सोचिए गाँव की उन महिलाओं और लड़कियों पर क्या असर पड़ता होगा, जो अपना अस्तित्व तलाश रही हैं। आप पहले इस कुरीति को बंद करें और फिर मुझे सम्मानित करें। मुझे ख़ुशी होगी।' इतना कहकर प्रभा ने पोडियम पर से सम्मान पत्र उठाया और उसे अतिथियों के सामने रखी टेबल रख दिया। मंत्री को हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और पलट कर चल दी। ऑडिटोरीयम में सन्नाटा छा गया।

उद्घोषक ने माइक थामा ही था कि मंत्री इंद्रजीत सिंह बिना बुलाए उठकर आ गए और माइक पर आकर बोलना शुरू कर दिया- 'मैं शर्मिंदा हूँ कि मैं शिक्षा मंत्री के तौर पर समाज में शिक्षा के जरिए उजाला लाने का दावा करता हूँ और मेरे ही समाज में इस तरह की कुरीति सदियों से चली आ रही है। मैं डॉक्टर प्रभा से वादा करता हूँ कि इस कुरीति को समाज से दूर किया जाएगा। जिस दिन यह कुरीति बंद हो जाएगी उस दिन मैं आपको सम्मानित करूँगा। आपका सम्मान पत्र मैं प्रदेश अध्यक्ष श्री अजब सिंह को सौंपता हूँ और इनको ज़िम्मेदारी देता हूँ कि इस कुरीति को बंद किया जाए। अब समाज से बात तभी होगी, जब 'काँघी-कढ़ाई' कुरीति बंद होगी। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक मैं समाज के किसी कार्यक्रम में नहीं जाऊँगा।' इतना कह कर मंत्री इंद्रजीत सिंह मंच से उतर गए। समिति के सदस्य उनके पीछे-पीछे भागे और कुछ ही देर में ऑडिटोरीयम में बैठे सभी लोग बाहर आ गए।

निर्मला इस घटना क्रम के कारण शर्मिंदा है और ज़मीन में धँसी जा रही है। वह नज़रें भी ऊपर नहीं कर रही। उसे लग रहा है जैसे प्रभा ने बहुत बड़ी ग़लती की है। घर लौटने के लिए गाड़ी में बैठते ही निर्मला ने अनिल से कहा 'कल सुबह की गाड़ी से मैं चली जाऊँगी।' इसके बाद रास्ते भर कोई कुछ नहीं बोला।

000

एक दिन अचानक समाज के प्रदेश अध्यक्ष अजब सिंह का फ़ोन अनिल के पास आया। उसने अनिल से कहा 'आपकी पत्नी ने उस दिन जो मामला उठाया था, उससे सभी समाज के वरिष्ठ सहमत हैं और इस परंपरा को ख़त्म करने के लिए प्रयास करना चाहते हैं। इसके लिए एक बैठक का आयोजन आने वाले रविवार को किया गया है। जिसमें आपको और आपकी पत्नी को उपस्थित रहना है।' अनिल ने पूरी बात सुनी और अंत में 'जी बिल्कुल हम वहाँ पहुँच जाएँगे।' कह कर फ़ोन काट दिया।

अनिल ने घर आकर पूरा मामला प्रभा को बताया। प्रभा ने पूरी बात सुन कर अनिल से पूछा 'तुम क्या चाहते हो।'

'मैं... मैं सोचता हूँ कि हमें चलना चाहिए। तुमने शुरुआत की है तो अब लड़ाई भी हमें ही लड़नी होगी।' अनिल के चेहरे पर यह कहते हुए आत्मविश्वास दिखा।

रविवार को अनिल बैठक में पहुँचा। बैठक में समाज के वरिष्ठ जन पहुँचे, लेकिन एक भी महिला नहीं दिखाई दी। सभी ने प्रभा के बारे में पूछा। अनिल ने सभी को एक ही जवाब दिया कि 'उसको अस्पताल में कोई ज़रूरी काम है। कोई गंभीर मामला आया है।'

'काँघी-कढ़ाई' को ख़त्म कैसे करना है इस पर चर्चा शुरू हुई तो सभी एक-दूसरे का चेहरा देखने लगे। किसी के पास कोई सुझाव नहीं था कि इसे ख़त्म कैसे किया जाए। किसी ने कहा 'घोषणा कर दी जाए कि अब समाज में किसी महिला को 'काँघी-कढ़ाई' नहीं कहा जाएगा। सबके साथ एक सा व्यवहार हो।' किसी ने कहा 'हम वरिष्ठों को 'काँघी-कढ़ाई' वाली लड़कियों से अपने बच्चों की शादी कराने पर ज़ोर देना होगा। हम शुरू करेंगे तो सब धीरे-धीरे ख़त्म हो जाएगा।' कई सुझाव आए और तुरंत ही ख़ारिज होते गए। कोई समाधान नहीं निकला। अनिल तो कुछ बोल ही नहीं पाया। बैठक निर्धारित समय पर ख़त्म हो गई, लेकिन मुद्दे का कोई समाधान नहीं निकला। प्रदेश अध्यक्ष अजब सिंह ने यह

जवाबदारी अनिल पर छोड़ दी कि वह इस समस्या का समाधान खोज कर अगली बैठक में बताए।

अनिल ने घर पहुँच कर पूरी बात प्रभा को बताई। प्रभा को सुनकर अच्छा लगा कि समस्या तो ख़त्म हर कोई करना चाहता है, लेकिन किसी को यह नहीं पता कि समस्या ख़त्म कैसे करना है।

प्रभा ने अस्पताल आकर पूरा क़िस्सा अंजली को बताया। अंजली ने कहा 'देख प्रभा इस समस्या का एक ही समाधान है तुम 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाएँ अपने घर की दूसरी महिलाओं को अपने हाथ का बना खाना खिलाओ, फिर वे तुम्हारी तरह 'काँघी-कढ़ाई' हो जाएँगी, पुरुषों को तो कोई परेशानी है नहीं। सभी महिलाएँ फिर एक दूसरे के हाथ का बना खाना खा सकेंगी और कोई किसी को हीनभावना से नहीं देखेगा।'

'बात तो सही है, पर ये काम थोड़ा मुश्किल है।'

'तू अनिल से बात कर और उसे इसके बारे में बता। वह समाज में यह बात रखेगा और फिर देखते हैं। क्या होता है।'

000

रविवार को फिर बैठक आयोजित हुई। अजब सिंह ने अनिल से सभी के सामने अपनी बात रखने को कहा। अनिल का सुझाव सुनकर सभी ने अपनी सहमति दी। यह कैसे होगा इस पर विचार शुरू हुआ। अध्यक्ष अजब सिंह ने इस पर सुझाव दिया कि हर साल बसंत पंचमी पर हमारे समाज के मंदिर पर भंडारे का आयोजन होता है। वह इस बार भी होगा। हम इस बार के भंडारे में हलवाई भी बुलाएँगे, लेकिन पूरियाँ 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाएँ ही तलेंगी। जिस कढ़ाई ने यह कुरीति शुरू की उसी से हम इसे ख़त्म करेंगे। इस सुझाव पर सभी की सहमति बन गई।

रविवार को हुई बैठक में लिए गए निर्णय की सूचना अजब सिंह ने मंत्री इंद्रजीत सिंह को दी तो उन्होंने कहा 'आयोजन की ख़बर घर-घर कर दो। बसंत पंचमी का आयोजन ऐतिहासिक होना चाहिए। उस दिन 'काँघी-कढ़ाई' का अभिशाप ख़त्म होना चाहिए।'

मंत्री जी की सहमति मिलते ही पूरा समाज आयोजन में जुट गया, लेकिन महिलाओं ने अपने-अपने स्तर पर समाज और घरों में बात उठाई की 'हम क्यों 'काँघी-कढ़ाई' हों। हमारे कारण हमारी बेटियाँ और फिर उनकी बेटियाँ सब 'काँघी-कढ़ाई' हो जाएँगी।'

समाज की बैठकों में यह बात पहुँची तो अजब सिंह ने हर ग्राम में एक समिति बनाई और अपने समाज के लोगों को बैठकों में बुलाया और उन पर दबाव डाला कि हर पुरुष को अपनी पत्नी को आयोजन में लाना है। वे सब 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाओं के हाथ का बना खाना खाएँगी तो ही यह कुप्रथा समाप्त होगी। समाजिक दबाव के चलते सभी घरों में यह बात तय हो गई कि सभी महिलाओं को भंडारे में जाना ही होगा। कोई बहाना नहीं चलेगा।

बात समाज के हर घर तक पहुँचाई जानी है तो फिर अनिल का घर इससे कैसे अछूता रह जाता। अनिल के घर तक भी ख़बर पहुँच गई। जैसे ही निर्मला को इसकी जानकारी लगी। वो ग़ुस्से से तमतमा गई और उसने अनिल को फ़ोन लगाकर कहा 'ये क्या नाटक लगा रखा है। तुम लोगों के कारण उस दिन पूरे समाज के सामने मेरी बेइज़्ज़ती हुई। अब फिर नया नाटक शुरू कर दिया। और हाँ बसंत पंचमी को जिस दिन भंडारा है उसी दिन तेरी बहन नेहा की बेटी के अन्नप्राशन का कार्यक्रम हमने रखा है। तुझे वहाँ आना चाहिए न कि किसी भंडारे में अपनी पत्नी के साथ खाना बनाने जाना चाहिए।' इतना कह कर निर्मला ने फ़ोन रख दिया। उसने अनिल की कोई बात नहीं सुनी। अनिल सफाई देना चाहता था, पर निर्मला ने कुछ न सुना।

000

बसंत पंचमी का दिन आ ही गया। समाज के मंदिर में सुबह से भंडारे की चहल-पहल शुरू हो गई। अनिल और प्रभा सुबह से मंदिर पहुँच गए। प्रभा मंदिर में वहाँ पहुँची जहाँ खाना बन रहा है। दोपहर क़रीब एक बजे समाज की सभी 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाओं ने हलवाइयों के साथ मिलकर खाना बना लिया। गाँव के भंडारों में पहले पुरुष खाना खाते हैं और फिर महिलाएँ लेकिन समिति ने निर्णय लिया था कि इस भंडारे में पहले महिलाएँ ही भोजन करेंगी।

तैयारी पूरी होने के बाद समिति और 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाएँ महिलाओं के आने का इंतज़ार करने लगे। एक से दो बज गए कोई महिला नहीं आई। पुरुष भी कम ही पहुँचे। कुछ देर बाद समिति सदस्यों ने अपने-अपने गाँव के स्थानीय लोगों को, मित्रों और परिचितों को फ़ोन लगाना शुरू किए। जबाव आया 'बस आ रहे हैं।' कुछ लोगों ने फ़ोन नहीं उठाए तो कुछ ने बताया कि अचानक तबीयत बिगड़ गई किसी ने कहा 'आ रहे हैं।' लेकिन कोई नहीं आया। तीन बजे मंत्री भी आ गए।

जैसे ही चार बजे। प्रभा हताश होते हुए उठी, उसके साथ जिन 'काँघी-कढ़ाई' वाली महिलाओं ने खाना बनाया था उनकी तरफ़ चेहरा कर हाथ जोड़े और माफ़ी माँगते हुए कहा कि 'मुझे माफ़ करना, मेरी वजह से आप सबका मज़ाक बना है।'

समाजजनों ने वरिष्ठों के बैठने के लिए जहाँ कुर्सी लगाई थी। वहाँ एक टेबल पर प्रभा का सम्मान पत्र रखा है, जिसे समिति और मंत्री इंदर सिंह आयोजन की सफलता के बाद प्रभा को देने वाले थे। प्रभा ने टेबल से सम्मान पत्र उठाया और मंत्री इंदर सिंह से सम्मानपूर्वक कहा 'आपने प्रयास किया इसके लिए धन्यवाद। आपके प्रयास सफल नहीं हुए कोई बात नहीं, लेकिन आपने जो प्रयास किए उसके लिए धन्यवाद स्वरूप मैं यह सम्मान पत्र ले जा रही हूँ।'

इतना कह कर प्रभा मुड़ी तो उसकी नज़र गेट पर पड़ी जहाँ निर्मला और नेहा खड़ी हैं। नेहा की गोद में उसकी बच्ची भी है। प्रभा की आँखें निर्मला से मिलीं। निर्मला और नेहा, प्रभा की तरफ़ बढ़े। निर्मला ने प्रभा के पास पहुँचते ही उसे गले लगा लिया। दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं।

नेहा ने प्रभा के कंधे पर हाथ रखा और अपनी बेटी की तरफ़ देखते हुए कहा 'भाभी हम आपके हाथों से इसका अन्नप्राशन कराने आए हैं।'

000

नक़्क़ाशी

अनुजीत इकबाल

"जीवन से बहुत अधिक अपेक्षा न रखकर हमेशा अगर हम यह मानकर चलें कि जो भी होगा वह मुझसे है और सब कुछ नवीन और सहज होगा तो हमारी पूरी सोच और दृष्टिकोण रूपांतरित हो जाते हैं। जीवन को अपने हाथ में रखकर यदि आप सोचते हैं कि आप चमत्कारिक रूप से सब अपने हिसाब से कर लेंगे तो आपके हाथ केवल निराशा आएगी। ज़िंदगी को बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वीकार करें, वरना गांभीर्य और बोझिलता बहुत बढ़ जाएगी और ये घाटे का सौदा है।"

अपनी डायरी में यह सब लिख कर मिस अनामिका उठीं और खिड़की पर आ गईं। मैक्लॉडगंज अभी जाग रहा था। दूर धौलाधार की चोटियाँ आकाश को गहराई तक भेद रही थीं। उगता हुआ सूरज अपनी उच्चतम पराकाष्ठा में, अपनी नरम किरणें पहाड़ों पर बिखेर रहा था। ठंडी और स्फूर्तिदायक हवा एकदम साफ थी। सड़कों पर लामा मठों की तरफ आ जा रहे थे। ये वही लोग थे जो बर्बर और असभ्य चीनियों से बचते हुए इस क्षेत्र में आकर बस गए थे लेकिन ऐसा नहीं है कि ये सब भागकर आए थे, बल्कि इनके प्रशिक्षण और आस्थाएँ ऐसी थीं कि यदि ज़रूरत पड़े तो ये बर्बर यातनाएँ भी सह सकते थे, पर कभी-कभी पवित्र वस्तुएँ, अभिलेख, गोपनीय लेखन और परंपरा को बचाने के लिए भागकर आने के अलावा कोई चारा नहीं बचता. उनको ध्यान से देखती हुई मिस अनामिका अपने जीवन की घटनाओं को याद कर रही थीं। आख़िर वह भी तो सब छोड़ कर...

सुबह के आठ बज चुके थे। वह दिन की शुरूआत चाय से करती हैं। उनको नॉर्लिंग रेस्तरां की चाय ही पसंद है, इसलिए वह अपने होम स्टे से निकलकर दस क़दम दूर बने इस छोटे से रेस्तराँ में आ गईं। मिस अनामिका को देखकर वहाँ के स्टाफ ने 'ताशी डेलेक' बोलकर उनका अभिवादन किया और चाय बनवाने चला गया। आज कल मिस अनामिका बहुत से प्रयोग कर रही थीं। परंपरागत भारतीय चाय को छोड़कर वह मक्खन वाली नमकीन तिब्बती चाय पीती हैं। अपने जीवन के साथ भी उन्होंने ऐसा ही कुछ प्रयोग किया है। वह पचपन साल की महिला हैं और तलाक़शुदा हैं। अद्वितीय तेज और शीतलता की मूर्ति, जैसे सूरज और चंद्रमा एक हो गए हों। पाँच साल पहले उन्होंने तलाक़ ले लिया था, जबकि घर परिवार और रिश्तेदार यह बात हज़म नहीं कर पा रहे थे कि जब उस घर में सारी ज़िंदगी गुज़ार दी तो अब इस उम्र में तलाक़ लेने का क्या औचित्य था?

लेकिन मिस अनामिका एक प्रेम और सम्मान रहित रिश्ते को ढोती रही थीं। उस हद से ज़्यादा अमीर व्यक्ति को, जिसे समाज उनका पति कहता था, उसे मिस अनामिका की मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक ज़रूरतों का अहसास तक नहीं था और स्वभाव में क्रूरता और ग़ुस्सा अलग से था। अपने बेटे को पढ़ा-लिखा कर मिस अनामिका ने बड़ा किया और जब वह विदेश चला गया, तो मिस अनामिका ने ख़ुद को उस सोने के पिंजरे से आज़ादी दिलाई, जिसमें उनका साथ सिर्फ उनके बेटे ने दिया था। तब से मिस अनामिका 'सोलो ट्रैवलर' बनकर अकेली भारत दर्शन कर रही हैं। और पिछले कुछ महीनों से यहाँ मैक्लॉडगंज में "कुंगा होम स्टे"

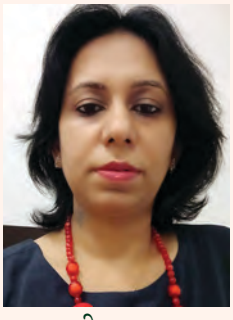

अनुजीत इकबाल
4, राम रहीम स्टेट, मलाक रेलवे क्रॉसिंग के पास, नीलमथा, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226002
मोबाइल– 9919906200
ईमेल– anujeet.lko@gmail.com

में रुकी हुई हैं। एक नया शौक उनमें जागा है और वह है फ़ोटोग्राफी का। उनके बेटे ने अमरीका से ही निकोन का कैमरा भेजा है, जिसे मिस अनामिका ख़ूब इस्तेमाल करती हैं। इतनी देर में चाय आ गई और मिस अनामिका भी अपने ख़यालों की दुनिया से बाहर आ गईं। उनके पास वाली कुर्सी पर प्रोफ़ेसर गुप्ता बैठे उनकी तरफ देखकर मुस्करा रहे थे। मिस अनामिका कुछ झिझक गईं क्योंकि उनको नहीं पता चला कि प्रोफ़ेसर गुप्ता कब से उनके पास बैठे थे।

प्रोफ़ेसर गुप्ता दिल्ली यूनिवर्सिटी से रिटायर्ड हैं। उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। सब बच्चे शादीशुदा थे। अब जीवन के इस पड़ाव पर अपने अन्य दोस्तों की तरह उन्होंने घर में बैठने की अपेक्षा 'यायावरी' को चुना। वह पिछले कुछ महीनों से यहाँ मैक्लॉडगंज में एक किराए के घर में रह रहे हैं। दोनों रोज़ इस वक्त चाय पीते हैं। इनकी मुलाकात इसी नॉर्लिंग रेस्त्रां में हुई थी।

प्रोफ़ेसर गुप्ता अनामिका जी को 'बंडल ऑफ कंट्राडिक्शन' कहते थे। उनके हिसाब से मृदु स्वभाव वाली मिस अनामिका के अंदर एक विद्रोही स्त्री भी रहती है। प्रोफ़ेसर गुप्ता ने मिस अनामिका के मौन को देखते हुए चुप रहना ही बेहतर समझा और चुपचाप कॉफी पीने लगे। फिर मनचाहा विश्राम लेकर मिस अनामिका ने उनकी ओर देखा।

"आपकी नक़्क़ाशी सीखने की क्लास कैसे चल रही है?" वह बोलीं।

"अच्छी चल रही है, यह एक ऐसा विषय है, जिसे मैं पसंद करता हूँ। तिब्बती लोगों में ख़ास बात यह है कि लकड़ी को व्यर्थ बर्बाद नहीं करते। धारदार चाकू से लकड़ी काटकर सुंदर कलाकृति बनाना, कितना चमत्कारी है न!"

"जीवन भी तो ऐसा ही है प्रोफ़ेसर गुप्ता। एक ऑब्जेक्ट पर दृश्य तत्वों की नियुक्ति... और एक अप्रत्यक्ष वस्तु को खोजने के लिए उपक्रम करना..." मिस अनामिका कुछ गंभीर होकर बोलीं।

"जीवन का इस तरह अन्वेषण करना एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा है अनामिका। बाकी सब कुछ निरर्थक ही नहीं बल्कि खंडित भी है। वास्तव में, जीवन जिया कैसे जाता है बेहतर दशाएँ क्या हो सकती हैं, यह सब हमारे समाज ने हमें कभी सिखाया ही नहीं है। नक़्क़ाशी करना और जीवन को जीना एक बराबर है। बस दोनों को पूरी मर्यादा और गरिमा के साथ किया जाए तो अच्छा पैटर्न बनकर सामने आता है। मिस अनामिका को प्रोफ़ेसर गुप्ता ज़्यादा ही प्रबुद्ध और विनम्र लगते थे। छह फुट से भी लम्बे प्रोफ़ेसर गुप्ता पर्वत सामान अडिग गहन रूप से शांत और सहज प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में एक नरमी थी जो मिस अनामिका को अपनी शादीशुदा ज़िंदगी में कभी नहीं मिली थी।

"और आज का 'थॉट ऑफ द डे' क्या है?" मिस अनामिका ने बात बदलते हुए मज़ाकिया लहज़े में पूछा।

"आज लामा सोग्याल नक़्क़ाशी सिखाते हुए बता रहे थे कि एक महत्त्वपूर्ण सूत्र यह भी है कि अपने पूरे अस्तित्व के साथ संपूर्णता पाने का प्रयत्न करें, मतलब जीवन की अनंत एवं स्वाभाविक भव्यता के बीच जीने के प्रयत्न करना।"

"हाँ, क्योंकि सब कुछ अस्थाई है प्रोफ़ेसर गुप्ता।" अनामिका बोलीं।

बाहर सैलानियों की चहलक़दमी बढ़ गई थी। कुछ विदेशी पर्यटक नॉर्लिंग में इकट्ठा होना शुरू हो गए थे। इस वक्त रेस्तराँ में जो इज़रायली संगीत बज रहा था उसकी धुन मिस अनामिका को विशेष प्रिय थी। जब हम फ़ुर्सत में होते हैं तो संगीत अपनी उपस्थिति बहुत अलौकिक तरीक़े से दर्ज करवाता है। दोनों संगीत सुनते रहे और कुछ देर बाद आपस में विदा ली। प्रोफ़ेसर गुप्ता मिस अनामिका की आँखों की तरलता देखते रहते थे और मन में सोचते रहते थे कि अनामिका जी जैसे सरल लोग बाहर से भी और भीतर से भी इतने सुन्दर क्यों होते हैं। मिस अनामिका इतनी अद्भुत थीं कि पिछले दो महीनों से हर पल उनको उन्हीं का ख़याल बना रहता था। अब तो नॉर्लिंग में सुबह की कॉफी पीने के लिए आना और अनामिका जी से बातें करना, जीवन का एक ज़रूरी हिस्सा बन रहा था।

मिस अनामिका एक घंटे की ध्यान की क्लास के लिए वहाँ से दो किलोमीटर दूर धर्मकोट के तुषिता सेंटर जाती थीं। आज भी वह उस तरफ़ सड़क पर पैदल चलती जा रही थीं। यह इलाका भारत का हिस्सा तो बिल्कुल भी नहीं लगता था और यही बात इसको विशिष्ट बनाती थी। बीच-बीच में मठों से घंटों की आवाज़ और हवाओं में लाल चंदन की धूप की ख़ुशबू दिव्यता का अहसास करवाती। कुछ तिब्बती महिलाएँ वहाँ से गुज़र रही थीं, जो अब मिस अनामिका को पहचानने लग गईं थीं। सब उनको 'ताशी डेलेक' बोल कर अभिवादन करती हुईं आगे गुज़र रही थीं। तिब्बती महिलाएँ भड़कीले लाल, नीले, पीले वस्त्र पहनती हैं, लाला मूंगा और हरे फिरोज़ा पत्थर की मालाओं के साथ, जो मिस अनामिका को बहुत पसंद थे। अब, मिस अनामिका तुषिता सेंटर के सामने थीं। बाँसुरी, तुरही, घड़ियाल की आवाज़ आ रही थी इसका मतलब कि सुबह का ध्यान सत्र शुरू होने वाला था। आकाश नीला, विस्तृत और सुंदर दिख रहा था। बादल के छोटे-छोटे टुकड़े तैर रहे थे जैसे किसी पेंटर ने एक बड़े कैनवास पर सफ़ेद रंग का ब्रश फेर दिया हो। अंदर धातु के अगरदान रखे हुए थे, जिनसे तेज़ ख़ुशबूदार धुआँ ऊपर की ओर उठ रहा था। कुछ लोग प्रार्थना चक्र घुमा रहे थे, इस चक्र का प्रत्येक चक्कर एक हज़ार बार प्रार्थना को स्वर्ग की तरफ प्रेषित करता था। मिस अनामिका ने भी चक्र घुमाया और अंदर चली गईं।

अगले दिन प्रोफ़ेसर गुप्ता नॉर्लिंग नहीं आए, न ही उन्होंने फ़ोन किया। मिस अनामिका उनका इंतज़ार करती रहीं और फिर सुबह के सत्र के लिए तुषिता की तरफ चली गईं। वापस आते वक्त वह प्रोफ़ेसर गुप्ता को फ़ोन मिलाने का सोचने लगीं लेकिन बाद में फ़ोन वापस बैग में डालकर उनके घर की तरफ मुड़ गईं। मिस अनामिका को फ़ोन का उपयोग असहज कर देता था, कारण उनको भी नहीं पता था। फ़ोन उन्होंने सिर्फ अपने बेटे से बात करने के लिए ही रखा था। अंत में वह प्रोफ़ेसर गुप्ता के घर के सामने खड़ी थीं।

दरवाज़ा उनके तिब्बती सहायक जामयाँग ने खोला और मिस अनामिका सीधे प्रोफ़ेसर गुप्ता के कमरे की तरफ चली गईं। कमरे के अंदर चीज़ें व्यवस्थित थीं। फर्श और दीवारों पर लकड़ी का काम था और अनेक मक्खन के दिए जल रहे थे। सब कुछ साफ, सुंदर और रोशन।

प्रोफ़ेसर गुप्ता कोई किताब पढ़ रहे थे और वह भी इतने ध्यान से कि उनको मिस अनामिका के वहाँ होने तक का एहसास नहीं हुआ। वहाँ तरह-तरह की किताबें थीं, दि सर्मन ऑन दि माउंट, राबिया-बसरी के गीत, मैडम ब्लातवट्स्की की सेवन पोर्टलस आफ़ समाधि इत्यादि। दूसरी तरफ टेबल पर नक़्क़ाशी का समान छेनी, गोज और कुछ अलग-अलग आकार के लकड़ी के टुकड़े पड़े थे। बहुत ही कलात्मक और बौद्धिक शौक थे प्रोफ़ेसर गुप्ता के।

"प्रोफ़ेसर गुप्ता" मिस अनामिका जी धीमे से बोलीं। प्रोफ़ेसर गुप्ता एकदम से चौंक गए। उनको विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मिस अनामिका उनके कमरे में उनके सामने खड़ी थीं। मिस अनामिका को सही से पता था कि प्रोफ़ेसर गुप्ता उनको किस रूप में देखते हैं, लेकिन फिर भी प्रोफ़ेसर गुप्ता के सानिंध्य में जो नरमी और आत्मीयता उनको मिलती थी, वह बहुत अमूल्य और अनोखी थी। चट्टान जैसे मज़बूत लेकिन जल की तरह तरल प्रोफ़ेसर गुप्ता के मन में कई बार मिस अनामिका का हाथ पकड़ कर बैठने की इच्छा उठती थी, लेकिन उन्होंने कभी कोशिश ही नहीं की, वैसे भी प्रेम कोई निश्चित प्रयास नहीं है, इसमें सहज भाव से डूबना होता है, समाहित होना होता है।

"आप आज आए नहीं, मैं इंतज़ार कर रही थी..."

"ओह...मेरा इंतज़ार...दरअसल मैं आज नक़्क़ाशी की क्लास भी नहीं गया। कोई ख़ास वजह नहीं है, बस मन ही नहीं था।"

"क्या पढ़ रहे थे आप?"

"आजकल विश्व साहित्य पढ़ रहा हूँ। सुबह से निज़ार कब्बानी की कविताओं में डूबा हुआ था।"

"अच्छा...लेकिन मैंने कभी उनके बारे में नहीं सुना...आप उन की कोई पंक्ति सुनाइए...जो आपको सबसे ज़्यादा पसंद हो।"

"हाँ, ज़रूर अनामिका।"

इतनी देर में जामयाँग चाय लेकर आ गया और वे दोनों वहीं डाइनिंग टेबल पर बैठ गए. प्रोफ़ेसर गुप्ता ने एक घूँट चाय का पिया और कविता कहनी शुरू की...

"मैं कोई शिक्षक नहीं हूँ, जो तुम्हें सिखा सकूँ कि कैसे किया जाता है प्रेम। मछलियों को नहीं होती शिक्षक की ज़रूरत, जो उन्हें सिखाता हो तैरने की तरकीब और पक्षियों को भी नहीं, जिससे कि वे सीख सकें उड़ान के गुर.... तैरो ख़ुद अपनी तरह से, उड़ो ख़ुद अपनी तरह से, प्रेम की कोई पाठ्य-पुस्तक नहीं होती...।" अनामिका जी कहीं खो गईं थीं और प्रोफ़ेसर गुप्ता एकदम चुप हो गए।

"बहुत ही सुन्दर है। कविताओं के सम्मोहन उनके काम आते हैं जिनको उनकी ज़रूरत है। लेकिन ज़्यादातर लोग तो अंधी दौड़ में शामिल हैं.." अनामिका जी कुछ सोचते हुए बोलीं।

"ज़रूरत से ज़्यादा बौद्धिकता और आधुनिकता ने हमारे स्वाभाविक मृदु भाव छीन लिए हैं, अनामिका।"

"जी, समाज हर बात को 'इंटेलेक्चुअल लैंस' से ही देखता है और भाव जगत्, को देखने समझने की कोशिश कोई नहीं करता।"

प्रोफ़ेसर गुप्ता मिस अनामिका को ध्यान से देख रहे थे और उनकी आँखों में जो गूढ़ सांकेतिक भाषा थी, मिस अनामिका समझ पा रही थीं।

"भाव जगत् एक विस्तृत विषय है...एक आदिम अवस्था... सामाजिक तो बिलकुल भी नहीं..." प्रोफेसर गुप्ता चाय पीते हुए बोले।

"और, शब्द केवल संकेत दे सकते हैं.. प्रेम जैसे विस्तृत विषय को केवल जिया जा सकता है, जाना नहीं जा सकता।" मिस अनामिका बोलीं।

प्रोफ़ेसर गुप्ता जैसे किसी नए लोक में थे... यथार्थ और स्वप्न के पार की कोई दुनिया... दोनों एक दूसरे को देख रहे थे और जामयाँग उन दोनों को। वह खाने में त्सम्पा बनाकर लाया था। प्रोफ़ेसर गुप्ता कुछ सहज हुए और मज़ाक में बोले कि तिब्बती लोग जीवन के पहले खाने से अंतिम खाने तक त्सम्पा और चाय पर ही निर्भर रहते हैं। उसके बाद दोनों घंटों बैठे बातें करते रहे और मिस अनामिका वापस होम स्टे आ गईं।

प्रोफ़ेसर गुप्ता को लेकर मिस अनामिका के विचार उदार थे और वह ये भी जानती थी कि प्रोफ़ेसर का उन के प्रति आकर्षण स्वाभाविक और विशुद्ध है। प्रेम सामाजिक नहीं अस्तित्वगत है... इतना व्यापक कि हर रूप में बाँटा जा सकता है। जीवन और प्रेम भी कभी तार्किक हुए हैं भला? उन दोनों का ऐसे ही मिलना चलता रहा और हिमपात के दिन आ गए। पूरी धौलाधार हिमपात के दिनों में बर्फ की चमकती पोशाक पहन लेती थी। जीवन में पहली बार रुई जैसी नर्म ताज़ा बर्फ के फूल आसमान से झरते हुए अनामिका जी देख रहीं थीं और ख़ुद को अकल्पनीय दुनिया में पा रहीं थीं। उस दिन मिस अनामिका कुदरत के इस तिलस्म को देखने दूर तक चली गईं और धर्मकोट के ऊपरी शिखर पर जाकर अचंभित हो गईं। बर्फबारी रुकी हुई थी और बहती हुई ठंडी हवा के शोर में एक नई आवाज़ भी सुनाई दे रही थी, मठों से संगीत की आवाज़... प्रार्थना ध्वज ज़ोर -ज़ोर से लहरा रहे थे। दूर की पहाड़ियों के भ्रुवों पर जो दरारें थीं, उनमें बर्फ ऐसे भर गई थी जैसे घाव भरते हैं। मिस अनामिका ने ख़ूब तस्वीरें लीं और प्रोफ़ेसर गुप्ता के घर की तरफ चल पड़ी। प्रोफेसर गुप्ता स्वास्थ्य कारणों से बर्फबारी के कारण बाहर नहीं आ रहे थे। पिछले तीन चार दिनों से वह घर में ही थे। उनके पास जाते ही अनामिका पहाड़ों और बर्फ की सुंदरता का बखान करने लगीं और गर्मजोशी से प्रोफ़ेसर गुप्ता को तस्वीरें दिखाने लगीं। वह पचपन साल की महिला नहीं बिल्कुल बच्चे जैसी लग रहीं थीं और प्रोफ़ेसर गुप्ता उनको अनवरत देखते, सुनते जा रहे थे, जबकि खोए वह अपने ख़यालों में थे।

प्रेम में दूसरा ही सब कुछ हो जाता है, ख़ुद से भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण। 'मैं' का विसर्जन हो

जाता है बचता है सिर्फ 'होना', प्रोफ़ेसर गुप्ता यह महसूस कर पा रहे थे। उनकी आँखें अप्रत्याशित कारणों से नम हों उठीं और उन्होंने मिस

अनामिका के कंधे पर हाथ रख दिया। यह पहली बार हुआ था। इस छुअन से मिस अनामिका अपनी तिलिस्मी दुनिया से बाहर यथार्थ में आ गईं और उनकी सिसकी निकल गई। यह वह आत्मीय स्पर्श था, जो उन्हें आजीवन नहीं मिला था। वह दोनों देर तक चुपचाप बैठे रहे। मिस अनामिका जान चुकी थीं कि जीने के लिए नियम या सामाजिक बंधन नहीं बल्कि अनाम प्रेम चाहिए। प्रोफ़ेसर गुप्ता के हाथ उनके सिर और कंधे को सहलाते रहे और मिस अनामिका देर तक रोती रहीं। तीस साल की चट्टान जैसी कठोर शादीशुदा ज़िंदगी की दुखद, निरर्थक और भयावह यादें आज स्वयं को प्रत्यक्ष रूप से उद्घाटित कर रही थीं।

"यदि मेरे साथ चलने पर तुम्हारी ज़िंदगी में कोई ख़ुशी आ सकती है तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ अनामिका। हम अगला आने वाला जीवन एक साथ...." मिस अनामिका कुछ सँभलीं और उन्होंने अपने आँसू पोंछे।

वह मुस्कराते हुए बोलीं, "प्रोफ़ेसर गुप्ता, मैं सारा जीवन खंडित वार्तालाप करती आई हूँ लेकिन अब इतने सालों बाद मुझे मेरे अंदर के स्वर स्पष्ट भाषा में निर्देश दे रहें हैं कि अब मुझे किसी भी तरह के बंधन की नहीं बल्कि स्वतंत्रता की ज़रूरत है। मैं आपके प्यार के साथ मुक्त हो कर जीना चाहती हूँ...जैसे एक दिन आपने कविता में बोला था कि तैरो ख़ुद अपनी तरह से, उड़ो ख़ुद अपनी तरह से..."

प्रोफ़ेसर गुप्ता चुप रहे। उनको ऐसा महसूस हो रहा था जैसे उन दोनों के मध्य असंख्य धवल वर्तुल प्रकट हो रहे थे और दोनों के हृदयों का संयोग करवा रहे थे। बहुत गरिमा के साथ उन्होंने मिस अनामिका की बात को मुस्कराते हुए मौन समर्थन दिया। जीवन की वास्तविकता एक हद पर जाकर हमसे शब्द छीन लेती है। विशुद्ध प्रेम के उज्ज्वल प्रकाश में निराशा का एक कतरा भी नहीं रहता और एक गहरी समझ का उदय होता है। उस दिन मिस अनामिका ने अपनी अगली ट्रैवल डेस्टिनेशन के बारे में भी बात की। हिमाचल के पहाड़ों पर लम्बा समय गुज़ार देने के बाद अब वह जंगलों की तरफ जाना चाहती थीं और अंततः एक महीने बाद वह चली भी गईं।

इस बात को एक साल बीत चुका था और मिस अनामिका इन दिनों सुंदरवन के जंगलों में फ़ोटोग्राफी कर रही थीं। प्रोफ़ेसर गुप्ता और वह लगातार फ़ोन और चिट्ठियों के माध्यम से संपर्क में बने रहते थे और एक बार दोनों की मुलाकात जिम कार्बेट में हुई थी, जब मिस अनामिका ने प्रोफ़ेसर गुप्ता को जंगल सफारी के लिए बुलाया था। पत्रों में वह प्रोफ़ेसर गुप्ता को अपने नए-नए अनुभव बतातीं और प्रोफ़ेसर गुप्ता उनको 'थॉट ऑफ द डे'। आज प्रोफ़ेसर गुप्ता अपनी किताबों में डूबे हुए थे कि जामयाँग उनके पास एक कोरियर लेकर आया। प्रोफ़ेसर गुप्ता ख़ुशी से उछल पड़े, यह मिस अनामिका ने भेजा था। जल्दी-जल्दी उन्होंने खोला तो उसमें प्रोफ़ेसर गुप्ता की जिम कार्बेट वाली एक फ्रेम्ड तस्वीर निकली, जो प्रोफ़ेसर गुप्ता को भी याद नहीं था कि मिस अनामिका ने कब खींची थी। और साथ में एक पत्र और सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की तरफ से एक एंट्रीपास था। बिना वक्त गँवाए प्रोफ़ेसर गुप्ता ने चिट्ठी पढ़नी शुरू कि तो पता चला कि इस साल का 'एमेच्योर फ़ोटोग्राफ़र ऑफ़ द ईयर' का पुरस्कार मिस अनामिका को मिलने जा रहा था और मिस अनामिका ने उनको उस कार्यक्रम के लिए अगले हफ्ते दिल्ली बुलाया था।

प्रोफ़ेसर गुप्ता की आँखों में चमक आ गई। वह सोचने लगे कि अनामिका ने स्वतंत्र जीवन की अमर और अंतहीन प्रकृति को पा लिया था। सालों की गहन विनयशीलता, कष्ट, सादगी और संयम मनुष्य की मनोवृत्ति की नक़्क़ाशी करके कैसे बदल देते हैं, मिस अनामिका को देखकर समझ आ रहा था। उपनिषदों में इसको ही चेतना का रूपांतरण कहा गया है।

000

लघुकथा

ज़िंदा

विजयानंद विजय

सड़क किनारे तिरस्कृत पड़ी एक ईंट ने सुबह-सुबह फुटपाथ पर उग आई नन्हीं-सी कोंपल को बड़े आश्चर्य से देखा और पूछा - "कमाल है, इतनी कोमल और नन्हीं-सी जान, और पत्थर का सीना चीरकर तुम ऊपर आ गईं...? कैसे ?"

"ऐसा है भाई, हमने तो मुश्किलों में ही जीना सीखा है। कुदरत ने हमें इतना सख्त बनाया है कि सृजन के बीज लेकर हम बरसों तक यूँ ही पड़े रहते हैं। मगर ज्यों ही हमें मिट्टी और पानी के स्नेह की नमी मिलती है, हमारा रोम-रोम ऊर्जा से भर जाता है, और अपनी इसी प्रचंड शक्ति से हम धरती का सीना फाड़कर उग आते हैं।"

"हम्म्...!" - ईंट ने ठंडी साँस भरी।

कोंपल ने फिर कहना शुरू किया - " यह ज़िंदा कौमों का जीवन-संघर्ष है, भाई। अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए सीने में आग, फौलादी इरादे और जिजीविषा का होना बहुत ज़रूरी है। तुम मुर्दा लोग क्या समझोगे?" सूर्य के प्रकाश में अपने नए-नए पत्तों को खोलकर, सिर उठाकर आसमान की ओर देखते हुए कोंपल ने कहा।

000

विजयानंद विजय, आनंद निकेत, बाज़ार समिति रोड, होमगार्ड गेट के सामने, पो. - गजाधरगंज, बक्सर (बिहार) - 802103
मोबाइल- 9934267166
ईमेल-vijayanandsingh62@gmail.com

मोहभंग

शैल अग्रवाल

रात के बारह, साढ़े बारह तक स्टेशन पहुँच जाना सही लगा था उन्हें, पर स्टेशन पहुँचते-पहुँचते आलम दूसरा था। हड्डी कँपकँपाती ठंड और गाड़ी का कहीं कोई अता-पता नहीं। यूँ तो अच्छी तरह से पता करके ही चले थे वह घर से, परन्तु शाम को तीन बजे तक आने वाली गाड़ी की अब भी, रात में एक बजे तक पहुँचने की संभावना ही बताई जा रही थी।

'इन गाड़ियों का कोई भरोसा नहीं रह गया ... दस पंद्रह मिनट आगे पीछे होना बड़ी बात नहीं, क्या पता थोड़ी पहले ही आ जाए।' आशावादी थे तो कुछ ऐसा-ही सोचकर वक्त से पाँच-दस मिनट पहले ही चल पड़े थे घर से। पर कुली के साथ सारे प्रतीक्षालय देखने के बाद भी, कहीं पैर तक रखने की जगह नहीं मिल पा रही थी उन्हें स्टेशन पर। हार कर बाहर किसी बेंच पर ही बैठने का फैसला लिया गया।

ओवरकोट की कालर ऊपर कर ली थी और सारे बटन भी बन्द कर लिए थे। मफलर को भी गरदन पर ठीक से लपेट लिया था उन्होंने, फिर भी ठंड से काँप रहे थे वह। उनके अपने शहर की दिसंबर की ठंड थी यह। कैप और दस्ताने छूकर देखे, तो सुन्न पड़ती उँगलियों और जमे सिर पर ज्यों-के-त्यों मौजूद थे, गिरे नहीं थे।

'साहब जी, यहीं पर आपकी बोगी लगेगी और मैं गाड़ी आते ही, चढ़ाने आ जाऊँगा।' कह कर कुली भी ग़ायब हो गया तुरंत ही। अब वे थे और उनकी तन्हाई।

ऐसे में सैम का ख़याल आना स्वाभाविक था। पिता थे आख़िर 'न जाने कैसी और किस हालत में होगी, बेटी!' भीगी कोरों को पोंछते हुए एक बार फिर से सैम की सलामती की प्रार्थना की भगवान् से और वहीं भीड़-भाड़ से थोड़ी दूर, एक ख़ाली बैंच पर जाकर बैठ गए वह। बगल में बैठा वह पागल-सा दिखता व्यक्ति कभी उन्हें देख रहा था, तो कभी उनकी चमचमाती सैम्सोनाइट की अटैची को। ख़ुद उसके पास अपना एक सामान तक नहीं था। ज़रूर कोई उठाइगिरा या चोर उचक्का ही होगा -सोचने पर मजबूर थे वह। स्वभाव से बेहद सतर्क वे, ध्यान आया कि आज एयर-लाइन का टैग तक फाड़ना भूल गए थे।

'बाहर से आए हो क्या साहब?' उसने तभी पूछा।

'नहीं तो।' कह तो दिया उन्होंने पर उनकी आँखें मुँह चिढ़ाते अटैची पर लगे बिल्ले पर ही गड़ी रहीं। उठे और तुरंत ही फाड़कर जेब में रख लिया।

अब वह उन्हें और वे उसे बार-बार टटोलती नज़र से देखे जा रहे थे। और जब और सहन न

शैल अग्रवाल
1 ए, ब्लैकरूट रोड, सटन कोल्डफील्ड,
वेस्ट मिडलैंड्स, यू.के.
पोस्ट कोड- B 74 2 Q H
मोबाइल- 447701348154
ईमेल- shailagrawal@hotmail.com

हुआ तो शायद उन्हीं की राहत के लिए वह आवारा-सा दिखता आदमी उठकर कहीं और चला गया।

स्टेशन पहुँचे दो घंटे बीत चुके थे। पर अभी भी हर आधे घंटे पर घोषणा ही हो रही थी –प्रयागराज अपने निर्धारित समय से आधे घंटे विलंब से प्लेटफार्म क्रमांक 4 पर आने की संभावना है... अब तो सुनना भी छोड़ दिया था उन्होंने।

अकेले अपनी ही दुनिया में डूब चुके थे वह। दूर खड़े लैम्प पोस्ट की धुँधली पीली रोशनी में मूँगफली का एक दाना मुँह में जाता तो एक सामने बैठी बंदरिया की खुली हथेली पर। पहले तो दूर से ही ले रही थी, फिर धीरे-धीरे खिसकते-खिसकते बड़े भरोसे के साथ ठीक उनके सामने आ बैठी थी। आदमियों की भीड़-भाड़ से दूर, इस सूने छोर पर विश्वास का एक रिश्ता जुड़ चुका था उनके बीच। तुरंत हाथ पसार देती थी ख़त्म होते ही। और वह भी तो झट से अगला दाना रख देते थे उसकी फैली हथेली पर। बीच-बीच में बगल के खंभे पर चिपका बैठा बच्चा भी एकाध मूँगफली झपट ही लेता था माँ से। ज़्यादा नहीं, बस एकाध। वरना बड़ी-बड़ी आँखों से टुकुर-टुकुर देख ही अधिक रहा था। तभी अचानक एक चीत्कार के साथ बच्चा लपका और भयभीत माँ की छाती से आ चिपका।

बंदरिया भी आनन-फानन हाथ की मूँगफली फेंक चिपके बच्चे को कसकर अपनी सुरक्षा में लेती, सामने खड़े बंदर पर ज़ोर से गुर्राई। दाल ग़लती न देखकर, धमकाता-डराता-सा भारी भरकम वह बन्दर मुड़ा और दूसरी तरफ चला गया। अब बच्चे के साथ बंदरिया भी पुल के नीचे के उस सपाट लोहे के हिस्से पर जा चढ़ी थी जो शायद उनका रैन बसेरा था। देखते-देखते कई और बंदर भी आ जुटे थे वहीं पर।

'शहरी बंदर हैं तो क्या, पौ फटने को है। थोड़ा बहुत आराम तो इन्हें भी चाहिए ही।' एक ठंडी साँस बरबस ही निकल गई उनके आश्चर्य से भिंचे होठों से।

ठंडी बेंच पर यूँ कड़कड़ाती ठंड में इंतज़ार करते पूरी रात निकली जा रही थी उनकी, परन्तु गाड़ी के आने की अभी भी कोई सूचना नहीं थी। बंदरिया के जाते ही एक बार फिर रहस्यमय सन्नाटा पसर चुका था उनके चारों तरफ।

कितना ध्यान रखते हैं यह जानवर भी अपने बच्चों का... आँसुओं से धुँधलाए चश्मे को साफ करके घड़ी देखी तो सुबह के चार बजने वाले थे। पर गाड़ी अभी तक नहीं आई थी।

'क्या टैक्सी करके इलाहाबाद के लिए निकल जाऊँ? अरे नहीं, अब तो आ ही रही होगी गाड़ी, इतना इंतज़ार किया तो थोड़ा और सही।' शिथिल मन और शरीर दोनों ही सुन्न पड़े थे और हिलने तक की हिम्मत नहीं थी अब उनमें। छत्तीस घंटों से अधिक हो चुके थे घर से निकले और अभी तक लेटे भी नहीं थे साठ वर्षीय जवाहर शास्त्री। लंदन से दिल्ली और फिर दिल्ली से कानपुर। कानपुर इसलिए कि ख़बरों की मानें तो, आख़िरी बार सैम यानी समैन्था को यहीं कानपुर में ही देखा था किसी ने। शायद दादी से मिलने आई हो? आई तो थी, कह भी रही थीं पर माँ को तो कुछ पता ही नहीं, सिवाय इसके कि पोती कुंभ नहाने गई है। एक बार बस एक बार कैसे भी वक़्त की सुई वापस कर पाते वह और सैम को न आने देते भारत! रोक लेते वहीं, इंगलैंड में ही!

सोच रुकने का नाम नहीं ले रही थी। मस्तिष्क पर हथौड़े-जैसे प्रहारों से बेबस जवाहर शास्त्री की आँखों में हाल की घटी घटनाएँ अटकी रील सी किरक रही थीं।

'तो पापा मैं जाऊँ? देखूँ तो सही इस आध्यात्म, आस्था और आडंबर के अनूठे संगम को! सुनते हैं एथेंस से भी बड़ा एक क्षणिक और कृत्रिम शहर खड़ा हो जाता है संगम के किनारे और तब भी सब कुछ बेहद सुचारु चलता रहता है। यह अद्‌भुत आयोजन भारत जैसे धार्मिक देश में ही संभव है!'

आर्कीटेक्ट की छात्रा समान्था, उस योजना और सामूहिक संचालन की कल्पना मात्र से उत्तेजित थी।

'यह अनुभव विरल ही होगा मेरे लिए। प्लीज़ पापा!'

'नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। सत्रह वर्षीय किशोरी बेटी का वहाँ भीड़-भाड़ में जाना!', सोच तक कँपा रही थी उन्हें।

'पर सैम अकेली तो नहीं, सहेली तारा भी तो जा रही है साथ में।'

पत्नी जैकलिन ने उत्साहित होकर बीच में ही योजना को शह देते हुए क़रीब-क़रीब अनुमति दे दी।

'अगर मुझे छुट्टी मिल पाती तो मैं भी अवश्य ही जाती इनके साथ। सुना है, वहाँ आने वाला यह नागा साधु लोग बहुत पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष होता है। मेरा भी बहुत डिज़ायर था इन्हें देखने का, एक बार मिलने का। सुना हिमालय की कंदरा और जाने किस-किस ऊँचाई से नीचे उतरता है यह लोग कुंभ नहाने के वास्ते।'

जैकलिन का उत्साह भी सैम या तारा से कम नहीं था। तब उस सारे उत्साह और ललक को देखते हुए न चाहते हुए भी 'हाँ' कर ही दी थी उन्होंने भी।

'हाँ। पर ध्यान रहे कि मन या पढ़ाई पर ज़्यादा असर न पड़े और खाने-पीने का संयम व हर बात का ध्यान रखना होगा, तुम्हें, विशेषत: पानी का।' कड़ी हिदायत के बाद ही जाने दिया था उन्होंने बेटी को। आख़िर, बचपन में माँ भी तो जाती ही थीं कुंभ नहाने। उन्होंने तो कोई बीमारी नहीं पकड़ी कभी। गिरी-फिसली भी नहीं कहीं। यह बात दूसरी है कि वे ख़ुद कभी नहाने नहीं गए। कितनी भी पावन और निर्मल हों नदियाँ, इतनी भीड़-भाड़ और दूसरों के शारीरिक निष्क्रमण के बाद उस पानी में डुबकी ले पाना...उनके बस की तो बात ही नहीं थी।

अगले दिन ही कुंभ में नहाने की अनुमति और आसपास के दर्शनीय स्थलों की लम्बी सूची लेकर सैम निकल पड़ी थी ब्रिटेन से। पहली बार भारत आई थी, उत्साह आसमान छू रहा थाा। दादी की गंगाजली में संगम का पानी लाने का वादा भी किया था उसने माँ से। और अभी हफ्ता भी नहीं बीता होगा कि बिना कुछ घूमे ही सैम लापता हो चुकी थी। किसी को पता नहीं, सैम कहाँ और कैसी है? चार दिन बीत चुके हैं इस बात को भी और अभी तक उसका कोई पता नहीं चल पाया है..भारत

की पुलिस, होम ऑफ़िस किसी के पास कोई सूराख नहीं। पुलिस का कहना है कि अगर डूबी भी होती तो अब तक कुछ तो पता चलता, लाश मिलती। ... यह कैसे संभव है ! सैम समझदार है। ज़िम्मेदार है। पढ़ी-लिखी है। अपना हित-अहित जानती है। ...डूब नहीं सकती। अपहरित भी नहीं हो सकती... फिर गायब कैसे... कहीं नहीं जाती वह तो उनकी अनुमति के बिना। कैसे खो सकती है उनकी बेटी, बच्चा नहीं है सैम ...वस्तु भी नहीं है जो इधर-उधर हो जाए या जेब में रखकर कोई चल दे!

मन में झंझावत था और आँखों से आँसुओं का निर्झर।

अचानक सोया पड़ा प्लेटफार्म जग गया और भीड़ का रेला निकल पड़ा चारों तरफ़ से। लोग बेतहाशा इधर से उधर दौड़ने लगे।

'साहब चलें, अपनी गाड़ी लग गई।' कुली अटैची सिर पर रखे चलने को तैयार खड़ा था और उन्हीं से पूछ रहा था।

'हाँ-हाँ क्यों नहीं।' जवाहर शास्त्री भी अपनी विचारों की तंद्रा से अधजगे-से यंत्रवत् चल पड़े कुली के पीछे-पीछे। कुली जो उनसे भी अधिक उम्र का ही दिख रहा था, अटैची के बोझ से टेढ़ी गर्दन के साथ, उनसे भी तेज़ दौड़ा जा रहा था, पर।

'सुनो तुम चाहो तो इसे घसीट भी सकते हो। पहिए हैं इसमें।'

'दूर ही कितना है-आप बस आइए, बाबूजी।'

कुली समझदार था और भारतीय रेल व्यवस्था को उनसे बेहतर जानता था।

मिनटों में डिब्बे के अंदर बिठा दिया उसने उन्हें। पचास की जगह सौ रुपए दिए थे उन्होंने भी। और तब उसकी कृतज्ञ मुस्कान देखकर दुख के उस पल में भी, उन्हें अच्छा लगा था। सामने की सीट पर अधेड़ सरदार दंपति बैठे हुए थे, लगभग उन्हीं की उम्र के से। शायद कुंभ नहाने ही जा रहे थे। सामने कंबलों का ढेर पड़ा था और पास में ही आठ दस बंद कनस्तर भी करीने से सजे रखे थे। इनमें ज़रूर खाने पीने का सामान होगा बाँटने के लिए। संगम पर दान भी तो किया जाता है- न चाहते हुए भी उनकी सोच अब अटकल पर अटकल लगाए जा रही थी।

'सत् श्रीकाल जी। तुस्सी भी स्नान वास्ते जा रहे हो क्या जी?' सरदार जी ने गाड़ी के स्टेशन छोड़ते ही परिचय बढ़ाना चाहा।

'कल की पौष की पूरनमासी का ख़ासा महत्त्व होन्दा है। हम इसी वास्ते दिन पहले ही जा रहे हैं। मौनीमावस तक वहीं रैंगे। साढा तो टेन्ट भी बुक्ड है। और आपका।'

'हाँ, नहीं।'

एक अटपटा-सा जबाव देकर सोने की निरर्थक कोशिश की जवाहर शास्त्री ने तब। पर चार क़दम बढ़कर गाड़ी फिर से आगे जाने की बजाय वहीं सिगनल पर ही फिर खड़ी हो गई।

'नौ-दस बजे तक तसल्ली से रुकती, साँस लेती पहुँच ही जाएगी यह भी।' सरदार जी बोले तो जवाहर शास्त्री ने ठंडी साँस ली और ख़ुद को पुन: तसल्ली देनी चाही। 'वैसे भी ये सरकारी काम दस के पहले भला कहाँ हो पाते हैं!' ख़ुदको बहलाते-फुसलाते करवट पलटकर लेट गए वह। पीठ सीधी करना बहुत ज़रूरी हो चला था पर नींद की कहो तो उनकी आँखों में तो एक रेशा तक नहीं था।

'माना स्पर्धा के इस तेज़ और बेरहम युग में दूसरों को रौंदकर आगे बढ़ जाना आम बात है पर उनकी सैम तो किसी के राह की बाधा नहीं बनी कभी?...बन ही नहीं सकती, फिर उसके साथ ऐसा क्यों हुआ !' मन ही मन योजना पर योजना बनाए जा रहे थे कि बेटी को कहाँ-कहाँ और कैसे-कैसे ढूँढ़ना है? किस-किस की मदद लेनी होगी। ढूँढ़ना तो उन्हें ही होगा, पर। उनके बगैर यह काम कोई और कर भी तो नहीं सकता।

'उनकी बेटी है सैम, खोई नहीं, ज़रूर छुप गई है, बस। बचपन से ही यह लुकाछिपी का खेल प्रिय खेल है उसका।' समझाने की जितनी कोशिश करते हर बात बेइमानी लगने लगती। और-और बेचैन करने लग जाती। फिर भी हर संभावित संभावना को मन पलपल खँगाले जा रहा था।

फिर क्रिसमस कैरल-सी सदा ही ख़ुश और गाती चहकती उनकी इकलौती बेटी सैम ...कैसे है से थी बन सकती है और कैसे बनने दे सकते हैं वह! चाहे कुछ भी कहे कोई, उनका मन कह रहा था कि सैम ज़िंदा है और वह उससे अवश्य ही मिलेंगे। बिल्कुल इन हिन्दुस्तानी फिल्मों की तरह जहाँ कुंभ में खोए लोग मिल जाते हैं। पर बीस तीस साल बाद नहीं। अभी ही ढूँढ़ना है उन्हें। सोच मात्र से अवसाद और थकान की रेखाएँ कुछ कम हो जातीं और एक धीमी मुस्कान और चमक उभर आती उनके म्लान चेहरे पर।

राजतंत्र हो या प्रजातंत्र एक सुचारु शासन के लिए 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' का एहसास...ज़िंदगी में सपनों और विश्वास का बचा रहना आवश्यक है जानते थे वह। और शायद ऐसा पहली बार हुआ था, जब भारत में चारों तरफ विश्वास की कमी नज़र आ रही थी उन्हें।

'क्या खाएगी और क्या खिलाऊँगी मैं पोती को। अब यह भारत तो रहने लायक जगह ही नहीं रही। अच्छा हुआ जो तू दूर जा बसा। पैसे हाथ में लिए घूमते रहो पर मजाल है कि कुछ भी शुद्ध मिल जाए! हर चीज़ में मिलावट।' महीने भर पहले ही माँ ने फ़ोन पर आगाह किया था उन्हें। पर तब कब अनुमान था उन्हें स्थियों की जटिलता का, 'माँ तुम्हारी तो आदत पड़ चुकी है बस शिकायत करते रहने की'- कहकर फ़ोन रख दिया था, बस।

होम-ऑफ़िस का फ़ोन और वह बेचैनी भरी ख़बर, फिर एक बदहवास हालत में ख़ुद भारत आना; जी हाँ वही भारत जहाँ आने के लिए वह महीनों तैयारी किया करते थे। आज, बस दो जोड़ी कपड़ों के साथ आ पहुँचे थे। और अब यह लम्बी भागदौड़। ख़बर ठीक से असर तक कर पाए इतना भी वक्त नहीं देती कभी-कभी यह ज़िंदगी।

इलाहाबाद पहुँचते ही घटनाओं का चक्रवात इंतज़ार कर रहा था उनका।

सामने महाकुम्भ का मेला नहीं एक जादूनगरी पसरी पड़ी थी, जहाँ 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' धुन गूँज रही थी विस्तृत मैदान के कोने-कोने से।..उनकी प्रिय धुन थी यह.., पर जाने क्यों आज कर्कश लग रही थी। चुभ रही थी उनके कानों में।

'हर जगह पाप भ्रष्टाचार। दरिंदगी में सबसे आगे।' माँ ने कहा था फ़ोन पर। ...उनका सपनों का भारत बदल चुका था। घिनौना लग रहा था अब यह सब। फूल-सी हँसती-मुस्कराती सैम को यूँ इस रेले में झोंकना, कितनी समझदारी थी... भरी दोपहर में अँधेरा छा गया आँखों के नीचे। भरी दोपहरी का सूरज तक खो चुका था उस भीड़भाड़ में। बैग पर, पीठ पर सब जगह उन्होंने सैम की फ़ोटो छपवा रखी थी, फिर भी बैग से निकालकर सैम और तारा की पोस्टरनुमा फ़ोटो हाथ में ले ली थी अब उन्होंने और हर आते जाते राही से पूछ रहे थे जवाहर शास्त्री- 'क्या आपने इन दोनों लड़कियों को कहीं देखा है?' पर हर तरफ़ से निराशा ही हाथ लग रही थी। उस रेलम पेल में किसी के पास फुरसत नहीं थी कि उनकी तरफ देखे तक ठीक से।

अचानक ही वह सिर से पैर तक भभूत में लिपटा नंग-धड़ंग साधू ज़ोर-ज़ोर से हँसता हुआ न सिर्फ उनके आगे आकर खड़ा हो गया अपितु साथ चलने का इशारा भी करने लगा। क्या पता इससे ही कोई सुराग मिल जाए! डूबते को तिनके का सहारा था। चुपचाप पीछे-पीछे चल पड़े वह। जहाँ आकर वह रुका, वह विशाल तम्बू हर आधुनिक सुविधा से लैस था।

'यह प्रयागराज है। तीर्थों का तीरथ...तीरथाधिपति। सौभाग्यशाली हो, जो आज इस पर्व पर यहाँ मौजूद हो। त्रिवेणी संगम होने के कारण इसे यज्ञ वेदी भी कहते है। यही वह जगह है जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ने य़ज्ञ किया था। जहाँ गंगा, जमुना और सरस्वती तीन-तीन नदियों का संगम हुआ। पदम् पुराण में ऐसा माना गया है कि जो त्रिवेणी संगम पर नहाता है उसे मोक्ष प्राप्त होता है। जैसे ग्रहों में सूर्य तथा तारों में चंद्रमा है वैसे ही तीर्थों में संगम... ' सामने गद्दी पर बैठे गुरु जी का प्रवचन कर्कश और अरुचिकर ही अधिक था मन की उस व्यग्रता में। उद्विग्न जवाहर शास्त्री को इशारे से बैठने को कहा तब किसी ने।

उपस्थित सभी साधू नितांत नंगे और भभूत में लिपटे थे। किसी के गले में साँप तो किसी की जटाओं में पक्षी। अजीब माहौल था वह। दूर तक भभूत लिपटे मुँहों में पीली आँखें थीं और सफेद चमकते दाँत। पास ही एक शिविर महिला सन्यासिनों का भी था। कुछ जोगिया वस्त्रों में लिपटे बच्चे सेवा सुसुश्रा के कामों में लगे हुए थे। पर उनकी आँखें इन सबसे परे, दूरबीन की तेज़ी से सैम और तारा को ही ढूँढ़े जा रही थीं। अचानक उसी उम्र की एक विदेशी किशोरी आई और उनके हाथ में तुलसी अदरक का पेय देकर चली गई। सैम और तारा का अभी भी कहीं पता नहीं था। वहीं सामने एक साधु आग पर चलने का करतब दिखा रहा था। उनका मन किया कि वह भी आग पर चलें या बेहतर होगा लेट जाएँ। दो मिनट को तो माथे पर लगातार ठकठक करती यह सोच सुन्न होगी।

हिम्मत नहीं हारी थी उन्होंने बस बेहद थक गए थे जवाहर शास्त्री।

उठे और थोड़े और आगे बढ़े तो वही व्यक्ति फिर उनके कान के पास आकर फुसफुसाया-'कल सुबह ब्रह्म मुहूर्त में वापस यहाँ आना मत भूलना।'

दौड़ते-हाँफते आरक्षण शिविर पहुँचे तो बताया गया कि समैन्था शास्त्री अपनी सहेली तारा जॉर्ज के साथ 14 जनवरी को वहाँ आई तो थी और 14 नंबर का तम्बू भी रजिस्टर्ड है उन दोनों के नाम, पर अब पुलिस के संरक्षण में है यह। क्योंकि दोनों लड़कियाँ लापता हैं। किसी को अभी तक कोई सुराग नहीं मिल पाया है उनका कि वे ज़िंदा भी हैं या....

और तब पिता के चेहरे के बदलते रंग को देखकर ऑफ़िसर बीच में ही चुप भी हो गया था। सारी औपचारिक जाँच पड़ताल के बाद ही उन्हें अनुमति मिल पाई थी अपना सामान उस शिविर में रखने की। सैम और तारा के बैकपैक कोने में पड़े मानों उन्हीं का इंतज़ार कर रहे थे। सैम का सब सामान वैसे ही था जैसे कि उन्होने और पत्नी ने पैक किया था। कुछ नहीं खोया था वहाँ से सिवाय ख़ुद सैम और तारा के। थके हारे जवाहर शास्त्री कुछ पल आराम करने के इरादे से बिस्तर पर लेटे तो कान में वही आवाज़ पुन: पुन: गूँजती रही- 'सुबह आना मत भूलना।'

आँखें कब लगीं और कब खुल भी गई- पता ही नहीं चल पाया उन्हें। पर ब्रह्म महूर्त ही था वह और माघ की अमावस भी। आज के नहान का महत्त्व कितना अधिक था, भलीभाँति जानते थे वह। बाहर आए तो देखा- अँधेरा अभी छटा नहीं था, पर जलती मशाल लिए असंख्य साधुओं का रेला संगम की ओर बढ़ा चला आ रहा था। सबके सब निर्वस्त्र और सिर से पैर तक भभूत में लिपटे हुए, मानों राख और लपटों का एक जलजला बहा चला आ रहा हो उनकी ओर। पुरुषों के पीछे संख्या में उनसे बहुत कम महिला साधुनी चल रही थीं, पंक्तिबद्ध।

पुरुषों की तरह निर्वस्त्र नही थीं औरतें। उन्होंने एक भगुवा वस्त्र से ख़ुद को ढक रखा था। और उनके पीछे चल रहे थे चार छह ऐसे बच्चे जिनकी अभी दीक्षा नहीं हुई थी, शायद। हाथों में आटे का गोला था बिल्कुल वैसा ही जैसा कि पिंडदान के वक्त रहता है। जीते जी पिंडदान? तो क्या आज यह सन्यास व्रत लेंगे! चलो यह भी अच्छा ही हुआ, देखेंगे वह भी यह दीक्षांत समारोह। प्रभु कृपा से ही सुअववसर मिला है।

चाहकर भी ऐसा न आयोजित कर पाते वह अपने लिए। मन की बेचैनी को बहलाने की असफल कोशिश में वह ख़ुद ही धारणा बनाते और फिर तुरंत ही निरस्त भी करते चले जा रहे थे।

पहले स्नान का अधिकार, उन संसार से विरक्त नागा साधुओं का ही था। हो भी क्यों न नागा जीवन की विलक्षण परंपरा में दीक्षित होने के लिए पूर्णत: वीतरागी होना आवश्यक है। संसार की मोह-माया से मुक्त कठोर दिल वाला व्यक्ति ही नागा साधु बन पाता है, यह भी जानते ही थे वह। साधु बनने से पहले ख़ुद अपने हाथों से अपना ही श्राद्ध और पिंड दान करेंगे ये बच्चे। बाकायदा कठोर परीक्षा देते हैं ये, जिसमें उनके तप, ब्रह्मचर्य, वैराग्य, ध्यान, संन्यास और धर्म का अनुशासन तथा निष्ठा आदि को प्रमुखता से देखा व परखा जाता है। तभी मठ में स्वीकारे जाते हैं। फिर इनका जीवन ख़ुद अपना कहाँ रह जाता है, बस धर्म और आध्यात्म को ही पूर्णत: समर्पित

रहते हैं ये आजीवन। ऐसा कहीं पढ़ा था उन्होंने भी, परन्तु मस्तिष्क जाने क्यों स्वत:ही श्रद्धा से झुका नहीं उनका...कहीं इनके बीच ही तो उनकी सैम नहीं, एक ख़याल जैसे ही साँप-सा फुँफकारा तो तुरंत ही दूर झटक दिया- अनपढ़ और अंधविश्वासी नहीं है उनकी सैम !

अचानक हर हर महादेव की गगनभेदी गूँज के साथ रुंड-मुंड बच्चे, एक एक करके छपाक-छपाक जल में कूदने लगे। लट्ठ, कृपाण, खड्ग और भाले, चारों दिशाओं से बिजली-से चमक रहे थे चारों तरफ रौशनी का एक घेरा सा बनाकर। और चमक रही थी राख पुते सफ़ेद चेहरों से पीली आँखें और लाल मसूढ़ों में जड़े उनके सफेद दाँत भी। बहुत - बहुत हृदयहीन और एक घिनौनी साज़िश-सा लग रहा था जवाहर शास्त्री को उन मासूमों का यह नया रूप। आस्था और उन्माद से भरा एक ललकारता पल था वह।

लम्बी जटाओं से घुमावदार जलबूँदें दृश्य को कुछ कोमलता तो दे रही थीं, परन्तु शांति नहीं। अजीब रोमांचक पर कुछ-कुछ डरावना दृश्य था वह। और तब भय के साथ-साथ थोड़ी विष्तृणा भी जगी उनके मन में। किसी के हाथ में खड्ग, किसी के में चिलम तो किसी के हाथ में चिमटा... कइयों के हाथ में लपलप करती तलवारें भी... तो शस्त्र भी धारण करते हैं ये साधू ? जवाहर शास्त्री की विस्मित आँखों के आगे अभी तो कई और रहस्य अनावृत होने थे। सुना है इनमें से कइयों ने कुंडलनी जगा रखी है। कई असंभव काम कर सकते हैं-जैसे कि हवा में उड़ना, पानी पर चलना, मृतकों से बातें करना आदि... केंचुए सा रेंगता अज्ञात का भय और आभास भयभीत कर रहा था उन्हें अब। अंदर तक काँप रहे थे वह। उनके जल से निकलने के बाद ही स्त्री नागा और बच्चों की बारी आई।

बर्फ से ठंडे जल में डुबकी लेने के बाद अब वे विद्यार्थी से दिखते बच्चे पंक्ति बद्ध रेत पर बैठा दिए गए थे। बिठाते ही सर्व प्रथम उस्तरे से उनके बाल उतारे गए। भौंहें तक साफ कर दी गई थीं। अपने इस नए रूप में अब वे अपरिचित और वीत राग से दिखने लगे थे। सारे गिरे बालों को ख़ुद ही यंत्रवत् हर बच्चे ने आटे में लपेटा और जल में बहा दिया, यह कहते हुए कि -आज से मैं अपनी इस पहचान, इस चोले का यहीं पर इसी वक्त त्याग करता/करती हूँ, क्योंकि यह शरीर और जीवन मिथ्या है और यह दुनिया एक छाया, एक स्वप्न, एक छलावा, एक भ्रम मात्र। अब मेरा कुछ नहीं है इसमें और मैं ख़ुद को दुनिया के हित के लिए समर्पित करता हूँ।

जवाहर शास्त्री ने देखा, उस एक बच्ची के हाथ ठिठक गए थे। उसने अपना पिंड नहीं बहाया था, अपितु वह अब वापस तनकर सीधी खड़ी हो चुकी थी।

'मैं नहीं मानती यह सब, स्वामी जी। क्योंकि अगर यह दुनिया एक भ्रम है, एक छलावा है तो फिर तो कोई मूर्ख ही उसके हित के लिए समर्पित होगा, अपना सब कुछ त्यागेगा!'

'सिद्धिमाया, मूर्ख बच्ची! पाठ के पहले ही शिष्य को प्रश्न का अधिकार नहीं। अनुशासन शिक्षा का पहला गुरु मंत्र है, वरना हमारे शास्त्रों में दंड का भी प्रविधान है तुम जैसे निरंकुश और उद्दंडों के लिए।'

'मैं ऐसे तर्कहीन और नेह रिक्त अनुशासन को भी नहीं मान सकती।'

'और हम तुम्हें यह सब मनवा कर ही रहेगें।'

'कैसे, बल से?'

'याद रखो, ताक़त से तुम शरीर जीत सकते हो, मेरा मन नहीं। और ब्रह्म, जिसे तुम हासिल करना चाहते हो वह तो बस मन या आत्मन् ही है, जिसे सिर्फ प्रेम से ही जीता जा सकता है। यही प्रकृति है और प्रकृति का नियम भी। इसी नियम पर सृष्टि टिकी हुई है और यही इसके सृजन और संरक्षण का आधार है।'

लड़की मानों अब अपनी ही हठ योग की साधना में जा बैठी थी -निधड़क और बेख़ौफ़।

'और विनाश का भी।'

'चुप हो जाओ सिद्धिमाया, नहीं तो।' औरत पुन: गरजी।

तड़ाक-तड़ाक गाल पर दो थप्पड़ पड़ते ही लड़की ने मानों और ज़िद पकड़ ली थी।

'नहीं तो क्या...जानवर तक परिचित हैं प्रेम की गुणवत्ता और ताक़त से। आश्चर्य है कि आप लोग नहीं। पूरी सृष्टि इसी नियम पर ही तो जीवित है।' लड़की के स्वर में विद्रोह था। गर्जना थी।

आवाज़ परिचित-सी लगी जवाहर शास्त्री को और बातों में दम भी।

अब वह हवलदार सी लगती, पूर्णत: क्रुद्ध साधुनी आपे से बाहर थी और बच्ची का सिर बार-बार पानी में डुबोती, कहे जा रही थी- 'बोलो मेरे साथ-साथ- मैं आज से इस दुनिया से अपने सारे रिश्ते-नाते तोड़ती हूँ।'

'नहीं।' लड़की को तो मानों एक रट ही लग गई थी-'यह कैसा धर्म है जो कर्त्तव्य और कर्म से विमुख होने की बात करता है-रणछोड़ बनाता है। सन्यास यदि पलायन है तो मुझे नहीं चाहिए सन्यास।'

बात तर्कसंगत थीं।

'अत्याचार तो अत्याचार...बचाना ही होगा इसे।'

लड़की के पक्ष में बोलना, उसे इस विषम परिस्थिति से बचाना ज़रूरी हो गया था अब उनके लिए। लड़की सैम की ही उम्र की थी। परन्तु सामने सिर मुंडी और विक्षुब्ध सिर झुकाए खड़ी वह लड़की सैम से बहुत फ़र्क़ भी थी ...बेहद दयनीय और टूटी हुई। वज़न में सैम से आधी और देखने में बेहद बदसूरत। शायद रात का अँधेरा ही था जो उन बच्चों के राख पुते चेहरों को एक-सा सफ़ेद व दयनीय दिखा रहा था।

जाने किस दर्द से कटते वह आगे ही बढ़ते चले गए पर। निहत्थे ही उनके बीच में भी जा पहुँचे, 'छोड़ो इसे। धर्म अनुशासन हो सकता है परन्तु ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं। अगर यह नहीं चाहती तो तुम इसे सन्यासिनी कैसे बना सकते हो? वैराग जीवन पद्धति है जिसे सन्यासी ख़ुद चुनता है। सज़ा नहीं।'

पर जब साधुनी की पकड़ ढीली नहीं हुई, तो उनकी आवाज़ भी तेज़ और रोषभरी हो गई।

'छोड़ो, नहीं तो मैं पुलिस को बुलाता हूँ।'

पुलिस का नाम सुनते ही साधुनी की गिरफ्त ढीली पड़ गई। संघ की इज़्ज़त पर ख़तरा मँडराता नज़र आने लगा और लड़की

को तुरंत ही छोड़ दिया उसने। परन्तु अपना आक्रोष और एहसान दिखाए बगैर नहीं-

'जा पलटना मत अब इस तरफ़ कभी। वरना जिस खोपड़ी में पानी पी रही थी, हफ्ते भर के अंदर वैसे ही काम में तेरा यह सिर भी इस्तेमाल होगा। कलम करके रख दूँगी यहीं पर इसी वक़्त, सबके सामने। और देखती हूँ कौन आता है फिर तुझे बचाने। बहुत शौक था न कपाल विद्या और हठ योग सीखने का, हमारी जड़ी बूटियों के बारे में जानने का। यह गुर साधना से आते हैं। कोरी बहस-बाज़ी से नहीं।'

लाल आँखों को और लाल करते हुए कसकर एक लात लड़की की पीठ पर मारी, वह भी इतनी कसकर कि लड़की फुटबाल सी घूमती सामने खड़े शास्त्री जी के पैरों में आ गिरी। और तब जवाहर शास्त्री ने उठाकर लड़की को गले से लगा लिया, अपने पूर्ण संरक्षण में ले लिया।

'यह कौन-सा तरीक़ा है व्यवहार का-साधु और नो साधु, इसकी शिकायत तो पुलिस से होनी ही चाहिए। यह मुखौटा तो समाज के आगे उतरना ही चाहिए।' सांत्वना देते हुए अब वह लड़की की पीठ सहला रहे थे, आँसू पोंछ रहे थे। पता नहीं ठंड की वजह से, या अपमान की वजह से लड़की सिर से पैर तक थर-थर काँप रही थी अब। जवाहर शास्त्री ने तुरंत अपना दुशाला लड़की को उढ़ा दिया। अचानक ज़ोर की गड़गड़ाहट के साथ मानों बादल गरजे और ख़ुद उन पर ही बिजली-सी गिर पड़ी। अभी तक अपने ही अँधेरों में गुम वह लड़की पलटी और 'थैंक्यू पापा' कहकर उनसे लिपट गई। चौंकने की अब उनकी बारी थी।

मुँह ऊपर रौशनी की तरफ़ करके ध्यान से देखा-तो वह वाकई में उनकी अपनी सैम ही थी। इतनी पास होकर भी कितनी दूर चली गई थी, लाडली। धिक्कार है, जो अपनी बेटी को इतने कष्ट झेलने दिए उन्होंने। उनसे तो वह बन्दरिया ही अच्छी थी, कैसे आनन-फानन बच्चे को बचा लिया था। एक खरोंच तक नहीं आने दी थी उस पर! आकुल मन अब बेटी के सारे दु:ख-दर्द मिटा देना चाहता था। अपराधियों को सजा देना चाहता था।

वह सहमा बच्चा, गुर्राता-डराता बंदर सब कुछ पुन: पुन: उनकी आँखों के आगे घूमने लगे।

'सब कुछ ज्यों का त्यों ही तो है, जानवरों की दुनिया हो या इंसानों की, वही आधिपत्य की लड़ाई ही तो है चारों तरफ़!

खोखली हैं ये दर्शन और आध्यात्म की बातें, बिना आपसी सद्भाव और स्नेह के। आदमी को बहुत कुछ सीखना है-ज्ञान, धर्म तो छोड़ो, व्यवहार तक में प्रकृति और अन्य स्वयं से तुच्छ समझे और माने जाने इन जीव जन्तुओं से। नासमझ होकर भी जानवर, संरक्षण के लिए अपनों के लिए समर्पित हैं। सिर्फ भूख लगने पर ही शिकार करते हैं। कहाँ खो गया वह ऋषि-मुनियों वाला पूरी वसुधा को अपना कुटुम्ब मानने वाला उनका भारत, जहाँ शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे, पी सकते थे!'

बहुत इज़्ज़त और प्यार करते थे देश से, इसकी संस्कृति और आदर्शों से पर आज अपने धर्म के नितांत खोखले और अँधेरे पक्ष से रूबरू हुए थे, इस भारत को तो जानते ही नहीं थे वह ...उन्हें लगा एक बार फिर वह उसी सर्द स्टेशन पर ही बैठे हैं। उनकी गाड़ी तो कहीं आई-गई ही नहीं। सफर वैसा-का वैसा ही रहा - आधा-अधूरा और अतृप्त। वहीं पर अटके खड़े हैं बाप-बेटी, जहाँ से शुरुआत की थी।...

'चल बेटा, यह जगह तेरे लायक नहीं, ' दुशाले में बेटी को छुपाते-से वह बोले।

'हाँ पापा, मोहभंग हो चुका है मेरा। पर हमें तारा को भी तो इनके चंगुल से छुटाना है।' जवाहर शास्त्री बेटी से शत-प्रतिशत सहमत थे।

'पर...'

'पर क्या ?'

'पर' का वह भयावह अजगर मुँह बाए फिर खड़ा था अब उनके आगे। मानों ये अनुभव काफी नहीं थे, इन थोथी और क्रूर रूढ़ियों से विरक्त हो जाने के लिए? इस मोहपाश से निकल आने के लिए... मोहभंग के लिए! वृक्ष से टूटे फल से अकेले और असहाय महसूस कर रहे थे वह। वह भी अपने ही देश में खड़े होकर। भारत जिस पर उन्हें इतना गर्व था। जो उनकी शान और पहचान था- यूँ रणभूमि बन जाएगा, ऐसा कब सोचा था उन्होंने! देशप्रेमी और विदेश में भारतीय दर्शन के प्रोफ़ेसर और हाल ही में घटा वह घटनाओं का दुश्चक्र – हारे मन और बूढ़े तन की थकान पके फोड़े-सी आँखों से बह निकली, 'याँ चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता' भर्तृहरि ने वह श्लोक मानों उन्हीं के लिए लिखा था।

'डर मत, बेटा। बदनामी माना अपनों की है, अपने देश की है, परन्तु कायरों की तरह चुप होकर भी तो नहीं बैठा जा सकता ! पूरा पर्दाफाश करूँगा मैं। और अब जब भी हम यहाँ से लौटेंगे, तीनों साथ ही लौटेंगे।'

'हाँ, पापा।'

काँपती सैम पूर्णत: आश्वस्त और शांत हो चली थी, मानों एक सूखती बेल मज़बूत तने का सहारा पा गई हो। पर मोहभंग के बाद की ही शांति थी वह, तूफ़ान के आने से पहले की शांति।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पेट्स केयर होम

सुनीता मिश्रा

नरेश ने पहला कौर मुँह में डाला ही था कि मैंने अपना राग अलापना शुरू किया "सुनो, पिछले तीन साल से हम कहीं बाहर नहीं गए, चलिए न, पूना ही हो आते है, अणिमा की बिटिया को देख आएँगे, अब तो ख़ूब चलने लगी होगी। डिलीवरी में ही यहाँ आई थी। दो महीने बाद, दामाद जी अणि और गुड़िया को ले गए। वो तो भला हो लेपटॉप का, अणि वीडिओ में उसे दिखा देती है।" बोलकर मैं चुप हो पतिदेव की प्रतिक्रिया का इंतज़ार करने लगी। करीब दो मिनट के बाद मैंने फिर कहा-" पड़ौस की मिसेज़ गुप्ता बता रही थीं कि वे लोग गुजरात -द्वारका ट्रिप पर जा रहें हैं इस बार। एक हम हैं कि नागपुर से पुणे तक की दूरी तय नहीं कर पाते।" नरेश ने अपने हाथ का कौर वापिस थाली में रख दिया, खाना छोड़ कर उठ बैठे, हाथ धोया और बिना कुछ बोले बाहर निकल गए।

मैं अपने आपको कोसने लगी। बहुत ख़राब आदत है मेरी, जब भी ये खाने बैठते हैं, मैं कोई न कोई ऐसी बात छेड़ देतीं हूँ, जो इन्हें पसंद नहीं। ये जानते हुए भी कि खाना खाते समय कोई भी ऐसी चर्चा नहीं करनी चाहिए जो आदमी को चुभ जाए। दिन भर का थका आदमी घर आए, और चैन से खाना भी न खा पाये।

बाहर का गेट खुलने की आवाज़ से अंदाज़ा लगा लिया मैंने, संभवत: नरेश अपने मित्र नितिन बाबू के यहाँ गए होंगे। बचपन के दोस्त हैं दोनों। साथ बड़े हुए, पढ़े और इत्तफ़ाक़ से एक ही कम्पनी में जॉब लगा, और एक ही कॉलोनी में हम लोग रह रहे हैं। कितने चाव से मैंने अपने घुटनों और कमर दर्द की परवाह न कर, नरेश की पसंद, गाजर का हलुआ बनाया था। हलुआ बनाते समय मेरे हाथ, और खड़े-खड़े पैर, दर्द के मारे जवाब देने लगे थे। मन खट्टा हो गया, नरेश ने खाना तो दूर हलुआ छुआ भी नहीं। मेरी भी भूख मर गई, बिना कुछ खाये किचन समेट कर, ड्राइंग रूम में आकर बैठ गई। टीवी ऑन किया। चैनल पर चैनल घुमाती रही। कुछ अच्छा नहीं लगा. व्यथित मन को कहाँ कुछ भाता है। आख़िर में एक कॉमेडी फ़िल्म पर रिमोट ठहर गया। बेमन से उसे देखने लगी। कॉमेडी फ़िल्म थी, पर मुझे हँसी कहीं नहीं आई।

बावरा मन अतीत की ओर भागने लगा। बीस बरस की उम्र में इस घर में ब्याह कर आई थी। नरेश सुदर्शन, शांत, धीर, गंभीर स्वभाव के थे। ज़रूरत भर की बात करने वाले। निम्मी मेरी ननद, नरेश की छोटी बहन, हम ननद-भाभी नहीं, दो सहेलियों की तरह थे। निम्मी की जब शादी हुई, कितना रोई थी वह उस समय, जब मैंने अपने सारे गहने उसके सामने रखे और कहा था- "निम्मी इनमें से जो तुम्हें पसंद हो ले लो। मेरी तरफ से उपहार है तुम्हें।" उसने कहा -"भाभी ज़ेवर तो माँ, और भाई ने बहुत बनवा दिये मेरे लिए, तुम बस इतना करना मेरे मायके में मेरे लिये थोड़ी जगह रखना।" मुझसे लिपट गई कहते हुए।

"पगली, थोड़ी जगह क्यों, यह घर पूरा का पूरा तुम्हारा है।" हम दोनों ख़ूब रोए, मुझे भी अपना मायका याद आया। आज विवाह के इतने सालों बाद भी अपने घर-आँगन की याद सताती है।

औरतों का घर कहाँ होता है? दो घरों के बीच अपना ठिकाना ढूँढ़ती हैं औरतें। मेरी आँखों के कोर भर आए।

इसी समय बाहर गेट खुलने की आवाज़ आई। झटपट मैंने अपनी हथेलियों से आँखें पोंछी। टीवी ऑफ़ किया। नरेश के साथ डॉ. प्रवीण थे। दोनों सीधे ड्राइंग रूम से जुड़े माँ के कमरे में

सुनीता मिश्रा
द्वारा- डॉ. प्रतीक गुजर, सुदर्शन नेत्रालय,
MIG-14, डिपो चौराहा, भोपाल,
मप्र -462003
मोबाइल- 9425716678
ईमेल- sunitamishra177@gmail.com

चले गए। मैं मोबाइल पर अणि और गुड़िया की फ़ोटो देखने लगी।

लगभग आधा घंटे बाद दोनों कमरे से बाहर निकले।

"करुणा, मैं मेडिकल स्टोर से दवाइयाँ लेकर आता हूँ।" कहते हुए ये डॉक्टर के साथ बाहर चले गए।

मैंने माँ के कमरे की में जाकर देखा। माँ, मुझसे बेपरवाह, क्रोशिए पर अपनी उँगलियाँ चलाने में व्यस्त थीं। माँ, क्रोशिया के काम में बहुत दक्ष रहीं, पापा उनके हाथ की बनी क्रोशिये की बनियान पहना करते थे। दरवाज़ों के परदे, मेज़पोश, बच्चों के फ्रॉक, रूमाल, तकिये के कवर की, पेटीकोट की, लेस पर बेहद ख़ूबसूरत फूलों के डिज़ाइन बनातीं। हर कोई उनके क्रोशिया की कढ़ाई का मुरीद था। इसके अलावा माँ, एक सुघढ़ गृहस्थन भी थीं। उनका हर काम सलीक़े से होता था।

नरेश दवाइयाँ लेकर लौट आए थे। डॉ. प्रवीण ने जो दवाइयों में परिवर्तन किये थे उसके बारे में मुझे बताया। फिर वे माँ के कमरे में गए। मैंने टीवी ऑन कर लिया। ये जानते हुए भी कि फ़िल्म की बेहूदी कॉमेडी मुझे रास नहीं आ रही थी। मन उचट कर बार-बार माँ के कमरे की ओर चला जाता। नरेश ने माँ के हाथों से क्रोशिया लेकर, उनके पैर सीधे किये होंगे, तकिया उनके सिरहाने लगा दिया होगा, चादर ओढ़ा दी गई होगी, अब धीरे -धीरे माँ का माथा सहला रहें होंगे और उस समय तक सहलाते रहेंगे जब तक माँ के महीन खर्राटे न सुनाई पड़ने लग जाएँ।

ख़ैर, इस समय तो माँ बीमार है, जब अच्छी भली थीं तब भी नरेश ऐसे ही माँ की सेवा में लगे रहते थे। हमेशा माँ के गुण गाते, माँ के जैसा कोई खाना नहीं बना सकता, उनके हाथों में जादू है। सब्ज़ी बनाते समय वे सब्ज़ी में कोई मसाला न भी डालें, बस कढ़ाई में पकती सब्ज़ी के ऊपर से अपना ख़ाली हाथ ही घुमा दें तो सब्ज़ी में स्वाद उतर आता है। तब मुझे ख़ूब हँसी आती, माँ न हुईं जादूगर हो गईं। चमचागिरी की भी हद होती है। हमेशा माँ... माँ... और माँ। दिमाग़ भन्ना जाता मेरा। इनकी माँ मेरी सास है या सौ...। अरे कभी मेरी भी तारीफ़ करें मेरे भी गुण गाएँ, सब्ज़ी न सही मेरे कमर तक काले लहराते बालों की तारीफ़ कर दें।

जब अपने विवाह के कुछ दिनों बाद मैं मायके गई। मेरे अनमनेपन को मम्मी भाँप गईं। एक दो दिन तो उन्होंने कोई चर्चा नहीं छेड़ी मेरे ससुराल की। पर माँ का मन कब तक धीरज रखता। रविवार का दिन, दोपहर की असहनीय गर्मी में जब सब लोग एसी और कूलर की ठंडक में अपने-अपने कमरों में आराम कर रहे थे। तब मम्मी मेरे पास आईं, मैं सोफे पर बैठी पत्रिका के पन्ने पलट रही थी। उन्होंने पत्रिका मेरे हाथ से लेकर अलग रखी। मेरे हाथ को, अपने हाथ में लेकर सहलाते हुए बोली "करुणा, सब ठीक तो है न?" मैं मम्मी के इस अचानक प्रश्न के लिये तैयार नहीं थी।

मैंने पूछा "क्यों, आपको ऐसा क्यों लगा?"

"माँ हूँ तेरी।" कुछ ठहर कर फिर बोलीं "नरेश कैसे हैं?" इतना पूछना ही था मम्मी का कि मैंने मम्मी की गोद में अपना सिर छुपा लिया। उनका आँचल मेरे आँसुओं से भीगने लगा। मम्मी अनजान आशंकाओं से काँप उठी। घबराकर मुझे अपने में समेट लिया।

"क्या हुआ? बता मुझे। तुझे मेरी कसम, कुछ मत छुपाना। अभी मैं और तेरे डैडी ज़िंदा हैं। क्या नरेश तुझे पसंद नहीं करते या..."

कहीं मम्मी का बी.पी.न बढ़ जाए, मैंने ख़ुद को सँभाला फिर उन्हें नरेश की मातृ-भक्ति के बारे में बताया, कैसे नरेश ऑफ़िस से आने के बाद माँ से चाय की गुहार लगाते हैं, चाय नाश्ते के साथ, बॉस से दिन में कितनी बार झड़प हुई, बताते। हर छोटी से छोटी समस्या माँ से कहेंगे। सलाह लेंगे। मेरे लिये तो उनके पास समय है ही नहीं। मम्मी ज़ोर से हँसी।

"पगली, कितना डरा दिया।" मम्मी से मुझे संवेदना की उम्मीद थीं, वे मेरा पक्ष लेंगी। मुझसे सहानुभूति दिखाएँगी। उल्टे वे मुझसे बोलीं, "नरेश जानते हैं कि उनकी माँ ने किस तरह सीमित आय में, संयुक्त परिवार को सँभाला। नरेश और निम्मी छोटे थे तभी नरेश के पिता नहीं रहे। सिलाई, कढ़ाई का काम करके दोनों बच्चों को लायक़ बनाया। तुम्हें तो ख़ुश होना चाहिए कि नरेश अपनी माँ का इतना सम्मान करते हैं। अगर तुम हम लोगों से सहानुभूति की आस में आई हो, तो बेटा अपने घर जाओ, अपने परिवार में प्रेम से रहो।"

प्रेम और साथ रहने का बड़ा गहरा रिश्ता है। साथ रहते-रहते तो बेजान वस्तुओं से लगाव हो जाता है, तो वह तो नरेश की माँ थीं, मेरे पति की माँ। धीरे-धीरे मैंने जाना कि आकरण बिना सोचे समझे हम किसी के प्रति पूर्वाग्रह पाल लेते है। मैं माँ से चिढ़ गई। क्यों? क्योंकि नरेश माँ के लिये अगाध श्रद्धा और प्रेम रखते थे। हालाँकि नरेश का मेरे और माँ के बीच तुलनात्मक व्यवहार कभी भी नहीं रहा।

माँ अनुशासन प्रिय थीं। किचन पर उनका पूरा अधिकार था। उन्हें किसी के हाथ की रसोई पसंद न थी। स्वभाव से कड़क थीं। पर बोल उनके कड़वे नहीं थे। नरेश के साथ वह मेरा भी ध्यान रखती थीं। पर कभी मैं उनके लिये रसोई में कुछ बनाऊँ या बढ़िया-सी साड़ी लाऊँ उनके लिए तो वे कभी ख़ुशी ज़ाहिर नहीं करतीं। मैं हमेशा उन्हें फ़ुरसत के समय क्रोशिये में व्यस्त पाती। कोई न कोई क्रिएटिविटी क्रोशिये के साथ उनकी चलती रहती। बीमार हों या किसी बात पर संजीदा हों, ऐसे में क्रोशिये के साथ वे अधिक समय बिताती। मानों क्रोशिया न हुआ, उनके जीवन में रोग और दु:ख की पीड़ा हरने की संजीवनी हो गई।

जब निम्मी और उसके पति की दुर्घटना में मृत्यु की ख़बर मिली, तो वे पत्थर की तरह जड़ हो गई थीं, उनकी आँख में आँसू की बूँद न दिखी, क्रोशिये से कुछ न कुछ उधेड़ती-बुनती रहीं, मुझे और नरेश को गीता का सार समझाती रहीं।

अणिमा के जन्म के समय मेरी तबियत इतनी बिगड़ गई थी, लगता था कि मैं बच नहीं पाऊँगी। लेकिन माँ ने नन्हीं अणिमा को ही नहीं सँभाला बल्कि मेरी भी तीमारदारी में दिन-रात एक कर दिये। हम माँ-बेटी को, माँ ने ही जीवन-दान दिया। नन्हीं अणि को देख मुझसे और नरेश से कहतीं, हमारी निम्मी लौट कर

आ गई। ज़्यादा तो नहीं, अणिमा के आने पर निम्मी की कमी से जो दु:ख उपजा था, उसकी थोड़ी भरपाई अवश्य हुई।

माँ की तबीयत पिछले दो साल से ठीक नहीं चल रही थी। शुरू-शुरू में तो कोई ख़ास बीमारी हो ऐसा नहीं लगा हम लोगों को। कभी कोई सामान रखकर भूल जातीं, कभी किसी का नाम याद नहीं आता। अक्सर उन लोगों को याद करतीं, उनकी बातें करती रहतीं, जो अब इस दुनिया में नहीं हैं। हमने इसे उम्रदराजी समस्या माना। गंभीरता से नहीं लिया, नहीं सोचा कि जीवन भर जो दर्द वह समेटे रहीं, वही दर्द, माँ को चपेट में ले रहा है। वह घंटों अपना कमरा बंद रखतीं।

माँ पहले गीता का एक अध्याय पढ़ने और पूजा करने के बाद, गाय को रोटी खिलाकर खाना खातीं थी। अब तो पूजा पाठ से उन्होंने जैसे संन्यास लेकर कमरे में लगी दीवार-घड़ी से अपना जीवन जोड़ लिया। अगर सुबह आठ, दोपहर ग्यारह, शाम छह व रात्रि नौ बजे, मैं उनके कमरे में उन्हें चाय की प्याली और खाने की थाली लेकर नहीं गई तो वे फिर न चाय पीती न खाना खातीं।

आख़िर एक दिन चिढ़ कर मैंने उनके कमरे से दीवार-घड़ी हटवा दी। माँ ने उस दिन कुछ नहीं खाया-पिया। मैंने जब नरेश से कहा तो उन्होंने घड़ी दीवार पर लगा कर मुझसे आदेशात्मक स्वर में कहा "माँ को समय पर चाय और खाना मिलना चाहिए। यह तुम्हारी ड्यूटी है।"

माँ की दिनचर्या की क्रियाएँ गंभीर मानसिक रोग में बदलती जा रही थीं, पर उनकी उँगलियों में फँसे क्रोशिये और धागे के बीच, बन रही डिज़ाइन में कोई फंदा इधर से उधर नहीं होता।

इन दो सालों में, मैं बहुत थक गई थी। घूमने फिरने जाना तो बहुत दूर की बात, पास पड़ौस में भी पारिवारिक, धार्मिक आयोजन में भी जाना न हो पाता। गर्मी की ढलती दोपहर और उमस, जी जाने कैसा-कैसा तो हो रहा था मेरा। अजीब सी बैचेनी।

डोर बेल बजी, मिसेज़ शर्मा थीं। फुर्सत में रहीं लगता, आराम से सोफ़े पर आकर बैठ गईं। माँ का हालचाल पूछा, फिर अपनी अमेरिका वाली बिटिया के ऐश्वर्य का गान करने लगी, उसके बाद ऑस्ट्रेलिया में बसे बेटे-बहू के क़िस्से बताती रहीं और इसी बीच उन्होंने बताया वह और शर्मा जी मसूरी घूमने जा रहे हैं। मैं उनसे पूछ बैठी "पॉली (उनका डॉगी) भी साथ जाएगा क्या?"

"अरे कैसी बात कर रहीं आप। यहाँ पेट्स केयर होम हैं न। वहाँ दस दिन के लिये रख देंगे। आठ सौ रुपये, पर डे लेते हैं, केयर बहुत अच्छे से करते हैं।"

वे तो यह कहकर चली गईं। मेरे मन में विचारों का ग़ुबार छोड़ गईं। काश! कोई ओल्ड ऐज केयर होम होता, तो हम भी माँ को कुछ दिन के लिये छोड़कर कहीं छुट्टियाँ एन्जॉय कर लेते। पर हमारी किस्मत में ये सुख कहाँ? हमारी तो ज़िंदगी दीवार-घड़ी की टिक-टिक के साथ कट रही है, शायद इसी टिक-टिक के साथ ख़त्म भी हो जाएगी।

घड़ी से याद आया माँ की चाय का समय हो रहा है, किचन की तरफ जाने से पहले मैंने माँ के कमरे की ओर झाँका, वे अपनी क्रोशिया में व्यस्त थीं, आहट सुन उन्होंने मेरी तरफ़ देखा, बच्चों जैसी भोली, ईश्वर तुल्य, निश्छल मुस्कान उनके होठों पर तिर आई।

यह क्या हुआ मुझे? मैं अपराध बोध से भर गई। एक बवंडर घात-प्रतिघात करने लगा मेरे भीतर। मुझे नरक में भी जगह न मिलेगी। इतनी निकृष्ट सोच, इतनी धूर्तता, छल-कपट के पाप की गठरी ले किस नदी ताल में डूबकर समा जाऊँ मैं?

कुछ न सूझा मुझे, दौड़ कर माँ से, कसकर लिपट गई। "माँ मुझे माफ़ कर दो, यह मैंने क्या सोच लिया" ग्लानि और पश्चाताप के आँसू मेरी आँखों से झर-झर बरसने लगे।

क्रोशिया माँ के हाथों से फिसल गया।

मैं उनकी गोद में समायी, रोए जा रही थी, बार -बार यही बोल रही थी "मुझे माफ़ कर दो माँ।" और माँ, उनकी ऊँगलियों के क्रोशिये मेरे उलझे बालों के धागों को सुलझाते हुए जैसे कोई नया डिज़ाइन बुन रहे थे।

ooo

ग़ज़ल

ग़ज़ल

शुभम 'शब'

तुमको बस अहसान गिनाने होते हैं
हम लोगों को क़र्ज़ चुकाने होते हैं
हर रिश्ते में क्या होता है सबके साथ
साथ किसी के साल बिताने होते हैं
ब्रेकअप हो तो एक मुसीबत ये भी है
टैटू वाले नाम मिटाने होते हैं
उस लड़की को हर थोड़े दिन में मुझको
अच्छे लम्हे याद दिलाने होते हैं
जिन लोगों के ग़म में बरकत होती है
उन लोगों के नम सिरहाने होते हैं
बिल्कुल मय की माफिक होते जाते हैं
जैसे जैसे यार पुराने होते हैं
नींद से बंजर लगती हैं जो दो आँखें
उन आँखों में ख़्वाब सुहाने होते हैं
वो जो तुमसे मिलना ना चाहे तो फिर
उसके अपने लाख बहाने होते है
इन शहरों में कोई हमको क्या समझे
शहरों में बस आब-ओ-दाने होते हैं

ooo

ऐसा तो नहीं है कि मुहब्बत नहीं करता
जो शख़्स बयाँ करने की हिम्मत नहीं करता
ऑफ़िस भी चले जाते हैं ये टूटे हुए लोग
दिल टूटने पर अब कोई वहशत नहीं करता
वो शख़्स है इंसान की सूरत में फ़रिश्ता
जो शख़्स किसी से भी शिक़ायत नहीं करता
तूने उसे बुज़दिल जो कहा है ना मेरी जाँ
होता तो ज़माने से हिफाज़त नहीं करता

ooo

शुभम 'शब'
सुसनेर, म.प्र. 465447
मोबाइल- 7828098250

कर्ज़

डॉ. मलिक राजकुमार

अजीब तमाशा है मुझे अच्छी तरह मालूम है मैं अस्पताल के गहन चिकित्सा कक्ष में हूँ। मैं अपने सामने का सारा दृश्य देख पा रहा हूँ कौन आता है, कौन जाता है, मेरे परिवारीजन, डॉक्टर, नर्सों, वार्ड ब्यॉय सभी को पहचान पा रहा हूँ। ये लोग जो भी बात करते हैं, सुन पा रहा हूँ, समझ पा रहा हूँ परंतु इस सबके बीच मेरी परेशानी का कारण यह है कि डॉक्टर हर बार यही क्यों कहता है, "ये कोमा में है।" मैं प्रतिवाद करना चाहता हूँ, बताना चाहता हूँ कि पूरे होश हवास में हूँ। भाई मुझे कोमा में क्यों घोषित करते जा रहे हो। पर ये शब्द शायद मेरी ज़बान से नहीं निकल पा रहे क्योंकि मेरे कान भी तो इनकी प्रतिध्वनि महसूस नहीं कर रहे। कहीं यही कारण तो नहीं कि मेरे न बोल पाने को ही ये लोग मुझे कोमा में समझ रहे हों। अरे हाँ...एक बात तो भूल ही गया...महक... हाँ.... हाँ.... महक। वह कैसे रोज़-रोज़ आती है। क्या उसे अपनी मेडिकल की पढ़ाई पूरी नहीं करनी, इतना समय यहाँ मेरी सेवा में देगी तो पढ़ेगी कब? उसके आने पर मैं हर बार पूछना चाहता हूँ परंतु निराशा के अतिरिक्त कुछ भी हाथ लग कर नहीं देता।

यह लो बेटा-बहू.... बेटी-जँवाई सारे एक ही एक साथ। क्या हुआ, ये लोग तो कभी-कभी आते हैं। बस अकेली महक ही है जो रोज़ हाज़री देती है। उसके माथे पर चिंता की रेखा होती है यहाँ पर सेवा के लिए नर्सों के होने के बाद भी वह स्वयं मेरा मुँह...हाथ... बिस्तर सभी कुछ साफ करती है। मैंने बहुत ग़ौर से देखा है उसकी आँखें हमेशा भरी रहती हैं और चेहरे पर गंभीरता रहती है। यह तो वही लड़की है न, जो हमेशा बात-बात पर हँसने के अलावा कुछ नहीं करती थी। ज़्यादा हँसने से मना करो तो बोलती थी, नाना जी मैं लड़की हूँ...लड़कियों की हँसी बहुत कच्ची होती है बिना बात ही निकल पड़ती है खिल-खिल...आप मुझे पागल क्यों कहते हो। हँसने से तो व्यक्ति चिंतामुक्त रहता है। नाना जी ध्यान रखना अगर मैं पागल हो गई तो आपको ही जाना पड़ेगा पागलखाने में जमा कराने, वहाँ आपको एक पागल लाने के लिये सरकार की ओर से कम्बल मिलेगा, पर आपको ही रोज़ घर से पागलखाने आना पड़ेगा। पता है क्यों? क्योंकि पागलखाने वाले मुझे पीने को दूध देंगे नहीं और बिना दूध पिये मैं तो मर ही जाऊँगी... और... और श्रीमान् नाना जी साहब आप कभी नहीं चाहेंगे कि मैं मर जाऊँ। इसलिये मुझे पागल कहना इसी वक़्त से बंद। वो क्या कहते हैं, विद इमीडिएट इफ़ेक्ट।

हैं...यह क्या...डॉक्टर क्या कह रहा है। इनकी हालत स्थिर है...घर ही ले जाओ तो अच्छा... कुछ नहीं कह सकते कब तक ठीक होंगे या होंगे ही नहीं। अरे... अरे मेरा बेटा क्या बोल रहा है? डॉक्टर साहब लम्बे समय तक आईसीयू का ख़र्च उठाना हमारे बस का नहीं...यह लो बेटी भी उसी की आवाज़ में... मेरा भाई बेचारा कब तक...। शाबास मेरे बच्चों यही है रिश्ता... यही है ख़ून का संबंध।

मेरा मन करता है मैं उठ कर चीख़ पड़ूँ, इनके मुँह पर तमाचे जड़ दूँ। वैसे तो- डेढ़ लाख मैं डेढ़ लाख मेरी पत्नी हर महीने कमाते हैं, का शोर तो बेटा-बहू हर शादी, त्योहार पर रिश्तेदारों को सुनाने से नहीं चूके और मेरी अपनी करोड़ों की जायदाद... सब मिट्टी हो गई क्या? वो किसी काम की नहीं? मेरे इलाज के भी।...धत्त तेरी की...पूत सपूत तो का धन संचय पूत कपूत तो का धन संचय। जब मेरी दौलत मेरे काम ही नहीं आती तो किस काम की दौलत, किस काम के संबंध, जो संबंध को पैसे से तौलने लगें। इतना समझदार होकर भी मैं समझ नहीं पाया। भावना में ही जीता रहा, व्यावहारिक बनना आ ही नहीं सका। पर सोचने से होता भी क्या है...बोल तो सकते नहीं...बेबस...लाचार अपनों, परायों की दया के भरोसे घिसटते रहना ही अब तेरी नियति है प्यारे। अब तू घर के कमरे में क़ैद रहेगा, दीवारों से बातें करेगा...पोता...पोती तो अमेरिका से फ़ोन भी नहीं करते। न उनके पास समय है न ही उनको मेरी ज़रूरत है। ये बुढ़ापा भी अभिशाप ही है भाई। अब सो ही लूँ....जो इन्होंने करना है करेंगे। जाना तो घर ही है। यह तो मेरे वारिसों ने तय कर ही लिया है।

अरे...यह महक यहाँ क्या कर रही है...कॉलेज नहीं गई क्या? मैं ज़ोर लगा कर पूछना चाहता हूँ पर शब्द क्यों नहीं निकलते? लो कितने घंटे हो गए घड़ी तो घूमती जा रही है पर महक

डॉ. मलिक राजकुमार
ए-1/28, मियाँवाली नगर,
दिल्ली-110087
मोबाइल– 9810116001
ईमेल - malikrajkumar55@gmail.com

घर नहीं गई। हे भगवान् पूरी ताक़त से पूछना चाहता हूँ पर जैसे सोच उठ कर लहर की तरह बैठ जाती है। आवाज़ शब्द ग्रहण नहीं करती। हाँ बदनसीबी... ये क्या हो गया।

जब भी महक को पुकारना चाहता हूँ दिमाग़ में हल्का सा दर्द और हलचल होती है हाथ पैरों और पुतलियों में जैसे कोई जकड़न धीरे-धीरे खुल रही हो। अगर मैं इसे जारी रखूँ तो? शायद मेरी स्थिति अच्छी हो जाए। महक ने कैसे समझ लिया। पास आ गई, नाना जी, परेशान न हों मैं हूँ न? आप बिलकुल चिंता मत करो। मैं ... मैं ... मैं .. म .. हक़...। हाँ नाना जी आपने मेरा नाम बोला, महक उत्तेजित हो उठी..बोलो नाना जी...बोलो...मैं महक... आपके पास हूँ। बेटा महक कॉलेज नहीं गईं? महक रोने लगी... नाना जी आप बोल पा रहे हैं आप ठीक हो गए...भगवान् का लाख-लाख शुक्र है...फिर चिल्लाई...मामा जी मामी जी...नाना जी ठीक हो गए। बेटा-बहू आए नमस्ते की आशीष लिया अपने काम पर चले गए।

महक को आदेश देकर दवा समय पर देना, खाने का ध्यान रखना। महक सिर हिला कर रह गई।

पर मुझे महक से बात करनी है। 'बेटा महक...मेडिकल क्लासें मिस क्यों कर रही है?'

'नाना जी मैंने मेडिकल में नहीं नर्स कोर्स में दाखिला लिया है। फीस जमा करने के पैसे लेने आई तो आप बीमार हो गए। बस फिर हो नहीं सका। नर्स कोर्स कर रही हूँ।'

'पर बेटा तू तो वहाँ भी नहीं जाती सारा समय मुझे देखती है।'

'जी नाना जी मामा-मामी ने कहा कि मुझे ही आपकी देखभाल करनी चाहिए।' नौकर नर्सें ठीक से देखभाल नहीं करती, इसलिए मैंने कोर्स छोड़ रखा है। आपको तो पूरा एक साल हो गया बीमार हुए।

मुझे लगा अब सुनना बहुत मुश्किल है। महक मेरे ही ऑफ़िस सहायिका की बेटी है। जब सात-आठ महीने की थी, तो इसकी माँ इसकी टटकी बातें बताती, तो मेरा मन हुआ कि मिला जाए। बस चार-छः महीने में वह महक को ले आती। कब महक नाना जी कहने लगी, कब उसके पढ़ने की ज़िम्मेदारी ली, कब दसवीं, बारहवीं अच्छे नंबरों से पास कर गई, पी.एम.टी. टेस्ट पास कर गई कुछ पता ही नहीं चला। ये मन के रिश्ते भी कितने अजीब होते हैं। कहाँ, कब कैसे जुड़ जाते हैं और फिर ज़िंदगी का एक हिस्सा ही लगने लगते हैं।

पर यह मेरे बेटे ने क्या किया, मैं बीमार हुआ तो इसकी मेडिकल फीस ही नहीं भरी, महक को मजबूरी में नर्स का कोर्स करना पड़ा। आने दो शाम को उसे। हद है यार... एक बच्चे की फीस... इसके लिये इतनी बड़ी बात हो गई।

ओह, मैं ही शायद भूल गया था "अपना हाथ जगन्नाथ"। ख़ून का रिश्ता न होकर भी लड़की अपना कैरियर दाव पर लगा संबंधों की मर्यादा निभाती रही। आँख तरल रख कर मेरा दर्द महसूस करती रही। अपना ख़ून... अपना ख़ून... दस-बीस हज़ार रुपये महीने के लिए मुफ़्त की नर्स का शोषण करता रहा। वह भी कौन...जो मुझे नाना कहती है। मेरे लिए अपना कैरियर भूल गई। कितना क़र्ज़ इसने चढ़ा दिया, अब मुझे ही उतारना होगा।'

इतना बड़ा अन्याय वह भी मेरे ख़ून के द्वारा। आह मुझे ही कुछ करना होगा। ओह लगता तो यह है कि मैं सिर्फ़ महक के आसपास होने के कारण ही दिमाग़ पर ज़ोर देता रहा और इसी प्रक्रिया में ठीक भी हो गया, तथाकथित कोमा की हालत से बाहर आ गया।

हूँ, कुछ तो करना ही होगा। ज़िंदगी का कोई भरोसा नहीं। जीवन तो एक घड़ी है चली जो चली नहीं तो ये खड़ी है। ठीक है पूरी तरह ठीक होकर मेन रोड वाली बिल्डिंग महक के नाम ही करा देता हूँ। बैंक की ब्रांच को किराये पर दे रखा है। ऊपर की मंज़िल रहने को हो जाएगी, किराये से जीवन भर की चिंता ख़त्म हो जाएगी। पर यह सब किसी को भी बताने की ज़रूरत नहीं। पैसा गंदी चीज़ है कब किसकी नीयत में क्या खोट आ जाए कुछ पता नहीं।

'हेलो पापा जी कैसे हैं! बहुत अच्छा हुआ आप ठीक हो गए। हमें ख़ुशी है!' बहू-बेटे ने शाम को लौटते ही हालचाल पूछा।

'बेटा ठीक हूँ, काफ़ी अच्छा महसूस कर रहा हूँ। मेरी एक इच्छा है अगर तुम पता करो और महक के मेडिकल दाखिले के लिए कुछ इंतज़ाम करो। देखो कहाँ पर मैनेजमेंट कोटे में कंपीटिशन फीस देकर दाखिला मिल सकता है।'

'जी, पापा जी, देखता हूँ।' कह कर बेटे ने बात समेट दी। पर उसके चेहरे के भाव मैं आसानी से पढ़ सकता हूँ। चलो अच्छा है यह सच भी पता चला। बेटे के जाते ही महक पास आ गई।

'नाना जी, क्यों परेशान हो रहे हैं। मैंने जो भी किया किसी उम्मीद को रख कर नहीं किया। आप क्यों मामा जी पर दबाव डाल रहे हैं।' वह सिसक पड़ी।

'बेटा अभी मैं ज़िंदा हूँ। रिश्ते निभाना जानता हूँ। तेरा काम सिर्फ़ मेडिकल की तैयारी करना है। और जानती हो न यह क्या है? नाना जी की ज़िद और क्या!' महक मुस्करा पड़ी।

जिस दिन बेटे को पता चला कि मैंने उसकी न नुकुर और व्यस्तता के बहानों से उकता कर महक का मेडिकल दाखिला भी करवा दिया और मकान की रजिस्ट्री भी उसके नाम करा दी है तो बिफर पड़ा।

'पापा जी आपको ग़ैर अपनों से अधिक प्रिय कैसे हो गए!' बहू ने भी ताना मारा कि पोती को अमेरिका में मकान लेना है, वह आपसे क्यों नहीं सोचा गया।

मैं हँस पड़ा, 'बेटा आपको सबको मैं बेवक़ूफ़ ही नज़र आऊँगा क्योंकि आप लोगों को आदत पड़ चुकी है क़र्ज़ की ज़िंदगी जीने की। आप लोग उसी में ख़ुश हो पर मैं क्या करूँ मैं तो क़र्ज़ की मौत नहीं मर सकता। अपने क़र्ज़ से मुक्त होकर कैसा महसूस करता हूँ आपको शायद एहसास भी नहीं हो सकता। और हाँ मुझसे ज़रा गुनिया में ही बात करते रहना और महक का ताना कभी मत देना वरना जिस छत के नीचे बैठे हो वह भी किसी ट्रस्ट को देकर अपनी नवासी के पास जाकर रहने में गौरव ही समझूँगा।'

000

गुमशुदा सपने

डॉ. रंजना जायसवाल

"क्या नाम है इसका?"

"आर्यन.."

अम्मा ने उसे बड़े प्यार से देखते हुए कहा था।

"बड़ा फिल्मी नाम है।"

मालकिन ने मुँह बनाते हुए कहा-

"वैसे सब इसको सोनुवा पुकारते हैं। इसके पापा सुनील नाम रखे थे पर हम जहाँ पहले काम करते थे उनके बेटवा का नाम आर्यन था। ई ज़िद पकड़ लिस हमार नाम भी यही रहे। तब से सब जन आर्यन ही कहत हैं पर हमार ज़ुबान पर आज भी सोनुवा ही चढ़ा है।"

अम्मा ने सोनुवा के सर पर हाथ फेरते हुए कहा था। अम्मा से ज़िद करके उसने अपना नाम तो बदलवा लिया था पर क़िस्मत? क़िस्मत तो वैसे ही घसीटती रही। कभी-कभी वह सोचता कि वह ज़िंदगी को घसीट रहा है या ज़िंदगी उसे? बड़े आदमियों की तरह नाम रखने से क़िस्मत थोड़ी बदल जाती है।

हर जगह दीपावली की ज़ोर-शोर से सफाई चल रही थी। अम्मा को भी आजकल घर आने में देर हो जाती। मालकिन बड़े दिल वाली थी, आख़िर साल भर का त्योहार था। मालकिन हर साल अम्मा को दीपावाली पर एक साड़ी, एक किलो मिठाई और सौ रुपए देती थी। अम्मा का भी फ़र्ज़ जाग जाता, वह भी मालकिन के साथ सफाई कराने में जुट जाती। बिना ढक्कन की बोतलें, टूटे हुए स्टील के कटोरे, बदरंग कपड़े, पुराने खिलौने और ऐसी ही न जाने कितनी अगड़म-बगड़म चीज़ें उन्हें मुफ़्त में मिल जाती।

उस दिन अम्मा काम से लौट कर आई तो और सभी सामानों के साथ उनके हाथ में एक पुराना कैलेंडर भी था। भगवान् जी का कैलेंडर, कितने सुंदर दिख रहे थे भगवान् जी। चेहरे से ऐसा नूर टपक रहा था मानों अभी बोल पड़ेंगे। सुंदर रेशमी कपड़ों से ढके हुए ऊपर से नीचे तक गहनों से लदे हुए पीछे की तरफ एक अलौकिक रोशनी थी। उसके बाल मन पर न जाने कितने मासूम सवालों ने घर बना लिया।

"अम्मा यह सफ़ेद-सुनहरी रोशनी कैसी है?"

"भगवान् लोग के पास बहुत शक्ति होती है और यह वही है। सूरज भगवान् उनके पीछे हमेशा चम-चम चमकते रहते हैं।"

उस चमक से उसकी आँखें भी चौधियाँ गईं। कितने दिनों तक वह उस चमक में घूमता रहता। अम्मा जहाँ काम करती थी उनकी दादी सास का स्वर्गवास हो गया था। पूरा मुहल्ला

डॉ. रंजना जायसवाल
लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही,
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश, 231001
मोबाइल– 9415479796
ईमेल - ranjana1mzp@gmail.com

इकट्ठा हो गया।

सब कह रहे थे बड़ी अच्छी मौत मरी है। किसी से कोई सेवा नहीं ली। इस ज़माने में पर दादी बनने का सुख भी ले लिया। किसी ने कहा सोने की सीढ़ी चढ़ाओ, बड़े मालिक ने आनन-फानन में नुक्कड़ वाले सुनार की दुकान पर फ़ोन कर दिया और उनका नौकर सोने की सीढ़ी लेकर हाजिर। एकदम पतली-महीन सी ..बूढ़ी दादी के दाहिने अँगूठे में धागे से मज़बूती से बाँध दिया गया। कहीं रास्ते में गिर न जाए। धागे को काफी कस कर मज़बूती से बाँधा था। अगर दादी ज़िंदा होती तो शायद हुड़क देती।

"थोड़ा ढीला बाँध, दर्द हो रहा निशान पड़ जाएगा।"

पर वह तो सारे बंधनों को तोड़ दर्द तकलीफ़ों से ऊपर उठ चुकी थी।

सोने की सीढ़ी..बच्चों के खिलौने सी थी सीढ़ी जिसमें दो लंबे डंडे और चार छोटे उन दोनों के बीच में लगे थे। सोनुवा सोच रहा था सीढ़ी कितनी महँगी होगी। अम्मा बताती है सोने का दाम आसमान छू रहा है। अम्मा के पास सोने के नाम पर नाक की कील भी नहीं थी। होती भी तो कैसे जहाँ दो वक़्त की रोटी भी ठीक से मयस्सर नहीं वहाँ सोना पहनने की कोई कैसे सोच सकता था।

कभी-कभी मुहल्ले में वो चलती-फिरती सोने की दुकान ज़रूर आती थी। काँच की बकसिया से कान के बूँदे, नाक की कील, गले का हार, चूड़ी, कंगन और मंगलसूत्र झिलमिलाते रहते। एकदम सुनहरे रंग के, सोने की तरह लगते पर हर पीली चीज़ सोना तो नहीं होती। वे बस पीले रंग के आभूषण थे, न सोना और न ही उन पर सोने का पानी चढ़ा होता पर अम्मा और अम्मा जैसे न जाने कितनी लड़कियों और औरतों के तन और मन को सुंदर बनाने के लिए वे काफी थे।

वह सोचता इन बड़े लोगों की मृत्यु भी कितनी शानदार होती है। कभी-कभी वह सोचता रोज़-रोज़ जीवन के संघर्ष से दो-दो हाथ करते-करते वह अब थक चुका है, इससे अच्छा वह मर जाए क्योंकि मृत्यु ज़्यादा आसान है ज़िंदगी जीने से पर..ज़िंदगी इतनी आसानी से पीछा कहाँ छोड़ती है?

वह हमेशा सोचता काश उसके पास भी ऐसी सीढ़ी होती जिस पर चढ़कर वह भगवान् के पास जा पाता और उनसे पूछता कि उन्होंने उसकी ज़िंदगी में इतना संघर्ष क्यों भरा है। आख़िर वह दूसरों की तरह सपने क्यों नहीं देख सकता? एक अच्छी और सुकून भरी ज़िंदगी भर ही तो चाही थी उसने, पर पीढ़ियों से संघर्ष ही लिखा था उनके ख़ानदान में..

इंसान पैदा कहाँ हुआ यह उसके हाथ में नहीं पर मरेगा कहाँ और कैसे यह तो कम से कम वह तय ही कर सकता। वह भले ग़रीब घर में पैदा हुआ पर वह ग़रीब मरना नहीं चाहता था। चार भाइयों में सबसे बड़ा था वह..बापू मज़दूरी का काम करता था और माँ घरों में झाड़ू-पोंछे और झूठे बर्तन धोने का काम करती थी। सुना था अम्मा बहुत साफ बर्तन माँजती थी, बर्तन चाँदी की तरह चमकते थे। अम्मा घर पर भी तो कितना साफ बर्तन माँजती थी, कोई साबुन नहीं कोई सोडा नहीं बस चूल्हे की राख या फिर मिट्टी को जूने में फँसाकर ऐसा रगड़कर माँजती बर्तन चम-चम चमकने लगता। पर अम्मा अपनी और अपनों की क़िस्मत को कहाँ चमका पाई थी।

सब कहते थे अम्मा बहुत सुघड़ है हर चीज़ सँभाल लेती। हर खोई चीज़ को कितनी आसानी से ढूँढ़ लेती थी वह, पर अपने बच्चों की क़िस्मत, उम्मीदों और सपनों को वह क्यों नहीं ढूँढ़ पाई थी। अम्मा के ख़ुद के सपने और उम्मीदें गुमशुदा की तलाश बनकर रह गए थे।

आख़िर सोनुवा ने तय कर लिया वह भी बापू का हाथ बटाएगा पर अगर वह भी चला गया तो उसके भाई-बहनों को कौन देखेगा।

आख़िर उसने ऐसा काम ढूँढ़ लिया जिससे किसी को परेशानी नहीं होगी। तीन-चार घण्टे के काम के लिए पूरे पाँच सौ मिलते थे, हाँ यह बात अलग थी बस लग्न-लग्न में ही काम मिलता था। उसने अपने आप को समझाया तो क्या हुआ हाथ में कुछ तो आएँगे अम्मा और बापू का बोझ कुछ तो कम होगा। इस महीने उसे यह तीसरा काम मिला था, उसने मन ही मन जोड़ा। परसों से खरमास लग रहा है। अब शादी-ब्याह एक महीने बाद ही होंगे। इसका मतलब एक महीने घर पर ही बैठना पड़ेगा। शुकुवा डूब जाएगा भगवान् एक महीने के लिए सो जाएँगे पर पेट और परिवार तो जागता ही रहेगा। दो-चार काम और मिल जाता तो ख़ुद के लिए एक स्वेटर ख़रीद लेता पर अब तभी..

"साले मुँह क्या देख रहा है, उठा सर पर.."

वह अपनी सोच के दायरे से बाहर आ गया। ठेकेदार ने भद्दी सी गाली दी। वह रुआँसा हो गया पर..जाड़े की सर्द रातों में कुहासे में लिपटी सड़कों में हड्डियाँ भी ठंड से कँप-कँपा रही थीं। उसने तन पर लपेटे बापू के गमछे को गोल-गोल घुमाकर सिर पर रख लिया और एक गहरी साँस ले लाइट के गमले को सिर पर रख लिया। बापू ने बताया था कि साँस रोक कर सामान सिर पर रखो तो वजन कम लगता है, पर लाइट का यह गमला पहले वाले से ज़्यादा भारी था। किसी से सुना था सामने वाली पार्टी जैसा माल ख़र्चा करती है लाइट और साउंड वैसे ही उपलब्ध कराया जाता है। ठेकेदार ने अच्छे पैसे लिए थे जैसा काम वैसा दाम..पर उनकी मज़दूरी वह तो जस की तस ही थी।

दूल्हे राजा जीप के ऊपर बने रथ पर सवार थे। सिर के पीछे चक्र घूम रहा था। सोनू को न जाने क्यों अम्मा के लाए उस कैलेंडर की याद आ गई जिसमें भगवान् जी के सिर के पीछे सुनहरे रंग का रौशनी थी। वह सोचने लगा जब उसकी भी शादी होगी तब वह भी ऐसे ही रथ पर बैठकर जाएगा। वह सोचकर मन ही मन मुस्करा पड़ा।

"ये देश है वीर जवानों का अलबेलों का मस्तानों का.." गाने की धुन पर सूट-बूट पहने बराती बेतहाशा नाच रहे थे। अचानक से गाने की धुन बदली और लोग गले में पड़ी टाई और रूमालों को मुँह में दबाए साँप की तरह नाचने लगे। कानफोड़ू बैंड और पंजाबी ढोल की आवाज़ में नाचते बराती को देख वह आश्चर्य में पड़ गया। बिन बाज़ू के ब्लाउज, मेकअप से पुते चेहरों को देखकर उसे अम्मा की याद आ गई। अम्मा रोज़ नहाने के बाद दीवाली के दिन पागे हुए काजल को दाहिने हाथ की

पहली और दूसरी उँगली में डुबो आँखों में आँज लेती और बचे हुए काजल को बालों में रगड़कर छुड़ा लेती। माँग में लम्बी सी पीले सिंदूर की रेखा और चवन्नी बराबर टिकुली उनके चेहरे पर कितनी सुंदर दिखती थी।

अम्मा नियम से सरसों का तेल बालों में लगाती और तेल लगाने के बाद हाथ में बचे हुए तेल को चेहरे और हाथों पर चुपड़ लेती। उनका शृंगार तो बस इतना ही था पर उसी शृंगार में वह कितनी सुंदर लगती थी। अम्मा की सुंदरता के आगे ये लिपे-पुते चेहरे भी उसे फ़ीके लग रहे थे। मस्ती से नाचती लड़कियों और औरतों को ठंड नहीं लग रही थी।

तभी शराब में धुत्त एक बराती उससे आकर टकराया। सिर पर रखे भारी वज़न की वजह से उसका पैर लड़खड़ा गए और उसके लड़खड़ाने की वजह से उसके साथियों का संतुलन भी बिगड़ गया। ठेकेदार ने उसे फिर से एक भद्दी गाली देते हुए कहा-

"साले एक काम ठीक से नहीं करता। लड़कियों को ताड़ रहा है। आगे से कोई काम नहीं दूँगा, देखता हूँ तुझे कौन काम देता है।"

वह हक्का-बक्का रह गया।

"मालिक वह बाराती.."

वह कुछ कहता तब तक ठेकेदार आगे बढ़ गया। कहाँ तो वह दो-चार और काम के जुगाड़ में था। यहाँ तो उसकी नौकरी के लाले पड़ गए थे। उसका चेहरा उतर गया। बारात सब्ज़ी मंडी की तरफ से होकर गुज़र रही थी। दुकानें लगभग बंद हो चुकी थीं। दो-चार दुकानें ही खुली थीं। दुकानदार अपनी सब्जियाँ समेटने में लगे थे। दुकानदार सड़ी-गली सब्ज़ियाँ छाँट कर सड़कों पर फेंक रहे थे। अगल-बगल दो-चार गाय और साँड रात्रि भोज के लिए खड़े थे। वैसे वह हमेशा यहीं आस-पास ही घूमते रहते।

साँड के विशालकाय शरीर को देख सब चौकन्ने हो गए। लाल साड़ी वाली मोहतरमा खिसक कर पीछे चली गईं, शायद उन्हें कुछ याद आ गया था। साँड कानफोड़ू शोर से बेख़बर सिर झुकाए खड़े हुए थे, मानों दुनिया के मोह माया से पूरी तरह विरक्त हो चुका हो। साँड के डर से बारातियों ने चारों तरफ से बारात को घेर लिया। पूरी सब्ज़ी मंडी में सड़ी-गली सब्ज़ियों से बजबजा रही थी।

बारातियों ने रूमाल अपने नाक पर रख लिया पर सिर पर लाइट के बोझ को लादे वह अपनी नाक को कैसे ढकता। उसका मन खिन्न हो गया। कितना असहाय था वह अपनी परिस्थितियों के आगे.. बारात दरवाज़े पर लग गई। ढोल वाले पूरे उत्साह के साथ ढोल बजा रहे थे और उतने ही उत्साह के साथ बाराती भी नाच रहे थे।

लोग करारे नोट होठों और उँगलियों के बीच दबाए नाच रहे थे। तभी किसी बाराती ने नाचते-नाचते उन नोटों को हवा में उछाल दिया। ढोल वालों की नज़र हवा में उड़ते उन नोटों पर ही टिकी हुई थी। मौक़ा देख उन्होंने उन नोटों को झपट लिया और उँगलियों में फँसा दुगुने उत्साह के साथ बजाने लगे। एक नोट लहराता हुआ सोनुवा की आँखों के सामने से गुज़रा पर वह चाहकर भी उसे पकड़ नहीं पाया। उसमें से एक भी नोट उसे और उसके साथियों को नहीं मिले। ढोल वाले उन्हें पहले ही लपक लेते। गाढ़े नीले रंग की धोती और पीले कुर्ते के ऊपर लाल मखमली सदरी पहने ढोल वालों के चेहरे पर एक विजयी मुस्कान बिखरी हुई थी।

बाराती मैरिज लॉन में घुस गए। स्वादिष्ट भोजन की मिली-जुली ख़ुशबू बाहर तक आ रही थी। सोनुवा ने एक लम्बी साँस खींची और उसकी ख़ुशबू में डूब गया। लड़की वालों ने पुरुषों को गेंदे की माला और महिलाओं को रजनीगंधा की माला पहनाकर स्वागत किया। बारातियों को दरवाज़े पर ही सील बन्द पानी की बोतलें और सूखे मेवे के पैकेट पकड़ाए गए पर लाइट वालों और ढोल वालों को किसी ने एक गिलास पानी भी नहीं पूछा। सोनुवा और उसके साथी झुके कंधों और थके क़दमों से गोदाम वापस आ गए। उसने सोचा था मालिक से माफ़ी माँग लूँगा पर क्या वह माफ़ करेगा पर माफ़ तो भगवान् भी कर देता है। सोनुवा के मन में एक अलग सी उधेड़बुन चल रही थी।

ठेकेदार ने सबका हिसाब कर रहा था। सोनुवा सकुचाता हुआ आगे बढ़ा।

"क्या नाम है तुम्हारा..?"

"जी आर्यन..!"

वह कहना चाहता था पर न जाने क्या सोचकर शब्द उसकी गले में अटक कर रह गए।

"सोनू.."

वक़्त के साथ उसने अपनी परिस्थितियों के साथ ही नहीं अपने नाम के साथ भी समझौता कर लिया था।

"आगे से काम पर आने की कोई ज़रूरत नहीं है। साला लड़कियों को ताड़ता है। वह तो और मौक़े पर मैंने देख लिया वरना बाराती इसे कहीं का न छोड़ते।"

"मालिक..."

एक बार उसने सोचा कि वह अपनी सफाई में कुछ कहे पर जब ठेकेदार सोच ही चुका था तब उसके आगे कुछ भी कहने-सुनने का कोई फ़ायदा नहीं था। उसने ठेकेदार के पैर पकड़ लिए।

"भैया! माफ कर दो इस बार ग़लती हो गई। आगे से ऐसी ग़लती नहीं करूँगा।"

पर ठेकेदार ने उसे झटक दिया। बेचारा ज़मीन पर लुढ़क गया उसके घुटने और कुहनी छिल गए। उसकी आँखों में आँसू आ गए। चोट लगने से नहीं बल्कि अपमान से.. चोट की घाव तो फिर भी भर जाते हैं पर अपमान के घाव शायद कभी नहीं। उसने आसमान की ओर देखा और सोचने लगा।

"भगवान् तुम हम जैसे ग़रीबों के लिए कहाँ सो गए हो?"

अम्मा हमेशा कहती है भगवान् से बड़ा कोई नहीं होता। भगवान् के सामने माफ़ी माँग लो तो वह बड़ी से बड़ी ग़लतियों को भी माफ़ कर देता है पर क्या इंसान भगवान् से भी बड़ा होता है? उसके मालिक ने तो उसकी ग़लतियों को माफ़ नहीं किया था। दूल्हे के रथ पर लगा सुनहरा गोला अभी भी चमक रहा था पर न जाने क्यों सोनुवा को उसकी चमक धूमिल होती प्रतीत हो रही थी। सोनुवा ने गमछा सिर से उतारा और अपने घावों को पोंछता हुआ घने कोहरे में अपने गुमशुदा उम्मीदों और सपनों के साथ ग़ायब हो गया।

000

बाहर कुछ जल रहा है

हंगेरियन कहानी

मूल लेखक : लैस्ज़्लो क्रैस्ज़्नअहोरकाइ

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

लैस्ज़्लो क्रैस्ज़्नअहोरकाइ
हंगरी के उपन्यासकार,
कहानीकार और नाटककार

सुशांत सुप्रिय
A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम्, ग़ाज़ियाबाद -201014
(उ. प्र.)
मोबाइल- 8512070086
ईमेल- sushant1968@gmail.com

ज्वालामुखी के गह्वर में स्थित संत एन्ना झील एक मृत झील है। यह झील 950 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है और लगभग हैरान कर देने वाली गोलाई में मौजूद है। यह झील बरसात के पानी से भरी हुई है। इसमें जीवित रहने वाली एकमात्र मछली 'कैटफ़िश ' प्रजाति की है। जब भालू देवदार के जंगल में से चहलक़दमी करते हुए यहाँ पानी पीने के लिए आते हैं तो वे इंसान के यहाँ आने वाले रास्ते से अलग दूसरे ही रास्ते चुनते हैं। दूसरी ओर एक ऐसा इलाक़ा है जहाँ कम ही लोग जाते हैं। यह एक धँसने वाला, सपाट, दलदली इलाक़ा है। आज लकड़ी के तख़्तों से बना एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता इस दलदली इलाक़े के बीच में से होकर गुज़रता है। इस झील का नाम काईदार झील है। जहाँ तक पानी की बात है, अफ़वाह यह है कि यहाँ का पानी बेहद ठंड में भी नहीं जमता है। बीच में यह पानी हमेशा गरम रहता है। यह झील लगभग हज़ार सालों से मृत है और यही हाल इस झील के पानी का है। अधिकतर यहाँ एक गहरा सन्नाटा ज़मीन की छाती पर बोझ बनकर मँडराता रहता है।

आयोजकों में से एक ने पहले दिन आने वाले अतिथियों को जगह दिखाते हुए कहा कि यह चिंतन-मनन और घूमने-फिरने के लिए आदर्श स्थान है। इस बात को सबने याद रखा। उनका शिविर सबसे ऊँचे पहाड़ के पास ही था जिसके शिखर का नाम 'हज़ार मीटर की चोटी ' था। इसलिए चोटी के नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक दोनों दिशाओं में लोगों का आना-जाना लगा रहा। हालाँकि इसका अर्थ यह नहीं था कि नीचे शिविर में उसी समय ज़बरदस्त गतिविधियाँ नहीं हो रही थीं। हमेशा की तरह समय बीतता जा रहा था। इस जगह की कल्पना करके सोचे गए रचनात्मक विचार और भी ज़बरदस्त तरीक़े से आकार और अंतिम रूप ले रहे थे। तब तक सभी अतिथि अपनी-अपनी नियत जगहों पर स्थापित हो चुके थे। ज़रूरत की कुछ चीज़ें उन्होंने अपने हाथों से लगा ली थीं। अधिकांश ने मुख्य भवन के निजी कक्ष को प्राप्त कर लिया था। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने काफ़ी समय से इस्तेमाल में न आई झोंपड़ियों में रहना स्वीकार किया था। आगंतुकों में से तीन लोग ऐसे थे जिन्होंने शिविर के केन्द्र-बिंदु वाले भवन की बहुत बड़ी अटारी पर क़ब्ज़ा कर लिया। यहाँ भी तीनों ने अपने लिए अलग-अलग जगहें निर्धारित कर लीं। यह चीज़ सभी को बेहद ज़रूरी लग रही थी। वे काम करते हुए भी अपनी निजता में अकेले रहना चाहते थे। सभी को शांति चाहिए थी। वे उत्तेजना और अशांति से दूर रहना चाहते थे। इस तरह वे सभी अपने-अपने काम में जुट गए और इसी तरह काम करने में दिन बीतने लगे। ख़ाली समय में बाहर चहलक़दमी की जाती, झील में सुखद डुबकी लगाई जाती और शाम के समय शिविर के किनारे आग जला कर उसके इर्द-गिर्द बैठकर गाने गाए जाते। साथ ही घर की बनी फलोंवाली ब्रांडी पीने का लुत्फ़ उठाया जाता।

इस वृत्तान्त का अनुमान लगाना भ्रामक था। जो तथ्य धीरे-धीरे किंतु वास्तविक रूप से उभर कर सामने आए, उनसे तो यही लगा। काम के पहले दिन सबसे तीक्ष्ण दृष्टि वालों का भी यही विचार था। लेकिन तीसरा दिन होते-होते इस बात पर आम राय बन गई। उन बारह लोगों में से एक बाक़ी सबसे अलग था। उसका वहाँ आना भी बेहद रहस्यमय था। कम-से-कम उसका वहाँ आना बाक़ियों से तो बिल्कुल अलग था। वह वहाँ रेलगाड़ी और फिर बस से नहीं आया था। यह चाहे कितना भी अकल्पनीय लग रहा था, अपने आने के दिन शायद शाम छह या साढ़े छह बजे वह शिविर का मुख्य द्वार खोल कर सीधा अंदर आ गया था। उसे देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वह वहाँ पैदल चलकर ही पहुँचा हो। दूसरों को देखकर उसने केवल रुखाई से अपना सिर हिला दिया था। जब आयोजकों ने विनम्रतापूर्वक और सम्मान से उसका नाम पूछा, और फिर वे उससे यह पूछने लगे कि वह यहाँ तक कैसे पहुँचा था, तो उसने उत्तर दिया कि कोई उसे कार से सड़क के एक मोड़ तक छोड़ गया था। लेकिन उस प्रगाढ़ ख़ामोशी में किसी ने भी वहाँ

किसी कार की आवाज़ नहीं सुनी थी जो उसे 'सड़क के एक मोड़ तक' छोड़ जाती। यह पूरा विचार ही अविश्वसनीय लग रहा था कि कोई उसे पूरे रास्ते नहीं बल्कि केवल सड़क के एक मोड़ तक छोड़ गया था। इसलिए, किसी को भी उसकी बात पर यक़ीन नहीं हो रहा था। या यदि और सटीकता से कहें तो किसी को यह समझ नहीं आ रहा था कि उसके शब्दों की व्याख्या कैसे की जाए। अत: उसके आने के पहले दिन एकमात्र सम्भव और विवेकपूर्ण वैकल्पिक राय यही लग रही थी कि वह पूरा रास्ता पैदल चलकर आया था। हालाँकि यह राय भी अपने-आप में असंगत लग रही थी। क्या उसने बुख़ारेस्त से अपनी यात्रा इसी प्रकार शुरू की होगी और यहाँ के लिए ऐसे ही निकल पड़ा होगा ? और क्या बिना किसी रेलगाड़ी या बस पर चढ़े वह केवल पैदल चलता हुआ यहाँ तक पहुँच गया था ? फिर तो कौन जानता है, वह कितने हफ़्तों तक पैदल चला होगा। क्या संत ऐन्ना झील तक की लम्बी यात्रा इसी प्रकार समाप्त करके वह एक शाम छह या साढ़े छह बजे शिविर का मुख्य द्वार खोलकर सीधा वहाँ पहुँच गया था ? जब उससे यह प्रश्न किया गया कि क्या आयोजन-समिति श्री इयोन ग्रिगोरेस्क्यू को सम्मानित कर रही थी, तो उसने उत्तर में केवल रुखाई से अपना सिर हिला दिया।

यदि उसके वृत्तांत की विश्वसनीयता का अनुमान उसके जूतों की हालत से लगाया जाता तो फिर किसी के मन में कोई संदेह नहीं रह जाता। शायद शुरू में वे जूते भूरे रंग के थे। वे गर्मियों में पहने जाने वाले नक़ली चमड़े के हल्के जूते थे। जूतों की अँगूठे वाली जगह पर सजावट की गई थी, लेकिन अब वह सजावट उखड़ कर एक ओर लटकी हुई थी। दोनों जूतों के तल्ले आधे उखड़े हुए थे। जूतों की एड़ियाँ पूरी तरह घिस चुकी थीं और दाएँ अंगूठे के पास एक जूते के चमड़े में छेद हो गया था जिसके कारण भीतर पहनी हुई जुराब वहाँ से नज़र आ रही थी। लेकिन यह केवल उसके जूतों की ही बात नहीं थी। अंत तक इस सब को एक रहस्य बने रहना था। कुछ भी हो, उसके कपड़े दूसरों द्वारा पहने गए पश्चिमी परिधानों से अलग दिखाई दे रहे थे। ऐसा लगता था जैसे वह 1980 के दशक के दुर्दांत तानाशाह के युग से, उस समय की दुर्दशा के काल से सीधे वर्तमान युग में आ पहुँचा कोई पात्र हो। उसकी अज्ञात रंग की चौड़ी पतलून फ़लालेन जैसे किसी मोटे कपड़े से बनी हुई प्रतीत हो रही थी। वह पतलून उसके टखनों पर स्पष्टता से फड़फड़ा रही थी। किंतु उसने जो कार्डिगन पहन रखा था, वह देखने में और ज़्यादा कष्टकर लग रहा था। वह दलदली-हरे रंग का बेहद ढीला, निराश कर देने वाला कार्डिगन था। उसने उसे चौकोर खाने वाली क़मीज़ के ऊपर पहन रखा था और इस मौसम की गर्मी के बावजूद उसकी क़मीज़ के ठोड़ी तक के सभी ऊपरी बटन बंद थे।

वह किसी जल-पक्षी की तरह पतला-दुबला था और उसके कंधे झुके हुए थे। उसके डरावने, मरियल चेहरे पर दो गहरी भूरी जलती हुई आँखें मौजूद थीं। वे वाक़ई जलती हुई आँखें थीं- किसी अंदरूनी आग से जलती हुई आँखें नहीं, बल्कि केवल प्रतिबिंबित करती हुईं, जैसे वे दो स्थिर आईने हों जो यह बता रहे हों कि बाहर कुछ जल रहा है।

तीसरा दिन होते-होते वे सभी समझ गए थे कि यह शिविर उसके लिए शिविर नहीं था। यहाँ होने वाला काम उसके लिए काम नहीं था। यह ग्रीष्म ऋतु उसके लिए ग्रीष्म ऋतु नहीं थी। तैरना या अन्य कोई आरामदायक छुट्टी मनाने का उपक्रम, जो आम तौर पर ऐसे सामूहिक आयोजनों का हिस्सा होता है, उसके लिए नहीं था। उसने आयोजकों से अपने लिए एक जोड़ी जूतों की माँग की और वे उसे मिल गए। (उन्होंने उसे वे जूते दे दिए जो बाहर अहाते में एक कील से लटके हुए थे।) वह उन जूतों को पूरा दिन पहनकर शिविर के इलाक़े के भीतर ही ऊपर-नीचे टहलता रहता। वह न तो पहाड़ी पर चढ़ता-उतरता, न ही झील के किनारे टहलने के लिए जाता। वह दलदली झील पर बने तख़्तों के मार्ग पर भी कभी नहीं चलता। वह अपना अधिकांश समय भीतर ही बिताता। कभी-कभी वह इधर-उधर चलता हुआ पाया जाता। ज़्यादातर वह यह देखता रहता कि कौन क्या कर रहा है। वह मुख्य भवन के सभी कमरों के सामने से गुज़रता। वह अपने चेहरे पर अति व्यस्त भाव लिए चित्रकारों, छाप या मुहर लगाने वालों तथा मूर्तिकारों के पीछे खड़े हो कर यह देखता रहता कि हर काम में प्रतिदिन कितनी प्रगति हो रही है। वह अटारी पर चढ़ जाता तथा छप्पर और लकड़ी की झोंपड़ी में घुस जाता, लेकिन उसने कभी किसी से कोई बात नहीं की। पूछने पर भी उसने शब्दों में कभी किसी बात का कोई जवाब नहीं दिया, गोया वह गूँगा-बहरा हो या वह किसी की कही कोई बात नहीं समझ पा रहा हो। उसका व्यवहार शब्दहीन था। जैसे वह उदासीन, जड़ या मूढ़ हो या कोई भूत-प्रेत हो। और तब बाक़ी के सभी ग्यारह लोग सतर्क होकर उसे देखने लगे, जैसे ग्रिगोरेस्क्यू उन्हें देखता था। वे सभी एक नतीजे पर पहुँचे और उन्होंने उस शाम जलती हुई आग के इर्द-गिर्द इस विषय पर चर्चा की। (ग्रिगोरेस्क्यू वहाँ अन्य साथियों के साथ कभी नहीं देखा गया क्योंकि वह हर शाम जल्दी सोने चला जाता था।) अन्य सभी लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि उसका यहाँ आगमन आश्चर्यजनक था, उसके जूते अजीब थे और उसका कार्डिगन, उसका भीतर धँसा चेहरा, उसका दुबलापन, उसकी आँखें- ये सभी चीज़ें विचित्र थीं। लेकिन उन्होंने पाया कि उसकी एक चीज़ सबसे विशिष्ट थी, जिसका उन्होंने अभी तक संज्ञान भी नहीं लिया था। वह चीज़ वाक़ई आश्चर्यजनक थी। दरअसल यहाँ मौजूद यह प्रख्यात सर्जनात्मक आकृति, जो सदा सक्रिय रहती थी, पूरी तरह से कार्यहीन और ख़ाली थी जबकि बाक़ी सभी लोग काम-काज में व्यस्त थे।

वह ख़ाली था। यानी कुछ भी नहीं कर रहा था। यह बात समझ में आने पर वे सब हैरान रह गए। लेकिन वे ज़्यादा हैरान इस बात पर हुए कि उन्होंने शिविर के शुरुआती दिनों में इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। यदि गिना जाए तो आज आठवाँ दिन चल रहा था। आगंतुकों में से कुछ तो अपनी कला को अंतिम रूप दे रहे थे, किंतु उस अजनबी के कुछ न करने के इस अजीब तथ्य की ओर उन

सब ने अब जाकर ध्यान दिया था। वह वास्तव में कर क्या रहा था ? कुछ नहीं। कुछ भी नहीं। उस समय के बाद से वे सभी अनजाने में ही उस पर निगाह रखने लगे। एक बार दसवें दिन उन्होंने पाया कि पौ फटने के बाद से सुबह के पूरे समय काफ़ी अरसे तक ग्रिगोरेस्क्यू कहीं दिखाई नहीं दिया, हालाँकि वह बहुत जल्दी उठ जाता था। अधिकांश लोग तब सोते रहते थे। उस समय किसी ने भी उसे कहीं जाते हुए नहीं देखा। वह झोंपड़ी के पास नहीं था, छप्पर के निकट नहीं था, न भीतर था, न बाहर था। दरअसल इस बीच वह किसी को भी दिखाई नहीं दिया था, गोया वह कुछ समय के लिए ग़ायब हो गया हो।

बारहवें दिन के अंत में कुछ लोगों ने उत्सुकता से भर कर अगली सुबह तड़के उठने का फ़ैसला किया ताकि वे इस मामले की जाँच कर सकें। हंगरी के एक चित्रकार ने सब को सुबह जल्दी उठाने की ज़िम्मेदारी सँभाल ली।

अभी भी अँधेरा ही था जब वे सब अगली सुबह सो कर उठे और उन्होंने पाया कि ग्रिगोरेस्क्यू अपने कमरे से नदारद था। वे सब मुख्य द्वार की ओर पहुँचे, वापस लौटे, और झोंपड़ी तथा छप्पर तक गए किंतु कहीं भी उसका नामो-निशान नहीं था। भौंचक्के होकर उन्होंने एक-दूसरे को देखा। झील की ओर से हल्की हवा बह रही थी, पौ फटने लगी थी और धीरे-धीरे सुबह के उजाले में उन्हें एक-दूसरे की आकृतियाँ दिखाई देने लगी थीं। चारों ओर घना सन्नाटा था।

और तब उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी। जहाँ वे खड़े थे, वहाँ से वह आवाज़ बड़ी मुश्किल से सुनाई दे रही थी। वह दूर कहीं से आ रही थी। शायद शिविर के अंतिम छोर से। या ठीक से कहें तो उस अदृश्य सीमा-रेखा के दूसरी ओर से, जहाँ दो बहिगृह मौजूद थे। वे शिविर की सीमा-रेखा पर स्थित थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि उस बिंदु के बाद से भू-भाग किसी खुले आँगन जैसा नहीं दिखता था। अभी प्रकृति ने उस मैदान पर वापस क़ब्ज़ा नहीं किया था, किंतु किसी ने उस भू-भाग में कोई रुचि नहीं दिखाई थी। असल में वह एक असभ्य, डरावनी जगह थी जहाँ कोई इंसान नहीं आता-जाता था। शिविर के मालिकों ने भी उस भू-भाग पर इतना ही दावा किया था कि वे वहाँ फ्रिज और रसोई से निकलने वाला कूड़ा-कचरा फेंक दिया करते थे। इसलिए समय के अंतराल के साथ उस पूरे इलाक़े में अभेद्य, हठी, आदमकद झाड़-झंखाड़ उग आए थे। ये बेकार की कँटीली, मोटी, प्रतिकूल वनस्पतियाँ अविनाशी लगती थीं।

उस पार कहीं से, उस झाड़-झंखाड़ में से उन्होंने वह आवाज़ सुनी जो छन कर उनकी ओर आ रही थी। वे सब हिचक कर ज़्यादा देर तक रुके नहीं रहे बल्कि एक-दूसरे की ओर देख कर वे आगे किए जाने वाले काम में जुट गए। चुपचाप सिर हिला कर वे उस झाड़-झंखाड़ में घुस गए। वे सब उस आवाज़ की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। वे उस झाड़-झंखाड़ में काफ़ी अंदर तक चले गए थे और अब शिविर की इमारतों से दूर आ गए थे। तब जाकर वे उस आवाज़ के क़रीब पहुँच पाए और यह पता लगा पाए कि शायद वहाँ कोई ख़ुदाई कर रहा था।

वे और आगे बढ़े। अब किसी उपकरण के ज़मीन की मिट्टी से टकराने की आवाज़ स्पष्ट सुनाई दे रही थी। किसी गड्ढे में से मिट्टी निकाले जाने, और उस मिट्टी के लम्बी घास पर गिर कर फैलने की आवाज़ भी साफ़ सुनाई दे रही थी।

उन्हें दाईं ओर मुड़कर दस-पंद्रह कदम आगे चलना पड़ा। किंतु वे वहाँ इतनी जल्दी पहुँच गए कि वे सब ढलान से नीचे लगभग गिरने ही वाले थे। उन्होंने देखा कि वे एक विशाल और गहरे गड्ढे के किनारे खड़े थे। वह गड्ढा तीन मीटर चौड़ा और पाँच मीटर लम्बा था। उस गड्ढे के तल पर उन्हें ग्रिगोरेस्क्यू ख़ुदाई करता हुआ नज़र आया। वह गड्ढा इतना गहरा था कि उसका सिर बड़ी मुश्किल से नज़र आ रहा था। अपने काम में व्यस्त होने की वजह से उसने उन सब के आने की आवाज़ नहीं सुनी थी। वे सब उस गहरे गड्ढे के किनारे खड़े होकर वहाँ से नीचे के दृश्य को देखते रहे।

वहाँ नीचे, उस गहरे गड्ढे के बीच में उन्हें मिट्टी से बनाया गया लगभग सजीव लगने वाला एक घोड़ा दिखाई दिया। उस घोड़े का सिर एक ओर ऊँचा उठा हुआ था। उसके दाँत दिख रहे थे और उसके मुँह से झाग निकल रहा था। वह घोड़ा जैसे किसी भयावह शक्ति से डरकर सरपट दौड़ रहा था, जैसे वह कहीं भाग रहा हो। वे सब इस दृश्य को देखने में इतने मग्न हो गए कि उन्होंने इस बात की ओर बहुत बाद में ध्यान दिया कि ग्रिगोरेस्क्यू ने एक बहुत बड़े इलाक़े से झाड़-झंखाड़ काट दिए थे और वहाँ यह गहरा गड्ढा खोद दिया था। गड्ढे के बीच में मौजूद उस मुँह से झाग निकालते, सरपट दौड़ते घोड़े के आस-पास से उसने सारी मिट्टी हटा दी थी। ऐसा लग रहा था जैसे ग्रिगोरेस्क्यू ने उस घोड़े को धरती के गर्भ से खोद निकाला था, उसे मुक्त कर दिया था जिसके कारण वह आदमक़द घोड़ा सबको दिखाई देने लगा था। ऐसा लग रहा था जैसे वह घोड़ा ज़मीन के नीचे मौजूद किसी भयानक चीज़ से डर कर भाग रहा हो। भौंचक्के हो कर वे सब ग्रिगोरेस्क्यू को देखते रहे जो उनकी मौजूदगी से पूरी तरह अनभिज्ञ अपने काम में व्यस्त था।

वह पिछले दस दिनों से यहाँ ख़ुदाई कर रहा है- उस गहरे गड्ढे के बग़ल में खड़े हो कर उन्होंने अपने मन में सोचा। यानी वह पौ फटने के समय से लेकर पूरी सुबह तक इन सारे दिनों में यहाँ ख़ुदाई करता रहा है।

किसी के पैरों के नीचे से मिट्टी फिसल कर नीचे गिरी और तब ग्रिगोरेस्क्यू ने ऊपर देखा। पल भर के लिए वह रुका। फिर उसने अपना सिर झुकाया और वह दोबारा अपने काम में व्यस्त हो गया। सभी कलाकार ख़ुद को असुविधाजनक स्थिति में महसूस करने लगे। उन्हें लगा कि किसी-न-किसी को कुछ कहना चाहिए।

"वाह,यह शानदार है" फ्रांसीसी चित्रकार इयोन ने धीमे स्वर में कहा।

ग्रिगोररेस्क्यू ने दोबारा अपना काम करना बंद किया और वह नीचे लटकी हुई एक सीढ़ी पर चढ़ कर उस गड्ढे में से बाहर निकल आया। उसने अपनी कुदाल में लगी मिट्टी को ज़मीन पर पटक कर झाड़ा और एक रूमाल

से अपने माथे का पसीना पोंछा। फिर वह उन सब लोगों की ओर आया और उसने अपनी बाँहों की धीमी, चौड़ी क्रिया के साथ उस पूरे भू-दृश्य की ओर इशारा किया।

"इस जैसे यहाँ अब भी बहुत-से मौजूद हैं," उसने धीमी आवाज़ में कहा।

फिर उसने अपनी कुदाल उठाई और सीढ़ियों के सहारे वह वापस उस गहरे गड्ढे में उतर गया, जहाँ उसने दोबारा ख़ुदाई आरम्भ कर दी। शेष सभी कलाकार गड्ढे के बगल में ऊपर खड़े हो कर अपने सिर हिलाते रहे। फिर वे सभी चुपचाप शिविर के मुख्य भवन की ओर लौट गए। अब केवल विदाई शेष रह गई थी। निदेशकों ने एक बड़े भोज का आयोजन किया, और फिर अंतिम शाम भी आ गई। अगली सुबह शिविर के मुख्य द्वार पर ताला लगा दिया गया। एक बस का प्रबंध किया गया था और कार से बुख़ारेस्ट या हंगरी से आए हुए कुछ लोग भी शिविर से विदा हो गए।

ग्रिगोरेस्क्यू ने वे जूते वापस प्रबंधकों को लौटा दिए। उसने दोबारा अपना घिसा हुआ फटा जूता पहन लिया और उसने अपना कुछ समय प्रबंधकों के साथ बिताया। फिर शिविर से कुछ किलोमीटर की दूरी पर एक गाँव के पास सड़क के मोड़ पर, उसने अचानक चालक को बस रोकने के लिए कहा। उसने जो कहा उसका आशय कुछ-कुछ यह था कि यहाँ से आगे उसका अकेले जाना ही बेहतर होगा। लेकिन दरअसल उसने क्या कहा था, यह किसी को समझ में नहीं आया क्योंकि उसने यह बेहद धीमी आवाज़ में कहा था।

फिर मोड़ मुड़ कर बस आँखों से ओझल हो गई। तब ग्रिगोरेस्क्यू सड़क पार करने के लिए मुड़ा और नीचे उतर रहे सर्पीले रास्ते पर वह अचानक ग़ायब हो गया। अब वहाँ केवल वह भू-भाग मौजूद था जहाँ पहाड़ों की ख़ामोश व्यवस्था थी। उस विशाल भू-भाग में ज़मीन नीचे गिरे हुए मृत पत्तों से ढँकी हुई थी। भू-भाग का वह असीम विस्तार भेस बदलने वाला, छिपाने वाला और सब कुछ गुप्त रखने वाला लग रहा था, जैसे जल रही ज़मीन के नीचे मौजूद हर चीज़ को वह ढँक दे रहा हो।

000

लघुकथा

मूक अन्तरात्मा

बसन्त राघव

यह ठीक है मैं उस आदमी को जानता हूँ जिसने खुल्लम खुल्ला व्यस्त सड़क पर तेज़धार वाली चमचमाती छुरी से एक आदमी का क़त्ल कर दिया। मैं उस आदमी को भी पहचानता हूँ जो अब रक्त रंजित लाश के रूप में तब्दील हो गया है।

चुप रहो .....मैंने अपनी अन्तरात्मा से कहा।

"बिलकुल चुप रहो, तुम कुछ भी मत बोलो .....मत बोलो, मत टोको! मत झँझोड़ो मुझे! कोई मरे... कोई जीए... मुझे क्या !"

मैं मन ही मन बुदबुदाया.. "अधिकांश लोग जानते हैं, मुझसे बेहतर जानते हैं। फिर क्या मुझे पागल कुत्ते ने काटा है जो इस भीषण रक्तपात का एकमात्र चश्मदीद बनूँ...न! बुद्धिमानी इसी में है कि मैं भी भाग चलूँ यहाँ से। दूसरों की तरह बिलकुल ग़ैर ज़िम्मेदार अन्दाज में! कि कुछ देखा ही नहीं, कि कुछ हुआ ही नहीं। कौन करे पुलिस को इत्तला, कौन दे गवाही। कौन डाले अपनी जान सांसत में। भाड़ में जाय इन्सानियत!"

उधर देख .....सब दुकानों के शटर गिरने लगे हैं। कैसी भगदड़ मची है चारों तरफ़! देखना थोड़ी ही देर में सायरन की आवाज़ सुनाई देगी और यहाँ खाकी वार्दियों का सैलाब आ जाएगा। तू कहती है कि मैं क़ातिल का नाम बता दूँ! क्या तू चाहती है कि मैं इन डरावने वर्दीधारियों के हत्थे चढ़ जाऊँ! उन काले कोट धारी कानून के पंडितों का जजमान हो जाऊँ ? उनके बेसिरपैर सवाल-जवाब से तंग आकर आत्म हत्या कर लूँ ? वैसे भी क़ातिल चश्मदीद गवाह को बचाएगा नहीं।

मैंने अपनी अन्तरात्मा से कहा "तुम्हारे झाँसे में आने वाला नहीं। उसूल यही है कि चुपचाप खिसक लूँ और दुबक लूँ अपने दड़बे में, ताकि एक ठंडी साँस लेकर इत्मिनान से कह सकूँ कि 'जान बची तो लाखों पाए, लौट के बुद्धू घर को आए' तू बिलकुल फिकर मत कर मेरी अन्तरात्मा। आदमी ऐसा ही निर्लिप्त अच्छा लगता है। उसकी यही तटस्थ भावना उसको सदा मुक्ति प्रदान करती है। आदमी जितना अधिक स्वार्थी होगा वह उतना ही सफल दुनियादार माना जाएगा।

000

बसन्त राघव, पंचवटी नगर, मकान नं. 30,
कृषि फार्म रोड, बोईरदादर, रायगढ़, छत्तीसगढ़
मोबाइल- 8319939396
ईमेल- basantsao52@gmail.com

भूमि

पंजाबी कहानी

मूल लेखक : सुरिन्दर नीर
अनुवाद : जसविंदर कौर बिन्द्रा

सुरिन्दर नीर
मोबाइल- 9622006304

डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा
आर-142, प्रथम तल,
ग्रेटर कैलाश-1,
नई दिल्ली-110048
मोबाइल- 9868182835
ईमेल- jasvinderkaurbindra@gmail.com

महिला मुक्ति आंदोलन ने अचानक ही एक नया रूप ले लिया, जिससे सारी दुनिया में एक हंगामा पैदा हो गया। वैसे तो ऐसे नारे व आंदोलन अनेक वर्षों से दुनिया के किसी न किसी देश से उठते ही रहे हैं। परन्तु इस बार की जिस घटना से मुद्दा अत्यन्त हंगामाखेज़ हुआ, वह अपने आप में गंभीर भी था, जिससे कई प्रश्न सामने आ खड़े हुए।

हुआ यूँ कि विकासशील देश के एक पुरुष ने अपनी पत्नी से तलाक़ लेने के लिए जो कारण प्रस्तुत किए और उनके प्रत्युत्तर में पत्नी की ओर से दिए गए तर्क और दलीलें इस बहस को जन्म देने के लिए काफी थीं।

वास्तव में पति ने भरी अदालत में कहा कि दो बच्चों के प्रसव के बाद उसकी पत्नी का शरीर एकदम ढलक गया है और जिस्म के सभी अंगों पर उभर आईं लकीरों व निशानों के कारण वह बहुत कुरूप और 'डिसफिगर्ड' दिखाई देने लगी है। इसलिए सहवास के क्षणों में वह अत्यन्त असहज और तनाव से घिर जाता है। इस मानसिक तनाव के कारण वह ज़िंदगी की वे ख़ुशियाँ प्राप्त करने में असमर्थ है, जिन पर पति होने के नाते उसका क़ानूनी और सामाजिक अधिकार है।

पति ने अपने पक्ष में क़ानूनी और सामाजिक अधिकारों की बात तो की परन्तु प्राकृतिक अधिकारों के प्रति उसकी सोच शून्य थी। इन प्राकृतिक अधिकारों के हवाले से पत्नी ने जो जवाब दिया, वहीं से वास्तव में बहस आरंभ हुई। पत्नी के उस स्पष्टीकरण को दुनिया भर के न्यूज़ चैनलों में उसे ब्रेकिंग न्यूज़ बना कर बार-बार दुहराया जाने लगा। उस गोरी औरत ने कटहरे में खड़े होकर कहा- "मी लार्ड, मेरा बड़ा बेटा तीन साल का है, जिसे मैंने डेढ़ साल तक स्तनपान करवाया। एक छोटी बच्ची आठ-नौ महीने की है। वह अभी भी मेरा दूध पीती है। मैं जानती हूँ कि बच्चे के लिए माँ का दूध अत्यन्त पोषक होता है। अब मैं अपनी फिगर को सुडौल बनाए रखने के लिए अपने बच्चों को उनके मौलिक व प्राकृतिक अधिकारों से वंचित नहीं रख सकती और न ही मैं हर समय अपने स्तनों को अंगिया में क़ैद करके रख सकती हूँ, क्योंकि इससे ब्रेस्ट फीडिंग के समय बहुत असुविधा होती है।"

पति ने जब फिर अपनी ओर से तर्क देकर स्वयं को सही साबित करना चाहा तो पत्नी ने पूरे आत्मविश्वास से कहा, "परमात्मा ने मुझे स्तन बच्चे की फीडिंग के लिए दिए है, तभी बच्चे के जन्म के बाद माँ की छाती में दूध उतर आता है। यह किसी मर्द की ऐयाशी का खिलौना नहीं, जिससे मर्दों के खेलने के लिए इसे आकर्षित व सुडौल रखना मजबूरी हो।" उसने अदालत से पूछा, "क्या मेरा मेरे शरीर पर कोई अधिकार नहीं ? क्या मेरे शरीर का मालिक वह पति है, जो अपने बच्चों के प्रसव समय हार्मोनल परिवर्तनों के कारण पत्नी के शरीर पर पड़े निशानों से दुखी होकर उसे तलाक़ देने तक की हिमाक़त कर रहा है?"

इससे पहले कि पति अपनी पत्नी पर इस प्रकार के इल्ज़ाम लगा कर, अपने शरीरिक सुख के लिए तलाक़ की माँग को आगे बढ़ाता, पत्नी ने भरी अदालत में अपनी कमीज़ के नीचे से ब्रॉ निकाल कर पति के मुँह पर मारी और अपने दोनों बच्चों को साथ लेकर बाहर निकल गयी।

यह दिलचस्प ड्रामा कई दिनों तक सारी दुनिया के टीवी चैनलों में छाया रहा। मीडिया ने पत्नी द्वारा अपने बच्चों के अधिकारों की हिफ़ाज़त के साथ इसे स्त्रियों के अधिकारों और आज़ादी से जीने के मौलिक अधिकारों से जोड़ कर, दुनिया भर में एक सनसनी फैला दी।

सोफ़े पर अधलेटा होकर डॉ. सागर टीवी पर चल रही इस डिबेट को बहुत ध्यान से सुन रहा था। पश्चिम की ओर से एक स्त्री द्वारा उठाया यह प्रश्न अब सारी दुनिया में बहस और चर्चा का विषय बन गया था। इस बहस में पुरुषों से अधिक हिस्सा औरतें ले रही थी। हर बहस में वक्ता विषय की गंभीरता की बजाय अपनी बौद्धिकता के प्रदर्शन पर अधिक ज़ोर दे रहे थे। सभी एक-दूसरे की बात काटने की कोशिश कर रहे थे। यह देख कर, सागर ने खीझ कर टीवी बंद कर दिया। परन्तु अगले ही पल वह सोचने लगा, यदि इस विषय को उचित ढंग से मीडिया या सशक्त लेख द्वारा प्रचारित किया जाए, तो सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा जा सकता है। उसे अपनी भाषा और क़लम पर पूरा भरोसा है।

सागर मानवाधिकार और सामाजिक मुद्दों की एक ग़ैर सरकारी संस्था का निदेशक है। बेशक यह संस्था बहुत सारे एन.जी.ओ. से मिल कर काम करता है परन्तु सरकार इस के महत्त्व और ताक़त को भलीभाँति जानती है। इसलिए सागर का संपर्क केंद्रीय मंत्रियों और बुद्धिजीवियों से है। सागर स्वयं भी एक बुद्धिजीवी के शीर्ष पर आसीन है।

महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर बात करना, लिखना या आंदोलन चलाना उसके पसंदीदा विषय हैं। उसके अनुसार पुरुष के पास भाषा या क़लम की जो ताक़त है, वह किसी नारी के पास संभव ही नहीं हो सकती। इसलिए किसी औरत द्वारा उठाई गई आवाज़ दब सकती है, जबकि पुरुष चाहे तो दुनिया को हिला सकता है। सागर को दुनिया को हिलाने के सभी हथकंडे आते भी हैं।

सोफ़े पर बैठे हुए वह गहरी सोच में डूब गया। आज उसने अपने ऑफ़िस में दोपहर के बाद एक मीटिंग बुला रखी है। उसके पास अपने मंसूबों की योजना बनाने के लिए काफी समय है। उसकी पत्नी भूमि अपने ऑफ़िस में और बच्ची स्कूल में जा चुकी है। माँ घर में बनाए गए छोटे से बगीचे में घास-फूस निकालने में व्यस्त है। माली होने के बावजूद माँ का अधिकतर समय बगीचे में ही गुज़रता है। घर में इस समय पूर्ण शांति है। तभी उसकी निगाह आज के अख़बार पर पड़ी है- "पंजाब के एक गाँव में धरती के नीचे ज़हरीले पानी के कारण दो लोगों की मौत और कुछ लोग भयानक बीमारी के शिकार। ज़मीनों पर अधिक से अधिक फ़सल उगाने के लालच में ज़मींदार कितनी ही विषाक्त कीटनाशक खाद का प्रयोग कर रहे है, जिस कारण धरती बंजर होने लगी है। हम धरती के साथ अत्याचार नहीं बल्कि बलात्कार कर रहे हैं।"

एक पल के लिए सागर को उसका बापू हल चलाते हुए नज़र आने लगा और उसके पीछे-पीछे वह बीज फेंकते हुए। उसे याद आया, जब बापू धरती पर हल चलाते हुए हल के नीचे लगे लोहे के नुकीले फाल को धरती में पूरी ताक़त से धँसाता, तो उसके चेहरे पर अजीब से उत्तेजना भाव उभर आते थे। गहराई से फाल को धँसाते हुए बापू का चेहरा धूप या किसी भीतरी सेक से तमतमाने लगता था। सागर को बापू के इस रूप से डर लगता था।

सेवाराम से सागर बनने तक के सफर में उसे क्या-क्या पापड़ बेलने पड़े थे। एक छोटी ज़ात के खेत मज़दूर दयाराम की तीसरी संतान था सेवाराम। दयाराम ने सारी उम्र गाँव के ज़मींदारों की ज़मीनों में खेती-मज़दूरी करते और उनकी डाँट-फटकार सुनते हुए ही अपने परिवार का पालन किया था। परन्तु जिस दिन खेतों में गोबर उठाने गई उसकी पत्नी लाजवंती पर ज़मींदार ने हाथ डाल, उसकी इज़्ज़त को तार-तार कर डाला, तब दयाराम का सारा अस्तित्व क्रोध व घृणा बन कर उसके सीने में दब कर रह गया। उसी नफ़रत के कारण दयाराम ने बड़े लड़के को खेतों में ज़मींदारों की मज़दूरी करने की बजाय साइकिल ठीक करने वाले की दुकान पर काम सीखने के लिए लगा दिया और दूसरे को घरों-दुकानों में सफ़ेदी करने के काम पर। तीसरा सेवाराम क्योंकि पढ़ाई में अच्छा था, इसलिए जैसे-तैसे करके उसकी पढ़ाई को जारी रखा गया।

माँ के साथ ज़मींदार द्वारा की गई बेइज़्ज़ती का काँटा बापू के सीने में कहीं गहरे जा धँसा। मगर लाचारी के कारण वह सारा क्रोध भीतर ही दबा गया। इसे संयोग ही कहा जा सकता है कि एक दिन वह ज़मींदार अपने दोनों पुत्रों के साथ किसी क़त्ल केस में पकड़ा गया। मुकदमा लड़ने के लिए ज़मींदार के भाइयों ने उसकी ज़मीन बेचने पर लगा दी। इस बात का पता लगते ही दयाराम ने अपने और दोनों लड़कों द्वारा की गई कमाई से, कुछ क़र्ज़ उठा और एक-दो गहने बेच कर, उस ज़मीन का एक छोटा सा टुकड़ा ख़रीद लिया।

दयाराम ने ज़मीन का वही टुकड़ा खरीदा, जिस पर लाजवंती की इज़्ज़त तार-तार हुई थी। उस ज़मीन के हिस्से की मालकिन बनने पर लाजवंती दहाड़ें मार कर रोई। दयाराम उसे सांत्वना देते हुए भीतर से क्रोध और अपमान की आग में जलता रहा।

बापू ने उस ज़मीन को जोतते हुए जब हल के फाल को पाँव की पूरी ताक़त से धरती में धँसाया तब उसके चेहरे पर वैसे ही उत्तेजना और वहशी भाव उभर आए, जो ज़मींदार के चेहरे पर लाजवंती पर अपनी मर्दानगी का रौब जमाते हुए आए होंगे। मरते दम तक दयाराम के चेहरे पर नम्रता न आ पायी। हालाँकि उसने धरती से अपनी मर्ज़ी की फ़सलें हासिल कीं। वह अक्सर कहा करता, "काश्तकार अपने हल से धरती की क़िस्मत लिखता है और अपनी ताक़त से मनमर्ज़ी की फ़सल पैदा कर सकता है। बस उसे हल को अपने नियंत्रण में रखना और उसका सही इस्तेमाल करना आना चाहिए।" हल एक प्रकार से दयाराम के अहं का प्रतीक बन गया था।

सागर को याद है, उच्च शिक्षा की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने स्वयं को अपनी छोटी ज़ात से संबंध जोड़ने की बजाय किसी ज़मींदार घराने से ताल्लुक रखने वाले बुद्धिमान युवक के रूप में साबित करना शुरू कर दिया। अब वह अपने नाम सेवाराम की बजाय एस. आर. लिखने लगा। अपने नाम के साथ 'सागर' जोड़ कर उसने अपनी पहचान को पूरी तरह से बदल डाला। जिस प्रकार शिवजी ने अमरनाथ जाते हुए चंदनवाणी पहुँच कर अपने सिर से चंद्रमा उतार कर शेषनाग पहुँच कर, गले का श्राप उतार अगले सफ़र की ओर चल दिए थे, उसी प्रकार सागर पहले सेवाराम से एस.

आर. बना और फिर उस नाम को दरकिनारे कर, केवल 'सागर' द्वारा ज़िंदगी के अगले पड़ाव की ओर चल दिया।

मानवाधिकार और सामाजिक मुद्दों के लिए न्याय चाहने वाली एक गैर-सरकारी संस्था तक पहुँचते हुए सागर ने स्वयं को एक बुद्धिजीवी, चिंतक और समाज सुधारक के रूप में स्थापित कर लिया था। औरतों के शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलंद करना, उनके अधिकारों के लिए आंदोलन चलाने के कारण सागर देश की तमाम सोशलाइट और इलीट किस्म की औरतों का दोस्त बन गया था। उसके जादुई बोल, भाषा और बुद्धिमत्ता दूसरों को आकर्षित करने के लिए चुंबक का काम करते थे।

सागर ज्ञान का महासागर था भी। एक ओर जहाँ तमाम उच्च वर्ग की औरतों का साथ और इज़्ज़त प्राप्त थी, दूसरी ओर उसके फ़लसफ़े और चिंतन ने उसे प्रसिद्धि के शीर्ष पर पहुँचा दिया था। हालाँकि यह भी सच है कि सागर ज्ञान को एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करता था।

अचानक सागर के मन में ख़याल आया कि विश्व भर के साहित्यिक जगत् में शीर्ष पर पहुँचने के लिए प्रिंट मीडिया में कोई लेख लिखने की बजाय उसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर का सम्मेलन करना चाहिए। वैसे भी इन दिनों गोरी औरत का मसला मीडिया में छाया हुआ है। इसी को आधार बना कर उसने 'औरत के हक़ में' नामक विषय पर सेमीनार करने का मन बना लिया।

"वाह! क्या बात है!" सोचते हुए सागर हँस दिया। अपने अधिकारों की चर्चा करने पर इस विषय पर उनकी मन:स्थिति और इच्छाओं के नए-नए आयाम सामने आएँगे। आज की जागरूक औरत कम से कम अपनी डिज़ायर की बात कर पाएगी। उसने विद्रोही औरतें पसंद हैं। गायत्री शर्मा जैसी। गायत्री जब बहुत पी लेती तो अक्सर भावुकता में बहने लगती। उसने अपने बाप को माँ के साथ हमेशा ज़बरदस्ती करते हुए देखा। जीवन में आने वाले पुरुष ने भी जब उसके बाप की तरह ही व्यवहार करना चाहा तो वह चीख उठी, "आज मैं तुम्हारे साथ ज़बरदस्ती करके दिखाती हूँ।" उसका यह रूप देख कर वह भाग खड़ा हुआ। उसके जाने के बाद गायत्री एक स्वतंत्र और चैन भरा जीवन जी रही है। सागर ने हमेशा उसकी हिम्मत की दाद दी और अन्य औरतों को भी उससे प्रेरणा लेने की बात कही।

सोचते-सोचते सागर के दिमाग़ में कई विचार आपस में गड्ड-मड्ड होने लगे। स्वयं को एकाग्र कर वह इस सेमीनार की रूपरेखा के बारे में सोचने लगा। अचानक उसे शालिनी मेहता का ख़याल आया।

शालिनी शहर की सम्मानीय आर्ट क्रिटिक और मॉडल है। उसकी शख़्सियत में ग़ज़ब का आकर्षण और आवाज़ में जादू है। यदि वह सागर के साथ इस प्रोजेक्ट में जुड़ जाए, तो वे पिछड़े वर्ग की औरतों को एजुकेट करने, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने और अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रशिक्षित कर सकते हैं। यह सोचते हुए ही उसने शालिनी को फ़ोन लगा दिया।

"हाय शालू..."

"हैलो सागर..." एक नशीली आवाज़ सुनायी दी।

"कहाँ हो इस समय? लगता है, तुम्हारा ख़ुमार अभी भी बरक़रार है!"

"ख़ुमार तो वाकई बरक़रार है। रही बात कि मैं कहाँ हूँ...तो बता दूँ, मैं वहीं हूँ, जहाँ तुम मुझे छोड़ कर गए थे।"

"मुझे तुम से कुछ ज़रूरी बात करनी है...कहाँ मिलें..?" लापरवाही से सागर ने पूछा।

"वहीं...जहाँ मैं अभी भी हूँ...।" शालिनी हँस दी।

"तुम्हारा मतलब है, सफ़दर स्टूडियो?"

"एकदम सही...तुम कैसे भूल सकते हो सफ़दर स्टूडियो सागर!" शालिनी की हँसी ज़हरीली हो गयी।

सागर उसकी बातों से खीझ उठा। परन्तु अगले ही पल उसकी उत्सुकता उसे सफ़दर स्टूडियो की ओर खींच ले गयी।

शालिनी कभी सागर के सब से क़रीबी दोस्तों में से एक थी। दोनों धीरे-धीरे लिव-इन में रहने लगे। माडर्न आर्ट में डॉक्टरेट कर चुकी शालिनी को रंगों और लकीरों की ख़ासी समझ थी। यही समझ जब सागर की साहित्यिक समझ से जा टकराई तो दोनों के बीच एक अनोखा रिश्ता क़ायम हो गया। सात साल तक वे बिना शादी के पति-पत्नी समान रहे। शालिनी सागर के फ़लसफ़े और ज्ञान पर फिदा थी, जबकि सागर हमेशा चतुराई के साथ अपनी क़लम और नॉलेज को एक जाल की तरह इस्तेमाल कर उच्च वर्ग की औरतों को ट्रैप कर आनंदित होता था। शायद उसके मन में कोई ऐसी मानसिक गाँठ बन चुकी थी, जिस कारण वह भटकता रहता।

सागर का दोस्त सफ़दर देश का नामचीन चित्रकार था। एक दिन उसने बताया कि कला केंद्र में एक कला प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। वह उस प्रतियोगिता में हिस्सा लेकर स्वयं को आर्ट की दुनिया में स्थापित करना चाह रहा था, इसलिए इस प्रतियोगिता को लेकर ख़ासा उत्साहित लग रहा था। प्रतियोगिता टफ़ थी, उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह नया क्या करें? प्रत्येक आर्टिस्ट नए से नए प्रयोग और आइडिया द्वारा अपनी मौलिकता को स्थापित करने के प्रयास में थे।

"मैं एक ऐसी औरत की पेटिंग बनाना चाहता हूँ, जो एक ही समय में देवी का प्रतीक भी लगे और दूसरी ओर कामिनी का रूप धारण करके भी एक साध्वी प्रतीत हो। हमारे धर्म व संस्कृति में औरत को देवी माना गया है और भैरवी भी। प्रकृति भी और चंडी भी। मैं औरत का एक ऐसा रूप पेश करना चाहता हूँ, जिसमें देवी और भैरवी दोनों एक ही आकृति में से उभर कर, इस बात को प्रमाणित कर दे कि पूर्ण रूप से न कुछ दैवीय होता है और न ही कामुक।"

"इस विचार को पेटिंग में कैसे ढालना चाहते हो?" सागर को यह सब दिलचस्प लगा।

"मैं किसी ऐसी महिला कलाकार की तलाश में हूँ, जिसके व्यक्तित्व से यह सब स्पष्ट हों। उसके चेहरे में मासूमियत, चंचलता और दैवीय प्रभाव शामिल हो...और उसकी

न्यूड पेंटिंग बनायी जाए।''

''न्यूड पेंटिंग?'' सागर हैरान हो गया।

''हाँ, क्योंकि मैं यही बताना चाहता हूँ कि नग्नता अश्लील नहीं होती बल्कि नग्नता ही हमारी चेतना को एकाग्र कर, समाधिस्थ की ओर ले जाने का साधन भी होती है। इसलिए मुझे किसी ऐसी औरत की तलाश है, जिसमें प्राकृतिक सुंदरता हो।''

''देखो सफ़दर, किसी प्रोफ़ेशनल आर्टिस्ट में तुम्हें ऐसी सुंदरता मिल नहीं पाएगी। मैं तुम्हें ऐसी सुंदरता को ढूँढ़ कर दे सकता हूँ, जो तुम्हारी कल्पना को साकार कर सके।''

''कौन है?'' अब सफ़दर ने हैरानी से पूछा।

''शालिनी...मेरा मतलब मेरी जानेमन शालिनी।''

''शालिनी?'' सफदर यह नाम सुनकर पहले से अधिक अचंभित हो गया।

''हाँ! शालिनी मुझसे इतना प्यार करती है कि मेरी किसी बात को टाल नहीं सकती। फिर तुम तो मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो और यह तुम्हारी कला की परीक्षा भी है...।''

''परन्तु तुम अपनी मुहब्बत को क्यों..'' सफ़दर अपनी बात पूरी नहीं कर पाया।

''मेरी और शालिनी की मुहब्बत का गणित कुछ अलग है। मैं उसकी सुंदरता से मुहब्बत करता हूँ और वह मेरी क़लम से। यही हमारे रिश्ते की वास्तविक परिभाषा है।''

सफ़दर के जाने के बाद सागर ने शालिनी से बात की, तो वह कितनी ही देर तक सागर की ओर अविश्वास से ताकती रह गई। जब उसे यक़ीन हुआ कि ये बातें सागर ने पूरे होशो-हवास में कही है तो उसके भीतर काफी कुछ दरक गया।

शालिनी गाड़ी में बैठ कर सागर के साथ इसलिए सफ़दर के स्टूडियो में नहीं गयी थी कि वह किसी आर्टिस्ट की कला के माध्यम से अमर हो जाएगी बल्कि अपनी मुहब्बत को अपमानित महसूस करते हुए, वह अपना क्रोध सफ़दर के कैनवस पर उतार कर, उस अग्नि में दुनिया को भस्म करने के इरादे से गई थी।

000

आज जब सागर सफ़दर के स्टूडियो पहुँचा तो नौकर ने उसे बताया कि वह रंगशाला में काम कर रहा है। बेझिझक सा सागर उस कमरे की ओर बढ़ गया। उसने दरवाज़े को हल्के से छुआ तो वह एकदम से खुल गया। सामने का दृश्य देखकर सागर के पाँव वहीं थम गए।

इस समय शालिनी सोफे पर एक मादक मुद्रा में अधलेटी सी पड़ी थी। माथे पर चंदन का लम्बा सा तिलक, गले में अनगणित रुदाक्ष की मालाएँ और घने काले बालों से ढँका नग्न सीना। उन मालाओं से शालिनी के शरीर का ऊपरी हिस्सा पूरी तरह से ढँका हुआ था। सोफे के पीछे एक नकली पेड़ के घने पत्तों वाली टहनी उस पर झुकी थी, जिससे उसका बाकी का शरीर भी प्रतीकात्मक तौर पर ढँका हुआ लग रहा था। आँखों की मादकता, शरीर की चपलता परन्तु वेशभूषा उसे देवीय स्वरूप प्रदान कर रही थी।

''मुझे मालूम था, तुम यहीं मिलोगी?'' सागर की आवाज़ सुन कर शालिनी ने चौंक कर आँखें खोलकर, एक बार उसकी ओर देखा। मगर उसने कोई प्रतिक्रिया ज़ाहिर नहीं की। सफ़दर ने भी एक नज़र सागर की ओर देखा, और फिर अपने रंगों की जादूगरी में लीन हो गया।

''यहाँ तुम्हीं ने मुझे पहुँचाया था सागर। अपने ज्ञान के सूत्र से बाँध कर। मुझे यहाँ छोड़ कर जाते हुए तुमने कहा था, किसी भी ख़ूबसूरती को देखकर, उसे बनाने वाले परमात्मा का धन्यवाद करने का हक़ और भाग्य सभी को मिलना चाहिए। याद है न तुम्हें...?'' शालिनी ने उसी अवस्था में लेटे हुए कहा।

सागर को याद आया, उसने शालिनी को कितनी मुश्किल से इस काम के लिए मनाया था और कहा था, ''अगर तुम्हें भगवान् ने इतना सुंदर शरीर दिया है, तो इसे दुनिया से छिपा कर तुम उस रचयिता की रचना का अपमान कर रही हो शालू। तुम्हें अपनी सुंदरता की क़द्र करनी चाहिए। तुम इसे चित्र के द्वारा अमर हो जाने दो।''

वास्तव में उन दिनों सागर शालिनी से पीछा भी छुड़ाना चाहता था। वह जानता था, ऐसा तभी संभव हो सकता है, जब शालिनी किसी अन्य व्यक्ति के साथ भावनात्मक स्तर पर जुड़ जाए या किसी के प्रति आकर्षित हो जाए। वह ऐसे किसी जाल में उलझ जाए, जिससे छूटने के लिए उसे न कोई राह मिले और न ही चाह बाकी रहे।

सफ़दर ने रंगों की ट्रे को एक ओर रख दिया। शालिनी भी गाउन पहन कमरे से बाहर निकल गयी। हालाँकि वह जानती थी कि सागर उसी से मिलने के लिए यहाँ आया है परन्तु उसने सागर की बात सुनना गवारा नहीं किया।

''क्या हो रहा है कलाकार जी?'' सागर ने व्यंग्य करते हुए सफ़दर से पूछा।

''सब कुछ हो रहा है, जो तुम सोच सकते हो। तुम क़लमकार हो और मैं कलाकार। 'कार' तो हम दोनों ही करते हैं।'' सफ़दर ने सिगरेट सुलगा ली।

''और फिर....? पेंटिंग रंग-ब्रुश से ही करते हो या....?'' सागर की आवाज़ में कड़वाहट झलकने लगी। हालाँकि इसका कोई कारण नहीं था। परन्तु सफ़दर उसके शब्दों की भीतरी चुभन को समझ गया। उसने सिगरेट का लम्बा कश लेते हुए कहा, ''मैं उसी प्रकार पेंटिंग में रंग भरता हूँ, जिस प्रकार तुम क़लम से औरतों की नियति लिखते हो और तुम्हारा बापू हल से धरती की क़िस्मत लिखता था। हम तीनों एक ही समाज से ताल्लुक़ रखते हैं, सागर साहब और इस समाज का प्रतिनिधित्व पुरुष ही करता है। हल, क़लम, ब्रुश पुरुष मानसिकता अनुसार वही भूमिका निभाते हैं, जो उनके पौरुष अंग। पुरुष के पास ताक़त है और हिंसा उसका स्वभाव है। अंतर केवल इतना ही है कि सभ्य समाज में हिंसा हथियारों के साथ नहीं, विचारों के साथ की जाती है।''

सफ़दर की बातें सुनकर सागर बेचैन होने लगा। वह शालिनी से जो बात करने के लिए आया था, वह उसे सूझ ही नहीं रही थी। सफ़दर द्वारा उड़ाए जा रहे धुएँ में उलझा हुआ सागर वहाँ से बाहर निकल आया और सड़कों पर बेमतलब गाड़ी दौड़ाने लगा।

सागर हमेशा से ही दौड़ता रहा। पता नहीं किसी चीज़ से? कभी-कभी उसे लगता कि अपने बापू की आँखों से झलकती मौन चुनौतियों से? उसे लगता, बापू ने उसे पढ़ा-लिखा कर इसी कारण बड़ा आदमी बनाया कि वह अपनी छोटी ज़ात की हीन भावना से मुक्त होकर, ऊँची जात वाली औरतों से अपनी माँ के अपमान का बदला ले सके। बापू ने मुँह खोल कर कभी ऐसा नहीं कहा। बापू तो कब का मर चुका था, मगर सागर की चेतना में बापू न कभी मरा और न ही कभी दूर हुआ था। सागर को हर पल हल जोतते बापू चुनौती देता, उसका रास्ता रोके खड़ा प्रतीत होता।

वह सोचता, किसी देश, कौम या ज़ात-धर्म को नीचा दिखाना हो तो पुरुष अपने पौरुष द्वारा वहाँ की औरत के माध्यम से अपना बदला पूरा करता है। औरतों को हमेशा से एक टैराटरी की तरह ही इस्तेमाल किया जाता रहा है। यही सब बताने के लिए वह एक हंगामाखेज़ कांफ्रेस कर, समाज को औरतों के प्रति अपने कंसर्न बताने का मौक़ा हाथ से गवाने देना नहीं चाहता था।

उसने सोच लिया, वह इस सिलसिले में केंद्रीय मंत्री से मिलकर ठोस क़दम उठाने की पहल करेगा। अपनी चालाकी पर वह स्वयं ही मुग्ध हो जाता। वह सोचता, "लोगों को कितना भ्रम है कि मैं एक समाज सुधारक, चिंतक और औरतों का मसीहा हूँ। जबकि वास्तविकता यह है कि मेरे भीतर मेरी माँ के साथ की गई ज़बरदस्ती व अपमान का, उस समय मेरी माँ की वेदना का प्रभाव है, जो मेरे बालपन पर पड़ा। फिर बापू का उन कथित उच्च लोगों के बलात्कारी समाज के प्रति नफ़रत और क्रोध ने मेरे अस्तित्व का निर्माण किया।"

इसी कॉम्प्लैक्स ने मुझे सेवाराम से एस. आर. और फिर एस. आर. से डॉ. सागर तक पहुँचाया। यह ज्ञान, यह चिंतन, फ़लसफ़ा... ये सब शब्दों की कलाकारी है, जो मेरे लिए इस इलीट समाज पर राज करने का केवल एक माध्यम है।"

बेमतलब सड़कों पर गाड़ी घुमाते हुए उसका दिमाग़ सोच के घोड़े दौड़ाता रहा कि इस एजेंडे में किस मुख्य मसले को शामिल कर, वह इसे और भी ज्वलंत बना सके ताकि उसकी प्रसिद्धि को चार चाँद लग जाएँ। ऐसे किसी मित्र से मशवरा करना चाहिए। वैसे तो उसे हर समय यही डर लगा रहता कि लोग उसकी बातों में से विषय चुराकर, उन्हें अपने ढंग से कहने लगते हैं। परन्तु यदि सरकार को इस प्रोजेक्ट में सम्मिलित करना है, तो कुछेक बड़े नामों को अपने साथ जोड़ना ही पड़ेगा। कोई भी सम्मेलन 'वन-मैन-शो' नहीं हो सकता। यही सब सोचते हुए उसने गाड़ी राजीव सभरवाल के ऑफ़िस के सामने जा लगायी।

"डॉ. राजीव सभरवाल चीफ एडीटर..." देश के एक नामवर अख़बार के बड़े से चमकते ऑफ़िस के आगे लिखे बोर्ड को पढ़ते हुए सागर हँस दिया। उसे याद आया, कालेज के यूनियन चुनावों और यूनिवर्सिटी की राजनीति में ये दोनों ऐसे उलझे कि अपनी शिक्षा चार वर्ष में पूर्ण नहीं कर सकते थे। इसलिए किसी के द्वारा बतायी गई गुमनाम सी प्राइवेट यूनिवर्सिटी को पैसे देकर, उन दोनों ने अपने लिए डॉक्टरेट की डिग्री ख़रीद ली। उसके बाद दोनों बड़े गर्व से अपने नाम से पहले डॉक्टर लगाकर, स्वयं को स्कॉलर समझने लगे।

कमरे में घुसते ही राजीव ने सागर का स्वागत किया।

"क्या हो रहा है अजकल? बहुत व्यस्त लग रहे है?" उम्र के इस पड़ाव पर पहुँच कर, दोनों औपचारिकवश एक-दूसरे को इज़्ज़त से बुलाने लगे थे। अब दोस्तों वाला तू-तुम कहीं पीछे छूट गया था।

"वही...आजकल का सबसे गंभीर और चिंता का विषय।" राजीव ने लैपटॉप पर नज़रें गड़ाए ही कहा।

"वही अँगिया वाला?" कह कर सागर हँस दिया।

"अँगिया वाला? मतलब?" राजीव ने हैरानी से पूछा।

"अरे वही, अंग्रेज़ औरत का भरी अदालत में अपने पति के मुँह पर अँगिया फेंक कर बाहर निकल जाने वाला। दरअसल मैं आपसे इसी संदर्भ में बात करने आया था... हमें भी इस के पक्ष में अपनी भूमिका निभानी चाहिए।" एक ही साँस में सागर की कही बात सुन कर राजीव ने अपना लैपटॉप बंद कर दिया और गंभीरता से सागर की ओर देखा।

"हैरानी हो रही है सागर, इतने वर्षों बाद भी तुम्हारी सोच औरत और उसकी अँगिया में ही उलझी हुई है? तुम्हें और कुछ दिखाई नहीं देता? दुनिया में इतने मुद्दे हैं, कोई भी तुम्हारी आत्मा को छू कर नहीं गुज़रता। मैं जब भी तुम्हारा कोई लेख पढ़ता हूँ या भाषण सुनता हूँ, तुम्हारी सोच बस औरत के जिस्म के कुछ हिस्सों के आस-पास ही घूमती दिखाई देती है... और तुम ख़ुद को चिंतक और बुद्धिजीवी समझते हो? तुम्हारी जैसी सोच वाले लोग ही तुम्हारी वाहवाही कर, तुम्हें और भी बढ़ाते हैं। मेरे दोस्त, दुनिया में बहुत सारे गंभीर मसले हैं, जिन पर चर्चा करना हमारी सब की ज़िम्मेदारी है।"

राजीव की बातें सुन कर, सागर के कानों में मानों विस्फोट हो गया। उसने स्वयं को शांत दिखाते हुए उससे पूछा, "ऐसे कौन से मसले हैं, जिन पर तुम चिंतित होकर सोच-विचार कर रहे हो?"

सागर की बात सुनकर, राजीव ने लैपटॉप उसकी ओर घुमाते हुए कहा, "यह देखो...कश्मीरी औरतें व मर्द कैसे अपनी छातियाँ पीट कर रो रहे हैं। दो कश्मीरी औरतों को क़ब्र के भीतर लिटाया जा रहा है।"

"ओह!" सागर ने कहा।

राजीव आगे कहने लगा, "तुम अँगिया के मोहजाल से बाहर निकल कर देखो, यह कश्मीर की नियति है। वह धरती दरअसल ऋषि-मुनियों, देवताओं की तपोभूमि रही। तभी प्रकृति ने इसे दोनों ओर से पहाड़ों से ढँक कर, सुरक्षित किया और दुनिया की पहुँच से दूर रखा। परन्तु दानवों ने आतंकवादियों का रूप धारण कर, उसी धरती के मूल बाशिंदों का जीना हराम कर दिया और आदम बू-आदम बू करते वहाँ घुस, वहाँ की औरतों पर अत्याचार करने लगे। यह जिन दो औरतों की लाशें तुम ने क़ब्र में उतरती देखी हैं, ये दानवों के बलात्कार का शिकार होकर मर गईं।

कश्मीर की धरती को हासिल करने के लिए, वहाँ की औरत के साथ बलात्कार, दहशत की एक नई परिभाषा है। औरत सबसे ज़्यादा दहशतज़दा होती है, मर्द की हिंसा से...। वह बेवक़्त ही मौत का शिकार हो, चुपचाप क़ब्र में उतर जाती है और फिर उस की मौत पर एक नई सियासत चलने लगती है।"

राजीव जिस गंभीरता से कश्मीर पर बात कर रहा था, उसे देख, सागर को लगा, यहाँ अपनी बात करने का कोई अर्थ ही नहीं।

"मैं अपने तौर पर ही इस कार्यक्रम को कर लूँगा। मुझे किसी दूसरे की ज़रूरत नहीं।" यह सोचते हुए सागर, राजीव के पास से उठ कर चला आया।

रास्ते में एक बार में बैठ कर उसने तीन-चार पैग लगा लिए। आज सारे दिन की किच-किच ने उसे मानसिक तौर पर थका दिया था। उसे रिलीफ़ चाहिए था। शांति....! सकून ...! सकून के बारे में सोचते हुए अपने घर व पत्नी की याद आ गई। पैग वहीं छोड़ वह तुरन्त घर की ओर चल दिया।

000

भूमि अपने बिस्तर पर सिमटी हुई टीवी पर तबस्सुम रियाज़ के चल रहे भाषण को सुन रही है। तबस्सुम रियाज़ महिला व बच्चों की कल्याण केंद्रीय मंत्री थी। वह औरतों से अपने अधिकारों की सुरक्षा और 'सेल्फ़ डिगनिटी' की क़द्र करने के बारे में बात कर रही थी। तभी भूमि को सागर की गाड़ी का हार्न सुनायी दिया। नौकर ने दरवाज़ा खोला।

सागर थका-हारा-सा आकर बैड पर गिर गया। तभी उसके कानों में तबस्सुम रियाज़ की बात सुनायी दी,

"पश्चिम की औरत सवाल पूछ रही है कि क्या औरत अपने जिस्म की स्वयं मालिक है? या क्या वह अपनी मर्ज़ी से जिस्म का इस्तेमाल कर सकती है, हमें इन बातों के बारे में ध्यान से सोचना चाहिए और अपने आप में आत्म-विश्वास पैदा करना चाहिए कि हम अपने शरीर का अपमान नहीं होने देंगे और न ही भावनात्मक तौर पर कमज़ोर होकर ग़लत तौर-तरीक़ों सामने हार मान जाए।"

"आज बहुत थक गया हूँ। दौड़ते हुए तुम्हारे पास आया हूँ, तुम मेरी थकावट दूर कर दोगी...। व्हिस्की का आधा पैग भी वहीं टेबल पर छोड़ आया।" कहते हुए सागर ने भूमि को अपनी बाँहों में भरते हुए नशे में कहा।

"सागर, आज सुबह से मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है। मैं ऑफ़िस से भी इसी कारण जल्दी आ गई थी। तब से ही बिस्तर पर लेटी हुई हूँ। मुझसे चला भी नहीं जा रहा।" भूमि ने नाभि के नीचे इशारा करते हुए सागर से कहा।

"क्यों हो रहा है आज तुम्हें यह दर्द? तुम्हें मालूम नहीं, मैं कितने तनाव में हूँ।" वह खीझ उठा।

"मेरी 'डेट' है। एक-दो दिन पहले मुझे तीव्र दर्द होने लगता है। तुम्हें तो मालूम ही है।" उसने भर्राए स्वर में कहा।

"सभी औरतों को 'डेट' आती है, मगर किसी को भी तुम्हारे जैसा दर्द नहीं होता...?"

"आप को कितनी औरतों का अनुभव है?" भूमि ने ग़ुस्से से पूछा।

"हम दोस्त आपस में अपनी बीवियों के बारे में ही बातें करते हैं...पता लग जाता है।"

"आपके कितने दोस्तों की बीवियों को गर्भ में लड़की होने के कारण चार साल में दो बार अबॉर्शन करवाना पड़ा। वह भी पति द्वारा मजबूर करने पर...?" भूमि की आवाज़ तीखी हो गई।

"तो क्या यहाँ लड़कियों का आश्रम खोलना है मुझे अपने घर में? पहले ही एक बेटी है तो सही। उसे लाड़-प्यार से पाला है। उसके बाद तो तुम्हें पुत्र को ही जन्म देना चाहिए... मगर बार-बार लड़की ही...। तो मैं क्या करूँ...। सारी उम्र उन लड़कियों का दहेज इकट्ठा करने में ही गवाँ दूँ। अबॉर्शन....पेट दर्द...माय..फुट...!"

इतना कह सागर ने करवट ले ली। फिर वह एकदम से वहशीपन से भर उठा। उसने भूमि को कस कर जकड़ लिया और उससे ज़बरदस्ती करने लगा। भूमि कराहने लगी। उसने अपनी चीखें अंदर ही दबा लीं, कहीं उसकी बेटी सोते से जाग न जाए। भूमि के बार-बार मना करने के बावजूद सागर पर कोई भूत सवार था।

कुछ ही देर बाद सागर दूसरी ओर मुँह कर खुर्राटे भरने लगा। भूमि की नज़र सागर के हिलते पेट की ओर और कभी बिस्तर की चादर पर पड़े लाल धब्बों पर चिपक गई। उसे एकदम उल्टी जैसा महसूस हुआ और वह पेट पकड़ कर वॉशरूम में घुस गई।

टीवी पर तब्बसुम रियाज़ का भाषण अभी भी जारी था- "औरत पश्चिम की हो या हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की, सभी की स्थिति एक समान है। आधुनिकता ने केवल पहनावा चेंज किया है परन्तु उनकी नियति नहीं..." भूमि पेट पकड़ कर कराहते हुए, लहु-लुहान वॉशरूम के फर्श पर गिर कर बेसुध हो गई थी।

सुबह सागर की नींद खुलने पर उसे पानी की तलब हुई। अपनी आदत के मुताबिक उसने पानी के लिए भूमि को झिंझोड़ना चाहा। मगर बिस्तर ख़ाली था। उसने सारे कमरे में नज़र दौड़ाई, मगर भूमि कहीं भी नज़र नहीं आई। सागर ने सिर को झटका दिया और उसके दिमाग़ में कई विचार एक साथ घूम रहे थे। टीवी अभी भी चल रहा था। फिर भूमि कहाँ है...?

सागर तुरन्त उठ कर वॉशरूम की ओर गया। भूमि की नाइटी लाल धब्बों से भरी वहीं फर्श पर पड़ी थी। कमरे का दरवाज़ा भी खुला था। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बाहर उजास फैलने लगा था। उसने बाहर देखा, मेन गेट खुला था। तो क्या...। इससे आगे सागर सोच न पाया। उसका सिर फटने लगा। नशे के कारण और भूमि के न होने से उसका सिर चकराने लगा।

आख़िर कहाँ चली गई भूमि रात के अँधेरे में? उसकी नज़र दूर आसमान में उदय होते नए सूरज पर पड़ी। उसी दिशा में आम के पेड़ के साथ टँगा सुनहरी चिड़िया का पिंजरा ख़ाली था। सागर की नज़र पिंजरे से बाहर के गेट से होते हुए घर के दरवाज़े पर घूमने लगी। उसे सब कुछ घूमते हुए, मुँह चिढ़ाते नज़र आया। टीवी पर फिर किसी नई बहस का आग़ाज़ हो चुका था। अस्थिर होते हुए वह सब कुछ समझने का प्रयास कर रहा था। उसका नशा अब पूरी तरह से उतर चुका था।

000

कोंपल के कंधों पर चमकती धूप

हंसा दीप

अलसुबह की ताज़ी बयार श्वास-दर-श्वास गुणित होती रही। ढलती शाम में उन सुवासित पलों को शब्दों में क़ैद करना मुझे रोमांचित कर गया। एक हल्की-सी दस्तक भर से स्मृतियों के पिटारे खुलकर कई अविश्वसनीय पलों को भी सामने ले आए। एक के बाद एक। यही तक़रीबन 57-58 साल पहले का मेरा अपना गाँव। खालिस गाँव। टूटी-फूटी सड़कें, नीम के घने पेड़ और भीलों की बस्तियाँ। झोंपड़ियाँ भी, हवेलियाँ भी। कंगाल भी मालामाल भी। नंग-धड़ंग आदिवासी बच्चे और सेठों-साहूकारों के साफ-सुथरे बच्चों से लिपटती धूल-धूसरित हवाएँ।

मैं और छोटू, पूरे गाँव में भटक आते। पव्वा, गुल्ली-डंडा, लँगड़ी-लँगड़ी, खेलना और गाँव भर में छुपा-छुपी खेल के लिए दौड़ लगाना। न बीते कल की चिंता, न आने वाले कल की। बस आज खाया वही मीठा।

लौकिक और अलौकिक दुनिया के बीच झूलता बचपन। नन्हीं बच्ची की आँखों से देखे ऐसे कई लम्हे जिनमें विस्मय, कौतूहल, भय और विश्वास एक साथ हाथ थामे रहते। लौकिक दुनिया में जीते-जागते इंसान थे। भूख, ग़रीबी और शोषण से त्रस्त, अपने अस्तित्व से लड़ते आदिवासी। भीलों और साहूकारों की ऐसी दुनिया जहाँ बिल्ली और चूहे का खेल अपनी भूमिका बदलता रहता। दिन भर जिनसे मज़दूरी करवाकर साहूकार अपनी तिजोरी भरते, रात में वे ही उनका माल-ताल लूट कर ले जाते।

इस हाथ ले, उस हाथ दे। दिन में सेठों की सेवा में भुट्टे हों या हरे चने के गट्ठर, हर सीज़न की पैदावार भर-भर कर दे जाते। सेठों के परिवार खा-पीकर लम्बी डकार ज़रूर लेते लेकिन रात में चैन की नींद न सो पाते। अगर मानसून ने साथ दिया और फ़सल ठीक-ठाक हुई तो चोरी-चकारी कम होती लेकिन जिस वर्ष फ़सलें चौपट होतीं, भीलों को खाने के लाले पड़ जाते। तब पेट भरने का एकमात्र सहारा सेठों को लूटना होता। लूटपाट, ख़ौफ़ और दहशत से भरा गाँव। जीजी (माँ) के शब्द होते- "ई भीलड़ा रा डर से मरेला बी आँख्या खोली दे।" (इन भीलों के भय से मुर्दे भी जाग जाएँ।)

न पुलिस का भय, न क़ानून का। पुलिस थी कहाँ! बाबा आदम के ज़माने के दो कमरों में पुलिस थाना था। एक ओर छोटे-छोटे सेल थे क़ैदियों के लिए। और शेष दो में एक मेज़, कुछ फाइलें और सोने का एक बिस्तर। मरियल से एक-दो पुलिसवाले ड्यूटी बजाते। भीलों के सामने कहीं नहीं लगते। बगैर हील-हुज्जत के माल मिल जाता तो आदिवासी होने के बावजूद भील मार-काट कम करते। न मिलने पर किसी को भी मार-काट कर लूट लेना उनके बाएँ हाथ का खेल था। एकजुट होकर साहूकारों के ब्याज से मुक्त होने का यही आसान तरीका था उनके लिए।

गाँव में हमारा घर हवेली-सा था। सबसे बड़ा। यानी सबसे ज़्यादा पैसा। यानी सबसे ज़्यादा लूटपाट का डर। नीचे हमारी अनाज की बहुत बड़ी दुकान थी और अनाज के बोरे खाली करने-भरने के लिए कई आदिवासी हम्माल आते थे। हष्ट-पुष्ट, ऊँची कद-काठी के भील, पीठ पर बोरियाँ लादे मुझ जैसी बित्ती भर की बच्ची को भी छोटी सेठानी कहते। अपना लोटा लाकर मुझसे पानी ज़रूर माँगते। मैं दौड़-दौड़ कर जाती और मटके का ठंडा पानी लाकर उनका लोटा भर देती। पानी पीकर गले में लिपटे गंदे गमछे से पसीना पोंछकर फिर से काम पर लग जाते। जीजी रोटियाँ बनाकर उन्हें खाने देतीं जिन्हें वे बड़े चाव से प्याज के टुकड़े के साथ खा लेते। सबके लिए दोपहर की चाय भी बनती। कम दूध और ज़्यादा पानी वाली चाय। शक्कर डबल। जीजी कहतीं- "बापड़ा खून-पसीनो एक करे। मीठी चा पीवेगा तो घणो काम करेगा।" (बेचारे इतना

डॉ. हंसा दीप
22 फैरल एवेन्यू, नार्थ यॉर्क, टोरंटो
ON – M2R1C8, कैनेडा
मोबाइल- 647 213 1817
ईमेल- hansadeep8@gmail.com

खून-पसीना बहाते हैं। मीठी चाय पीकर ख़ूब काम करेंगे।)

पाँच भाई-बहनों के परिवार में हम दोनों छोटे भाई-बहन बहुत लाड़ले थे। मेरे बाद कोई बेटी नहीं और छोटू के बाद कोई बेटा नहीं। पूर्णविराम का महत्त्व हम दोनों बच्चों के व्यक्तित्व में झलकता था। हम ज़्यादातर जीजी-दासाब (मम्मी-पापा) के आसपास ही मँडराते रहते। मानों उन दोनों पर सिर्फ हमारा अधिकार हो। अपनी हवेली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ते-भागते हम, हर पल जी भरकर जीते। आम के मौसम में घर में पाल डलती (कच्चे आमों के ढेर को सूखे चारे में रखकर पकाना)। रोज़ बाल्टी भर पानी लेकर बैठना और चुन-चुन कर पके आम बाल्टी में डालते जाना। ललचायी आँखें पलक झपकते ही रस भरे आम को गुठली में बदलते देखतीं। घर के अहाते में मूँगफली के बड़े ढेर से चुन-चुनकर मूँगफली खाना और छिलकों को बाकायदा ढेर से बाहर फेंकना।

मालवी-मारवाड़ी-भीली जैसी बोलियों के साथ धाराप्रवाह गुजराती और हिन्दी भाषा हम सभी भाई-बहनों ने जैसे घुट्टी में पी ली थी। कभी भी, किसी से भी अलग-अलग बोलियाँ बोलने-समझने में सकुचाते नहीं। भीलों से भीली में ख़ूब बतियाते। भील-भीलनी मालवी लहजे में भीलड़ा-भीलड़ी हो जाते। मालवी की मिठास में किसी के भी नाम के आगे ड़ा-ड़ी-ड़ो लगाकर बोलना अपनेपन का अहसास होना। गधे या बुद्धू लड़के को गदेड़ो, और लड़की बेवकूफ हो तो गदेड़ी। यहाँ तक कि बरतन कपड़े करती भीलनी दीतू को भी दीतूड़ी कहते। कभी नाराज़गी जाहिर करनी होती तो दीतूड़ी को दीतूट्टी कहते। आज भी हम सब भाई-बहन आपस में मालवी में बात करते हुए घर में जितने छोटे हैं सबके नाम के पीछे ड़ा-ड़ी-ड़ो लगाते हैं। टोनूड़ा, मीनूड़ी, रौनूड़ो...।

उस साल पानी नहीं गिरा था। धरती अनगिनत टुकड़ों में फट-सी गई थी। फसलें चौपट थीं। धान उगा नहीं। सेठों का धंधा ठप्प। धंधा नहीं तो भीलों के लिए मज़दूरी भी नहीं। बस यही था खुली लूटपाट का समय। अब डाके पड़ने लगे। चोरी-चकारी तो आम बात थी ही लेकिन जब किसी अमीर के यहाँ चोरों की भीड़ आकर घर ख़ाली कर जाए, मालमत्ते के साथ घर का सारा सामान यहाँ तक कि बर्तन-भाँडे भी ले जाए, वह डाका होता। भीलों के समूह एकजुट होकर पूरी फोर्स के साथ ढोल-ढमाके बजाते आते। सारा कैश, ज़ेवर और घर से जो उठा-उठा कर ले जा सकते, ले जाते। तब तक बैंक व्यवस्था पर लोगों का विश्वास जमा नहीं था। साहूकार अपना सारा कैश, क़ीमती चीज़ें घर में ही रखता था।

दो दिन पहले पास के गाँव कल्याणपुरा में अरबपति मामाजी के घर डाका पड़ा था। मामाजी के ख़ास आसामी (ग्राहक) उन्हें लूट गए थे। करोड़ों का माल नगदी-ज़ेवरात सब चला गया था। वहाँ से आई ख़बरों से हम सब डरे हुए थे। घर में दासाब के होते राहत मिलती। ख़बरों का ख़ौफ़ कभी जीजी के पल्लू को पकड़कर कम होता तो कभी दासाब का कुरता पकड़कर। डरे-सहमे हम दोनों उनके आसपास ही सोते। नींद लगते न लगते, ढोल बजने शुरू हो जाते।

दासाब खिड़की की ओट से बाहर से आती ढोल की आवाज़ों का जायज़ा लेकर कहते- "बच्चों, डरो मत। चोर अपने घर की तरफ़ नहीं आ रहे। वे तो दूसरी ओर जा रहे हैं।"

लेकिन ये हमें समझाने के लिए होता क्योंकि वे स्वयं खड़े होकर आवाज़ दूर जाने तक सोते नहीं। घुप्प अँधेरे में कुछ दिखाई न देता होगा क्योंकि उस समय हमारे गाँव में बिजली आई ही थी। जो आती कम, जाती ज़्यादा थी। चोरी-डाके की तमाम आशंकाओं के बावजूद कभी हमारे घर डाका नहीं पड़ा। हाँ, हर दो-तीन माह में हमारी भैंस चोरी हो जाती थी। दासाब की ज़िद थी कि घर में भैंस हो और सभी बच्चे घर का दूध पीएँ। सो हमारी हवेली के बंद पिछवाड़े में एक भैंस बँधी रहती। उन्हें ये भी पता होता था कि अपनी भैंस दो-तीन महीने ही रहेगी, बाद में चोर ले जाएँगे। और ऐसा ही होता। हर दो-तीन माह के भीतर भैंस चोरी हो जाती।

दासाब कहा करते थे- "चोट्टे घर के अंदर नहीं आ सकते। पिछवाड़े से भले ही भैंस ले जाएँ।

प्रश्नों की लम्बी कतार मेरे सामने होती। मैं यह न समझ पाती कि चोर कैसे घर में नहीं घुस सकते! पुलिस तो खड़ी नहीं है बाहर। और फिर पुलिस तो कभी भैंस को भी वापस नहीं ला पाई, फिर चोरों का क्या बिगाड़ लेगी! रात में ड्यूटी पर खर्राटे भरते पुलिस वालों को इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था कि ढोल-नगाड़े बजाकर भील चोरी करने आ रहे हैं।

मैं सोचती, शायद चोर दासाब से डरते होंगे। उनकी आवाज़ इतनी बुलंद थी कि एक ज़ोर की आवाज़ या उनकी खाँसी से सब सतर्क हो जाते। बड़े भाई-बहन भी डर जाते थे। मैं नहीं डरती थी क्योंकि मुझे कई विशेषाधिकार प्राप्त थे। मसलन, उनकी कई छोटी-छोटी ज़रूरतों का ध्यान रखना। वे नीचे दुकान में खाना खाते थे जबकि किचन ऊपर था। किचन क्या था, बहुत बड़ा हाल था। उस हवेली में कोई छोटा कमरा था ही नहीं, कई बड़े-बड़े हाल थे। मैं हर बार दौड़कर ऊपर जाती और गरम रोटी लेकर आती। धोबी के घर से उनके झकाझक सफ़ेद कुरते-पाजामे बगैर सिलवटों के उन तक पहुँचाने का काम भी मेरा ही था।

जब वे बाज़ार कुछ लेने जाते, मुझे अपनी उँगली पकड़कर साथ ले जाते। धुली हुई घेरदार फ्राक पहने मेरी ठसक ऐसी होती जैसे दासाब की नहीं, आसमान में चमकते सूरज की उँगली पकड़कर चल रही होऊँ। कंधों पर आकर धूप ठहर जाती। बिखरती धूप के साए खिलखिलाने लगते। वह अलमस्त अनुभूति कभी मद्धम नहीं हुई। सिलसिला आज भी जारी है जब मैं अपने नाती-नातिन की उँगली पकड़कर चलती हूँ। टोरंटो की बर्फ के कणों से धूप परावर्तित होकर समूची ताक़त से मुस्कराती है। रोल बदलने के बावजूद चाल की ठसक क़ायम है।

भैंस के चोरी हो जाने के बाद हम दोनों छोटे बच्चों को पंडित के पास भेजा जाता। यह तफ़्तीश निकालने के लिए कि भैंस किस दिशा

में गई। पंडित, गिरधावर जी अपना पोथा खोलते, हमारी जेब से निकले पैसे पोथे के पन्नों पर विराजमान होते ही उनकी गणना शुरू हो जाती। ग्रहों की गणना करते पंडित जी बताते कि भैंस, पूरब दिशा में गई है। फिर कहते, पहले पश्चिम में गई थी पर अब वापस पूरब दिशा की ओर मुड़ गई है। बिल्कुल वैसे ही जैसे आज हमारे सीसीटीवी कैमरे हमें दिशा-निर्देश देते हैं।

दासाब पुलिस थाने रिपोर्ट लिखाने ज़रूर जाते और कह आते कि पूरब दिशा में ढूँढ़ने जाओ। पुलिस वाले आश्वासन के साथ रिपोर्ट लिख लेते। मैं कई दिनों तक टकटकी लगाए देखती रहती कि हमारी भैंस लौट आएगी। भैंस लौटकर कभी वापस नहीं आती, मगर दासाब फिर से नई भैंस ख़रीद लेते। अच्छी सेहत वाली। ख़ूब दूध देती। ज़्यादातर दही जमाकर मक्खन निकाल लेते। घी बन जाता। बड़े मटकों में रस्सी से बँधी लम्बी मथनी पर हम सब हाथ चलाते। घूम-घूमकर, मटक-मटक कर दही मथना एक तरह से खेल था। मथनी ख़ूब खिंचने के बाद भी मक्खन की झलक तक नहीं दिखती क्योंकि ताक़त तो हममें थी नहीं। फिर दीतूड़ी हाथ आजमाती, उसके ताक़तवर चार हाथ पड़ते न पड़ते मक्खन के थक्के ऊपर तैरने लग जाते। बड़ी-सी कढ़ाही में मक्खन का हर एक दूधिया कण इकट्ठा होता जाता। कढ़ाही आँच पर चढ़ते ही पूरी हवेली शुद्ध घी की महक से सराबोर हो जाती।

मथनी बाहर भी न आ पाती और तत्काल गाँव में ख़बर फैल जाती- "आज सेठ के घर छाछ बनी है।" मुफ्त में छाछ लेने वालों की भीड़ लग जाती हमारे घर। छाछ वितरण का काम मैं पूरी ज़िम्मेदारी से निभाती। छोटे से बर्तन से निकाल-निकाल कर लोगों के पतीले छाछ से लबालब भर देती। मेरे लिए यह एक ज़िम्मेदारी से भरे काम के साथ रोचक समय होता था। बाँटने की ख़ुशी मेरे चेहरे से टपकती।

बीच-बीच में जीजी आकर सावधान करतीं कि बाक़ी लोगों को ख़ाली न जाना पड़े। मैं छाछ देने में कंजूसी करने लगती तो बर्तन पकड़े सामने वाले की आवाज़ आती- "ए, थोड़ी और डाल दे न बेटा। आज खाटो (खट्टी कढ़ी) बनेगो।" लोगों के बर्तनों को ताज़ी, सफेद-झक छाछ से भर देना और उनकी आँखों से बरसते प्यार को स्वीकारना, मुझे बहुत भाता।

चोरी- डाके- लूटपाट के साथ हमारी हवेली में हॉरर दृश्यों की भरमार थी। अलौकिक दुनिया के कई रूप देखे मैंने। हमारा घर गाँव वालों के लिए भुतहा हवेली के रूप में भी जाना जाता था। उन घटनाओं का बयान करना, अंधविश्वास को बढ़ाना है। शिक्षित होकर भी उन घटनाओं को खँगालना विचलित करता है जिनका तार्किक उत्तर आज तक न मिला और शायद मिलेगा भी नहीं।

अपनी आँखों से गुज़रे वे पल विज्ञान के विरुद्ध जाकर कभी भयभीत करते, कभी अलौकिक शक्तियों से परिचय कराते तो कभी आत्मविश्वास को बढ़ाते। आज तकनीकी युग में उन क्षणों की सच्चाई पर विश्वास करना सहज और स्वाभाविक बिल्कुल नहीं लगता, लेकिन वे पल अभी भी पीछा करते हैं। कई बार स्वयं को पिछड़ा हुआ कहकर इनके आग़ोश से मुक्त होने की कोशिश भी की लेकिन जो अपनी आँखों से देखा, जाना और समझा, उसे आज तक नकार नहीं पाई। बगैर किसी लाग-लपेट के वे क्षण मेरे सामने से ऐसे गुज़रने लगते जैसे आज की ही बात हो। आँखों से देखा सच और उसमें जीने का अनुभव था, किसी तर्क की कोई गुंजाइश नहीं थी।

कई राज़ और उनमें छुपी जानी-अनजानी शक्तियों की चर्चा गाँव वाले करते। हवेली में रात में लोग बरतनों के गिरने की आवाज़ सुनते। रस्ते चलता आदमी भूले-से रात के अँधेरे में हवेली की किसी दीवार के पास पेशाब के लिए खड़ा हो जाता तो कोई उनके पीछे दौड़ता था। नाग-सर्प देवता के लिए तो हमारी हवेली जैसे स्वर्ग थी। रात के अँधेरे में हवेली के आसपास से गुज़रने वालों को जगह-जगह नाग दिखते थे। मोटे-काले-लम्बे नाग। छनन-छनन आवाज़ें सुनाई देती थीं। भड़-भड़ कुछ गिरने की आवाज़ें रोज़ की बातें थीं। हम गहरी नींद सो रहे होते और बाहर से गुज़रने वाले ये सब देखते-सुनते हवेली से दूर भागने की कोशिश करते।

हमारे कानों में पड़ती ये बातें आम थीं। हम बच्चे आश्वस्त थे कि हमारे घर में ऐसा कुछ नहीं होता। होता भी हो तो 'वे' बाहर वालों को ही डराते हैं। हमें कभी कुछ नहीं करते। जीजी-दासाब ने हम दोनों छोटे बच्चों को ख़ूब अच्छी तरह समझा कर रखा था कि कुछ भी डरने जैसा दिखे, तो हाथ जोड़ कर खड़े हो जाना। डरना मत। बस इतना कहना कि हम आपके घर वाले हैं।

हवेली के कई हिस्सों से मुझे केंचुलियाँ मिलती थीं क्योंकि दिन भर हवेली में सबसे ज़्यादा ऊपर-नीचे दौड़ने वाली मैं ही थी। नज़र भी बहुत तेज़ थी। मैं सँभालकर ले जाती जीजी के पास। जीजी कहतीं- "चोला बदले नाग देवता। पूजा रा पाट पे रक्खी दो।"

एक बार दूध के तपेले के पीछे मुझे नाग जैसी बड़ी-सी परछाईं दिखी। तुरंत दौड़कर जीजी को बताया। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर वहाँ एक दीपक लगवाया, प्रार्थना की। कहा- "छोरा-छोरी डरी रिया, आप किरपा करो। वापस पधार जाओ।"

वह दिन और आज का दिन, फिर मुझे कभी कुछ नहीं दिखा। जीजी की हिम्मत हौसला देती। हाँ, अकेले कभी रात-बिरात घर के पिछवाड़े जाने की हिम्मत नहीं कर पाते। पूरी हवेली में एक ही शौचालय था जो पिछवाड़े था। भैंस के खूँटे के पास। वहाँ तक पहुँचने में पूरी हवेली का लम्बा सफ़र तय करना पड़ता था। रात में कोई वहाँ अकेला नहीं जाता। बड़े भाई-बहन भी जीजी के साथ या दासाब के साथ ही जाते।

हमारे यहाँ कोई भी शुभ कार्य या कोई त्योहार होता, हमें सख्त ताकीद थी कि पहले घर के देवताओं के लिए भोजन परोसो। वह थाली दिन भर पूजा के पाट पर रहती। शाम तक गाय और कुत्ते को खिला देते। कभी किसी ने ग़लती से भी उस नियम को नहीं तोड़ा। एक बार इस बड़ी हवेली का एक हिस्सा किराए से दिया था। वह परिवार वहाँ कुछ ही महीने टिका और डर के मारे छोड़ कर चला गया। छोड़ने के बाद हमें जो भी बताया, वह अविश्वसनीय नहीं था हमारे लिए।

दासाब कहते थे वे हमारे पुरखे हैं, जो अपने घर को छोड़ नहीं पाए। आज, जीजी-दासाब-बड़े-छोटे भाई नहीं हैं पर हम घर के जितने लोग बचे हैं, सबके पास ऐसी कई स्मृतियाँ क़ैद हैं। जब भी मिलते हैं रात के दो-तीन बजे तक बैठकर नई पीढ़ी को ये सब सुनाते हैं। आज वह हवेली बिक गई है। दिन में वहाँ स्कूल चलता है। रात में आज भी वहाँ कोई नहीं रहता।

मेरी सारी सोच-समझ की शक्ति धराशायी हो जाती जब वह दृश्य मेरे सामने आता। उस शाम हवेली के बीच वाले हिस्से में चाचाजी के घर धड़ाधड़ पत्थर आने लगे थे। एकाध मिनट के अंतराल से एक पत्थर आता, आवाज़ होती और नीचे पड़ा दिखाई देता। पत्थर कहाँ से आ रहे थे, कौन फेंक रहा था, आज तक यह रहस्य नहीं खुला।

परिवार के साथ वहाँ इकट्ठा हो रहे गाँव के लोग इस घटना के साक्षी थे। फुसफुसा रहे थे कि सेठ का घर किसी बड़े संकट में है। भीड़ भयभीत थी, घरवाले भी। क्रोध शांत करने के लिए उसी समय धूप-दीप किया गया। सवेरे उठकर बड़ी पूजा करने का निवेदन किया गया। घर के हर सदस्य ने ज़ोर से किसी भी ग़लती के लिए क्षमा माँगी। थोड़ी देर में पत्थर आने बंद हुए। किसी ने एक शंका ज़ाहिर की कि ये पत्थर चोर फेंक रहे होंगे। लेकिन एक ही आकार के सारे पत्थरों का, एक ही जगह पर आकर गिरना संभव नहीं था। वह दृश्य मेरी आँखों में आज तक ऐसा सुरक्षित है कि कभी मैं उसे डिलीट नहीं कर पाई।

समय के सारथी उन पलों की मुट्ठी में क़ैद था खुले आसमान का टुकड़ा। उसी को पकड़े रखा। जिन चमकीले-धूपीले पलों को बड़ों के साथ जीया, अब अपने नाती-नातिन के साथ जीती हूँ। उन्हें अपने बचपन की बातें सुनाती हूँ तो कहते हैं- "वाह नानी, तब भी था सुपर पावर!"

और फिर सुपर पावर की कई-कई किताबें पढ़ चुके वे मुझे आज के सुपर पावर के क़िस्से सुना-सुनाकर चौंकाते हैं।

000

लघुकथा

रिश्तों का आर्थिक गणित

सुभाष चंद्र लखेड़ा

त्रिलोकी नाथ जी ने इसी महीने नब्बे की उम्र पूरी की थी। अमेरिका में रहने वाला उनका सबसे बड़ा नाती जयंत भी अब उम्र के उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश कर चुका था।

बहरहाल, सप्ताह भर पहले पहले त्रिलोकी नाथ जी और उनकी पत्नी को ख़बर मिली थी कि उनका नाती जयंत कुछ दिनों के लिए अपने दादा-दादी को मिलने गुरुग्राम आया हुआ है। जब उन्हें यह ख़बर मिली, तो उनके और उनकी पत्नी के चेहरे की झुर्रियाँ उसी वक़्त ख़ुशी से भर गईं। जयंत की नानी तो ख़बर मिलते ही सोचने लगीं कि उसको खाने में जो भी अच्छा लगेगा, वह ख़ुद ही उसके लिए वह सब अपने हाथों से बनाएँगी।

त्रिलोकी नाथ जी सोच रहे थे कि इस बार वे जयंत को उसकी पसंद का कोई सूट सिलवाकर देंगे। फिर उन्हें ख़याल आया कि उन्हें फ़ोन करके पता कर लेना चाहिए था कि जयंत उनसे मिलने कब आ रहा है ?

उन्होंने मोबाइल उठाया और जयंत के दादा अरविंद जी का नंबर मिलाया। कुशल क्षेम पूछने के बाद वे जैसे ही जयंत के बारे में पूछने वाले थे कि तभी अरविंद जी बोले, "जयंत भी आज सुबह वापस चला गया। दरअसल, वह अपने उस फ्लैट को देखने आया था, जिसे हमने उसके लिए पाँच करोड़ में ख़रीदा है।"

यह सुनते ही त्रिलोकी नाथ जी समझ गए कि बचपन में अपने दादा से अधिक उनको प्यार करने वाला जयंत किशोरावस्था में कदम रखते ही उनसे क्यों धीरे-धीरे दूर होता चला गया। दरअसल, बढ़ती उम्र के साथ जयंत भी हम सभी की तरह रिश्तों का आर्थिक गणित समझने लगा था।

000

सुभाष चंद्र लखेड़ा,
सी- 180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर- 7
प्लाट नंबर- 17, द्वारका, नई दिल्ली - 110075
ईमेल- subhash.surendra@gmail.com

'दुर्घटना पुरुष' जो बादल की तरह बरस कर चला गया

गोविन्द सेन

मार्च, 2023 में मैं हरिशंकर परसाई जी की संस्मरणात्मक किताब 'जाने पहचाने लोग' पढ़ रहा था। कई संस्मरण थे। एक संस्मरण लेख के शीर्षक पर मेरी निगाह अटक गई- (अ-डाक्टर) रामविलास शर्मा। मैं उत्सुकता से लेख पढ़ने लगा। आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा से कवि रामविलास शर्मा को अलगाने के लिए हरिशंकर परसाई जी ने 'अ-डाक्टर' का प्रयोग किया था। इन्हीं कवि राम विलास शर्मा जी से मेरी एक स्मृति जुड़ी हुई है। इसीलिए लेख पढ़ते हुए और उन्हें याद करते हुए, मेरे मन में एक टीस उठ रही थी।

'बादल' कविता संग्रह की समीक्षा मैंने किसी पत्रिका में पढ़ी थी। यह संग्रह रामविलास शर्मा की बादल से जुड़ी चौरासी कविताओं का संग्रह है। 'बादल' संग्रह किसी एक कविता का ही नहीं बल्कि संग्रह की सभी कविताओं का शीर्षक है। बादल के अलावा इनका कोई दूसरा शीर्षक हो भी नहीं सकता था। यदि होता भी तो अनुपयुक्त लगता। संग्रह की हर कविता में बादल कुछ नए रूप में आता है। कहीं वह बेहद संवेदनशील ब्लॉटिंग पेपर के रूप में आता है जो आकाश की करुण आत्मकथा का अतिरिक्त दर्द सहज ही सोख लेता है। साँवले बादल पर सवार सफ़ेद सूर्य उन्हें भैंस की पीठ पर बैठे हुए बगुले के रूप में दिखाई देता है। साँझ के बादल उन्हें सिंदूर लगे अधकटे नींबू की तरह दिखाई देते हैं, जिन्हें किसी अघोरी तांत्रिक ने मंत्रोच्चार के बाद फेंक दिया हो। वे प्रकृति की भाषा में लोक जीवन की संवेदना और बिम्बों को बहुत सहजता से ऐसे रचते हैं कि पाठक चकित रह जाता है। उनकी नवीन और मौलिक उपमाएँ बेहद शानदार हैं और सहज ही सामने एक सजीव चित्र खड़ा कर देती हैं। बादल से जुड़ी इन छोटी-छोटी कविताओं ने मुझे ख़ूब प्रभावित किया। बादल के विविध रूप और मौलिक उपमाओं ने मुझे अपने सम्मोहन में बाँध लिया था। कविताएँ तो बस ऐसी ही होनी चाहिए। मेरे मन में बार-बार यही भाव उठ रहा था। प्रभावित होकर मैंने भी उसी तर्ज पर कुछ छोटी-छोटी कविताएँ लिखीं। रामविलास शर्मा जी तब दैनिक भास्कर में साहित्य संपादक थे। मैंने हिम्मत करके उन्हें अपनी लिखी कुछ कविताएँ प्रकाशन के लिए भेज दीं। छोटी कविताओं के बारे में उन्होंने कहीं लिखा था कि छोटी कविताएँ व्यर्थ के एक शब्द का बोझ भी सह नहीं पातीं।

अट्ठारह फरवरी उन्नीस सौ नब्बे के दैनिक भास्कर का रविवारीय पृष्ठ देखकर मैं हतप्रभ था। उस पृष्ठ में ख़ास तौर से रामविलास शर्मा जी से जुड़ी बातों को स्थान दिया गया था। एक बॉक्स में अपना नाम देखकर चकित रह गया था। कीर्ति राणा जी ने एक बॉक्स में रामविलास शर्मा को याद करते हुए एक कविता और उसी बॉक्स में 'ऐसा था उनका सम्पादन' में मेरा ज़िक्र किया था। पाँच फरवरी उन्नीस सौ नब्बे की रात को सड़क दुर्घटना में वे गुज़र गए थे। दुर्घटना से पहले वे अपना सम्पादकीय दायित्व निभाते हुए मेरी एक कविता संपादित करके गए थे। यह सब पढ़ और देखकर उनकी संपादकीय निष्ठा के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा पैदा हो गई। उनकी मृत्यु से झटका भी लगा। बहरहाल यह पृष्ठ मेरे लिए अति महत्त्वपूर्ण हो गया था। मैंने इस पृष्ठ को सहेजकर रख लिया था।

वे इंदौर में रहते थे। दैनिक भास्कर के साहित्य संपादक थे। कई बार इंदौर जाता रहा था, पर मैं रामविलास शर्मा जी से प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं मिला सका था। इसलिए न रू-ब-रू देख सका। जिन लोगों से हम नहीं मिल पाते, जीवन में उनकी भी एक याद बनी रहती है। वह याद कुछ अधिक गहरी होती है। मंगलेश डबराल की कविता है-'जिनसे मिलना /संभव नहीं हुआ/ उनकी भी एक याद/ बनी रहती है/जीवन में।' उनसे न मिल पाने का अफ़सोस सदा के लिए रह गया। आज तक प्रत्यक्ष रूप से कीर्ति राणा जी से कभी नहीं मिला हूँ। बस नाम से परिचित हूँ और उन्होंने 18 फरवरी, 1990 को रविवारीय भास्कर में रामविलास शर्मा जी को स्मरण करते हुए जो लिखा था, उसके कारण उन्हें जानता हूँ। उन्होंने रामविलास शर्मा जी पर उन्होंने 'तुम नहीं थे' शीर्षक से एक भावपूर्ण कविता भी लिखी थी जो रविवारीय के उसी पृष्ठ (18 फरवरी, 1990) पर प्रकाशित की गई थी। उन्होंने रामविलास शर्मा जी से मुझे अनायास जोड़ दिया था।

दैनिक भास्कर के बाद वे कहाँ काम कर रहे हैं, मुझे पता नहीं था।

गोविन्द सेन
193 राधारमण कॉलोनी, मनावर-454446,
जिला-धार, म.प्र.,
मोबाइल- 9893010439
ईमेल -govindsen2011@gmail.com

सोलह अप्रैल (रविवार) 2023 को 'ओटला मंच' देवास में मेरा कहानी पाठ रखा गया था। इस मंच का आयोजक-संयोजन श्री बहादुर पटेल और सुश्री ज्योति देशमुख करते हैं। कीर्ति जी ने दोनों को संबोधित करते हुए व्हाट्सअप पर लिखा था कि गोविन्द सेन की एक कहानी, परिचय और फोटो उन्हें रविवार से पहले पहुँचाएँ। वे मेरी कहानी अपने पत्र 'हिंदुस्तान मेल' में प्रकाशित करना चाहते हैं। जब मुझे पता चला तो मैं कीर्ति जी से बात करने और उन्हें उस पुराने रविवारीय पृष्ठ की याद दिलाने को उत्सुक हो गया। जब उनसे मोबाइल पर बात हुई और उस पृष्ठ की याद दिलाई तो उन्होंने वह पृष्ठ भेजने का निवेदन किया। मैंने तुरंत उन्हें व्हाट्सएप के जरिए उस पृष्ठ की फ़ोटो भेज दी।

रविवारीय पृष्ठ में फ़ोटो के साथ बॉक्स बनाकर 'इस बार ऐसा नहीं हुआ...!' शीर्षक से कीर्ति जी ने उन पर एक छोटा-सा किन्तु मर्मस्पर्शी संस्मरण लिखा था। फ़ोटो में वे बालकवि बैरागी और कीर्ति राणा के बीच में खड़े थे। वे राज्य परिवहन अधिकारी रहे थे। उनके कई एक्सीडेंट हुए थे। हर बार वे दुर्घटना से बचकर निकल आए थे। बाद में ठहाके लगाते हुए अपने एक्सीडेंट का किस्सा सुनाया करते थे। इसीलिए उनके मित्र उन्हें 'दुर्घटना पुरुष' या 'राणा साँगा' कहा करते थे। 'बादल' संग्रह की कविताएँ भी उन्होंने नागपुर में अस्पताल की खिड़की से बादलों को देखते हुए लिखी थीं।

1988 में प्रकाशित 'बादल' कविता संग्रह को उन्होंने 'अरसे से बिछड़ी दिवंगता पत्नी 'गीता' की याद में' समर्पित किया है। उन्होंने अपने जीवन में बड़े-बड़े दुखों का बोझ उठाया था। एक पिता का सबसे बड़ा दु:ख और बोझ अपने पुत्र की अर्थी को अपने कंधे

पर उठाना होता है। इस बोझ को भी उन्हें उठाना पड़ा था। 27 अक्टूबर, 1927 में उनका जन्म मंदसौर में हुआ था। उन्हें केवल 62 वर्ष की उम्र मिली थी। जब-जब आसमान में बादल उमड़ेंगे रामविलास शर्मा जी की याद आएगी।

000

लघुकथा

कवच

प्रगति त्रिपाठी

नीमा के पति का साथ छूटते ही सारे रिश्ते पराए हो गए और सब अपनी-अपनी तरह से उसकी कमान खींचने लगे। कोई कहता अब यहाँ रहकर क्या करोगी? सास-ससुर की सेवा करो और उनके साथ गाँव में रहो, रहा बिट्टू तो वहीं सरकारी स्कूल में दाखिला करा देना।

नीमा बेसुध बैठी, मनोज की यादों में खोई थी। उसे तो अब भी समझ नहीं आ रहा था कि उसके साथ क्या हुआ है। तेरह दिन तक जो विधि-विधान कराया जा रहा था, वह ज़िंदा लाश की तरह किए जा रही थी। माँ-बाप भी मजबूर बने सब देख रहे थे। अपनी बेटी की ऐसी दशा उनसे देखी नहीं जा रही थी लेकिन समाज के नियमों के आगे बेबस थे। आज तेरहवीं थी, पुण्य आत्मा की शांति हेतु पूजा–पाठ और दान–धर्म कर दिया गया। धीरे-धीरे रिश्तेदार जाने लगे तभी नीमा के ससुर अपनी पत्नी से बोले, "तुमलोग भी सामान बाँधों, कल सुबह ही हम गाँव के लिए निकल जाएँगे। बाद में देखेंगे इस घर का क्या करना है!"

"चलो बहू सामान बाँधो अब हम सब साथ ही रहेंगे।"

नीमा अभी भी बेसुध बैठी थी, अब उसके माता-पिता से रहा नहीं गया और नीमा के पिता ने कहा "ये आप क्या कह रहे हैं समधी जी? नीमा गाँव रहेगी तो बिट्टू के भविष्य का क्या होगा? नीमा को मज़बूत बनना होगा। आप उसे यही रहने दीजिए।"

"नीमा यहाँ अकेली कैसे रहेगी?"

"आप लोग यही आ जाइए और नीमा के साथ रहिए, उसे आप सबकी ज़रूरत है।" नीमा के पिता ने कहा।

"जी नहीं, हम गाँव छोड़कर यहाँ नहीं रह सकते! नीमा को ही हमारे साथ आना होगा वरना वह यहीं अकेली रहे।" नीमा के ससुर ने फरमान सुना दिया।

"वह अकेली नहीं हैं, अगर आप उसका साथ नहीं दे सकते तो हम नीमा के साथ रहेंगे। हमारी बेटी अनाथ नहीं है।" दोनों ने नीमा और बिट्टू के सिर पर हाथ रखते हुए कहा।

000

प्रगति त्रिपाठी, बी-222, जीआरसी सुभिक्षा, एमजे नगर रोड,
चूड़ासंद्रा, बैंगलुरु 560099 कर्नाटक
मोबाइल- 9902188600
ईमेल- kumaripragati1988@gmail.com

रोटी एक आख्यान, एक महाकाव्य

डॉ. गरिमा संजय दुबे

रोटी एक ऐसा खाद्य पदार्थ जो कितना साधारण है ना, हर घर में हर कहीं मौजूद, झोपड़ी हो या महल अटारी, घर हो या बाहर, देश में हो या परदेश में, उत्सव हो या मातम, दिन हो या रात थाली में परोसा जाने वाला यह व्यंजन, हाँ व्यंजन ही तो है, इतना आम है कि यूँ हमें इसकी कोई ख़ासियत नज़र नहीं आती लेकिन ज़रा स्वाद बदलने की गरज से या चटोरी ज़बान की भूख शांत करने को दो चार दिन भी बाहर खा लिए रोटी के अलावा कुछ, तो मन मस्तिष्क इस रोटी के लिए तड़फ उठता है। यूँ होटलों में जाकर भी तो रोटी ही ऑर्डर करते हैं, एक रोटी 40 रुपये से लेकर 2000 रुपये तक की, तब लगता है कितनी क़ीमती वस्तु है यह रोटी। रोटी ही एक मात्र ऐसा खाद्य पदार्थ है जिसे मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक हर दिन खाता रहता है और कभी ऊबता भी नहीं, यह हमारे सामान्य जीवन में ऐसे रची बसी है जैसे श्वास, बहुत क़रीब लेकिन जब न मिले तो अहमियत पता लगे।

फूली-फूली गेहूँ की रोटियों से सुंदर दृश्य और कोई नहीं, रोटी से जुड़े मुहावरे भी रोटी के महत्त्व को दर्शाते हैं, रोज़ी रोटी का सवाल, दाँत काटी रोटी, दो जून की रोटी, रोटी बेटी का रिश्ता, रोटी कमाने गया है, रोटी कपड़ा और मकान, रूखी-सूखी रोटी, चटनी रोटी, तो मूलभूत आवश्यकता, उसमें भी रोटी प्रथम, तो रोटी हमारे जीवन का मूल रस है। इस रस सिक्त व्यंजन का मोल तब और बढ़ जाता है जब इस गरम रोटी में माँ के हाथ का स्वाद मिल जाए, माँ के हाथ की गरम-गरम रोटियों की तुलना संसार के किसी व्यंजन से नहीं की जा सकती, यह माँ ही है जो हर समय गरम रोटी खिलाने को तत्पर रहती है, आधी रात हो, गर्मी हो ठंड हो, माँ गरम रोटी खिलाकर तृप्त होती है, संतान की तृप्ति ही माँ को तृप्त करती है। गरम रोटी खिलाना उसके प्रेम की अनिवार्य शर्त होती है, माँ पोषण का दूसरा नाम है, रोटी भी माँ-सा भाव रखती है।

रोटी का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी मनुष्य की भूख, यूँ मनुष्य ने अपनी भूख पहले माँस से बुझाई, माँस खाकर जानवर ही रहता, लेकिन कहीं से थोड़ी बुद्धि प्राप्त हुई तो थोड़े सृजनात्मक तरीके से भोजन की ओर बढ़ा होगा, माँस खाकर कोई तृप्त हुआ है भला, नहीं। यहाँ मेरे अहिंसक, शाकाहारी मन ने एक बात और जोड़ दी, माँसाहार में बहुत विध्वंस है, शाकाहार में सृजन है, प्रकृति के उपादानों के सम्यक प्रयोग से सुस्वादु फल, सब्ज़ी और अनाज को उगाना उसे अग्नि पर पकाना और फिर उससे पोषण पाना, एक सृजनात्मक प्रक्रिया है। हर-भरे खेत, लहलहाती फ़सलें, फल से लदे पेड़ और रंग-बिरंगी सब्ज़ियों के पौधे देख मन कैसा तृप्त होता है, प्रसन्न होता है, क्या मन में वैसी प्रसन्नता कभी जानवरों के लटकते अंग, रक्त से सने उनके मांस को देखकर उत्पन्न होती है, कदापि नहीं, तो रोटी हमारे शाकाहारी मन का एक आधारभूत अवयव है, जो अन्न को, भक्ष्य को, सृजनात्मक अहिंसक तरीके से सेवन करने का ज्ञान देती है।

मांसाहार मनुष्य के बर्बर, हिंसक, मूर्ख होने का प्रमाण है, जब उसमें इतनी बुद्धि ही नहीं थी कि इसके अलावा भी कुछ है जिससे पोषण पाया जा सकता है, तब वह मांसाहारी था, बुद्धि आते ही उसे दृष्टि मिली और वह प्रकृति के निरापद रूप की तरफ बढ़ गया होगा। फिर थोड़ा व्यवस्थित हो वह कृषि की तरफ आया तो अनाज उगाने की अकल के साथ अनाज से भोजन का उपाय भी सीख लिया होगा। पहले पहल जाने किसने गेहूँ की सुनहरी बालियों में रोटी की संभावना देखी होगी, भून कर अनाज ही खा लेता होगा, भुना हुआ अनाज स्वाद देने लगा होगा तो किसी कुशल गृहिणी के दिमाग़ की उपज होगी, गेहूँ पीसकर उसके आटे से रोटियाँ सेंकी गई होंगी, जब पहली रोटी बनी होगी तो कैसा आह्लाद हुआ होगा। यह आवश्यक तो नहीं कि वह आज की भाँति गोल मटोल हो, आड़ी तिरछी ही बनी होगी, जिसे खाकर तृप्ति अनुभव हुई होगी और फिर चल निकला होगा सिलसिला, फिर रोटी के साथ खाए जाने वाले व्यंजनों की

खोज हुई होगी। कभी-कभी यह सोचती हूँ, किसके दिमाग़ में पहले दाल बनाने का विचार आया होगा, किसने तड़के की खोज की होगी, किसने मसाले और उसके स्वाद को पहचाना होगा, किसने नमक से स्वाद बढ़ता है जाना होगा, किसने तेल से तड़का लगाने की खोज की

डॉ. गरिमा संजय दुबे
18 बी, वंदना नगर एक्स.
इंदौर म. प्र. 452018
मोबाइल- 9009046734
ईमेल- garima.dubey108@gmail.com

होगी, कौन जाने आदि मानव से आज तक यह सब मनुष्य किस बुद्धि के वशीभूत हो करता समझता रहा है।

ख़ैर, तो बात हो रही थी रोटी की, मुझे वर्तमान रोटी बहुत परिष्कृत रूप लगता है, इसका रॉ स्वरूप तो तंदूरी रोटी है, तवा रोटी तो बाद की आमद है, क्योंकि तवा ही बहुत बाद में अस्तित्व में आया, पहले तो तंदूर, और चूल्हे पर मिट्टी के कड़ेले की रोटी आई, दुनिया के अन्य देश इसे ब्रेड कहते हैं, लेकिन रोटी एक नितांत भारतीय व्यंजन है, उसका थोड़ा बदला हुआ रूप पराँठा है और उसके बाद थोड़ा और उत्सव स्वरूप पूड़ी। किंतु इन तीनों में भी जो याद सबसे अधिक आती है वह है रोटी, पराँठे, पूड़ी रोज़ नहीं खा सकते, लेकिन रोटी दिन में तीन बार भी खाई जा सकती है, तो रोटी हमारे रक्त, मज्जा के निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। फुल्का, खाखरा रोटी, राह गुज़रते किसी घर में उतरती रोटी की ख़ुशबू कैसी क्षुधा जगा जाती है, गरमागरम रोटियों की शान ही निराली है। नारीवादी कहते हैं कि स्त्रियों का जीवन रोटी बेलने में ही निकल गया, सही कहते हैं, इन रोटियों ने न जाने कितनी पीढ़ियों को पोषण दिया है, उसके लिए तो ऋणी है समाज स्त्रियों का। इसी रोटी को कमाने में पुरुषों ने भी दिन-रात एक किया, परिश्रम किया। तो रोटियाँ मुझे स्त्री और पुरुष के संयुक्त प्रयास का सुंदर परिणाम नज़र आती हैं, दोनों के परिश्रम का स्वेद और प्रेम स्नेह का स्पर्श रोटी के स्वाद को बढ़ा देता है। यह दोनों बने रहे तो परिवार बने रहते हैं। पुरुष स्त्री में से किसका संघर्ष अधिक है, कौन श्रेष्ठ है के विवाद से भिन्न, दोनों के परिश्रम का सार्थक सुंदर स्वरूप है रोटी।

दुनिया ऐसे संयुक्त प्रयासों से ही रोटी की तरह गोल, सुंदर और पोषण देने वाली बन सकती है। रोटी में न कोई सिरे हैं न कोई नुकीले किनारे, वह धरती की तरह, चाँद की तरह, सूरज की तरह गोल है, हर गोल वस्तु निरापद होती है शायद, पोषण देने वाली, चाँद, सूरज, धरती, रोटी, घड़ा, मटका, ये सब पोषण ही तो देते हैं, नुकीले होने की जगह वर्तुल होने को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि इस धरती पर पोषण अधिक हो तथा शोषण कम।

रोटी से घर घर हैं, घर में रोटी मिले तो कोई क्यों परदेस जाए, रोटी हो तो पलायन रुकता है, रोटी जोड़े रखती है घर से, जड़ से।

तो बात कहाँ से चली कहाँ पहुँची, किंतु इस रोटी ने मनुष्य को व्यथित भी बहुत किया, हमारी क्षुधा शांति का प्रथम चरण इससे ही प्रारंभ होता है और दुनिया में भूखमरी आज भी बहुत है, बड़े-बड़े कवियों ने इसी रोटी को केंद्र में रखकर कालजयी कविताएँ लिखी, शोषण वाली व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग के लिए दो रोटी का जुगाड़ बहुत बड़ी बात होती थी। कोई इंसान बिना रोटी के मर जाए इससे बड़ा दुर्भाग्य मानवता के लिए क्या हो सकता है, हम संपन्न लोग जो अन्न ख़रीद सकने में समर्थ हैं, वे कितना अन्न का नुकसान करते हैं, और कोई है जो दो रोटी भी नहीं पाता, क्या कोई भूखा है तो हमारी आत्मा तृप्त हो सकती है, इस संसार के प्रचूर साधनों को इस तरह तो वितरित किया ही जाना चाहिए कि व्यक्ति परिश्रम करे तो उसे रोटी प्राप्त हो सके। संपन्न शब्द में भी अन्न ही है, अन्न की संपन्नता तो भारत में सबसे बड़ी मानी गई, वहीं इसको व्यर्थ होते देख मन द्रवित होता है। अन्न का क्षय संपन्नता का क्षय करता है।

रोटी हमारे परिश्रम का प्रथम परिणाम है, रोटी और स्वाधीनता का बिम्ब खींचते हैं दिनकर, तो धूमिल रोटी और संसद की बात करते हैं, रोटी मानवता की पहली आवश्यकता है, क्योंकि भोजन ही तो हमारे जीवन का आधार है और उसका मुख्य तत्व रोटी है, तो रोटी के मेटाफर को लेकर, भूख, ग़रीबी, शोषण, सत्ता के दमन को दर्शाया है तो कहीं उसके स्वाद को लेकर प्रेम, तृप्ति, संतुष्टि, पोषण के कई चित्र खींचे गए हैं। हमने तो पहली रोटी गाय की, आख़िरी कुत्ते की, कुछ चिड़िया का भाग है तो कुछ धरती के नन्हें जीवों का, हमारी रोटी में तो सबका हिस्सा रहता आया है, तो फिर कुछ मनुष्य उससे वंचित क्यों रहें भला ? अन्नदान महादान है, भूखे को रोटी और प्यासे को जल जहाँ की संस्कृति हो वहाँ अन्न की कमी क्यों कर हो भला, तो अन्न को बचाए रखना होगा, ताकि वह हमें संपन्न करता रहे, भीतर से भी बाहर से भी।

केदारनाथ सिंह जी कहते हैं न कि यह दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक वस्तु है जो आग को गंध में बदल देती है, अहा चूल्हे पर बनती रोटी को याद कीजिए कैसी तो प्यारी सुगंध होती है, यह आग की गंध नहीं है, यह अग्नि और अन्न के मेल से उत्पन्न सुगंध है, दोनों का संयोग अद्‌भुत स्वाद और सुगंध का सृजन करता है अन्न जो पृथ्वी का तत्त्व है, मिट्टी से उपजा, जल से पोषित, वायु से सजीव, आकाश से संरक्षित और अग्नि से संवर्धित, पंच तत्वों से निर्मित हुआ अन्न पंचमहाभूत से बने हमारे शरीर और आत्मा को सँवारता है।

"जहाँ वह पक रही है
एक अद्‌भुत ताप और गरिमा के साथ
समूची आग को गंध में बदलती हुई
दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज़
वह पक रही है"

मंगलेश डबराल ने कहीं इसे कविता कहा था, रोटी में कविता का स्वाद उतर आए तो रोटी सार्थक, और कविता में रोटी का स्वाद उतर आए तो कविता संपूर्ण, मूल है रोटी का स्वाद-

"लेकिन वह क्या है
जब एक रोटी खाते हुए लगता है
कविता पढ़ रहे हैं
और कोई कविता पढ़ते हुए लगता है
रोटी खा रहे हैं।"

किंतु बढ़ते भौतिकतावादी युग में देख रही हूँ कि मनुष्य की भूख केवल रोटी से कहाँ बुझती है, उसे न रोटी में स्वाद आ रहा है, न कविता का रस वह ले पा रहा है। वह अपनी भूख शांत करने के लिए कार्य नहीं कर रहा है, अपनी भूख बढ़ाने पर कार्य कर रहा है। उसकी भूख उसे रोटी से बहुत दूर ले जा रही है, वह भूल रहा है कि कितने भी साधन क्यों न हो भूख तो केवल दो रोटी से ही शांत होगी, तृप्ति तो केवल थाली में परोसे पोषक अन्न से ही मिलेगी। रोटी का दर्शन समझे, वह केवल

एक खाद्य पदार्थ या जैसा मैंने कहा केवल व्यंजन नहीं है, वह जीवन है, सादा सा, सरल सा, बिना दिखावे का, अनावश्यक सज धज से विरत, जिसमें आटा है, गेंहू, मक्का, ज्वार, बाजरा कोई भी, प्रकृति से उपजा प्राचीन अन्न, थोड़ा जल है और थोड़ा-सा नमक, फिर अग्नि से उसके पोषण में वृद्धि है, जीवन में इन सबके सिवा और चाहिए ही क्या, थोड़ा जल, थोड़ा अन्न, थोड़ी अग्नि, और स्वाद के लिए नमक इनके संतुलन से ही तो जीवन स्वादिष्ट बनता है, एक का अनुपात बिगाड़ कर देखिए ज़िंदगी बेस्वाद हो जाएगी।

थोड़ी नमी बने रहे,
थोड़ा ठोस भी हो आधार,
थोड़ा नमक भी हो
और अग्नि तत्व भी।

रोटी जितना साधारण होना भी एक कला है, जब न हो तो तड़प उठें लोग, दुनिया के तमाम वैभव, तमाम सजीले व्यंजन इसके सादे से सौंदर्य के आगे फीके हैं। सादगी की तासीर ही कुछ ऐसी होती है, बहुत धीमें असर करती है लेकिन सदा के लिए स्थिर हो जाती है मन में, जिनमें भीतर के स्वाद की कमी होती है उन्हें ही बाहरी सज- धज की अधिक आवश्यकता है, रोटी का तो मुख्य आकर्षण ही उसका स्वाद है जिसे किसी आडंबर की आवश्यकता नहीं, वह अपने में पूर्ण है। तो जीवन को रोटी जितना महत्त्वपूर्ण बनाइए जिसके बिना गुज़ारा न हो सके। यद्यपि कहीं-कहीं इस भाव में अहंकार भी है। जब लौटते हैं इसकी तरफ तो इठलाती हुई कहती है क्यों ख़ूब खा लिया अगड़म बगड़म, सड़ा लिया उदर, अब लौट आए मेरी तरफ़, आना तो पड़ेगा ही, मैं हूँ ही ऐसी निराली सी।

थोड़ा मान दिखाती है यह रोटी, चपाती, रोटिका, किंतु फिर भी श्रेष्ठ वस्तुओं पर, गुणिजनों पर अभिमान शोभा ही पाता है, रोटी को उसके इस अभिमान के लिए कुछ न कहिए यह उसका अधिकार भी तो है, कुछ तो मान उसको होना ही चाहिए, तो रोटी को, अन्न को सम्मान दीजिए और रोटी सा सरल और गुणी बनिए।

000

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन की महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ

सीहोर के क्रीसेंट रिज़ॉर्ट एवं क्लब में 31 मार्च 2024 रविवार को आयोजित 'शिवना साहित्य समागम एवं अलंकरण समारोह' में ऑनलाइन अमेरिका से जुड़ीं वरिष्ठ साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने कार्यक्रम को संबोधित करते हुए शिवना प्रकाशन द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कई कार्यों से श्रोताओं को अवगत करवाया। उन्होंने अपने संबोधन में शिवना की आगामी कार्य योजनाओं से भी अवगत कराया। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ साझा की। शिवना प्रकाशन की ओर से सुधा ओम ढींगरा द्वारा की जा रही इन घोषणाओं का सभागार में उपस्थित श्रोताओं ने करतल ध्वनि से स्वागत किया।

1. इस वर्ष से शिवना प्रकाशन एक 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' भी प्रारंभ करने जा रहा है, जो 35 वर्ष से कम आयु के लेखक/लेखिकाओं को उनकी किसी भी विधा की पहली पांडुलिपि के लिए प्रदान किया जाएगा। हर वर्ष अलग-अलग विधाओं के लिए पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जाएँगी। चयनित श्रेष्ठ पांडुलिपि को पुरस्कार राशि प्रदान की जाएगी तथा शिवना से उस पांडुलिपि का प्रकाशन किया जाए।

2. इस वर्ष से शिवना प्रकाशन की अपनी वेबसाइट shivnaprakashan.com काम करना प्रारंभ कर देगी। शिवना द्वारा अपनी किताबों की बिक्री अपनी वेबसाइट से भी की जाएगी। साथ ही यहाँ शिवना के लेखकों के परिचय सहित उनके बारे में पूरी जानकारी भी उपलब्ध रहेगी।

3. शिवना प्रकाशन इस वर्ष से एल.एल.सी. कंपनी के रूप में शिवना प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड के नाम से काम करना प्रारंभ देगा। डॉ. ओम ढींगरा, जो एस ओ वी थेराप्यूटिक्स फार्मा कंपनी के प्रेज़िडेंट और कई फार्मा कंपनियों के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर हैं, इस कंपनी के सी.ई.ओ. के रूप में कार्य करेंगे।

4. शिवना प्रकाशन इस वर्ष से अमेरिका में भी एल.एल.सी. के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर देगा।

5. शिवना प्रकाशन अमेरिका के सरकारी वेंडर के रूप में रज़िस्टर्ड हो चुका है। शिवना प्रकाशन द्वारा पुस्तकों की पहली खेप प्रदान भी की जा चुकी है। अब शिवना की किताबें अमेरिका की पब्लिक लाइब्रेरीज़, जो हर शहर, हर कस्बे में हैं, हिन्दी प्रेमियों और पाठकों को मिलेंगी। यूनिवर्सिटीज़ के हिन्दी विभागों में तथा पुस्तकालयों में स्टूडेंट्स को अब शिवना प्रकाशन की पुस्तकें मिल सकेंगी।

6. शिवना प्रकाशन इसी वर्ष से अपनी ऑडियो बुक्स लांच करना शुरू कर दिया है। यह कार्य इस क्षेत्र की प्रतिष्ठित कंपनी 'रचनाएँ' के साथ मिल कर किया जा रहा है। ऑडियो बुक्स के साथ-साथ 'रचनाएँ' की वेबसाइट तथा मोबाइल एप पर शिवना प्रकाशन की पुस्तकों को 'ई-पुस्तक' के रूप में भी ख़रीद कर पाठक पढ़ सकेंगे। शिवना प्रकाशन की कई पुस्तकें ऑडियो बुक के रूप में जारी की जा चुकी हैं।

000

कलई वाला

ज्योति जैन

ओ भाण्डे कली करा लो...
पुराने नवे करा लो..
पाँच रुपये में चाहे छोटे, चाहे मोटे,
चाहे देचगी, चाहे लोटे चाहे,
आ गया हाँ शिदा कलीकर...
कहता है ये शिदा कलीकर..
ओ भाण्डे कली करा लो...

यह पंक्तियाँ किसी फ़िल्मी गीत की थीं या लोकगीत की थीं, या वह शिदा कलीकर वैसे ही गाता था...मुझे पता नहीं। लेकिन अपने बचपन में मैंने यह गीत कई बार उस बर्तन कलई करने वाले के मुँह से सुना था।

हो सकता है बचपन की धुँधली यादों में मुझे उसका नाम सुनने में भी ग़लती हुई हो लेकिन जो मुझे सुनाई देता था वह यही नाम था शिदा कलीकर।

जहाँ तक मुझे ध्यान है वह एक मध्य वय का आदमी था। जिसके साथ एक छोटा बच्चा भी रहता था। वह बच्चा लगभग आठ वर्ष का रहा होगा। तो यदि आठ साल उस बच्चे की उम्र होगी तो निश्चित रूप से उसका पिता अधेड़ तो नहीं था।

तो बस शिदा कलीकर की उम्र का अंदाज़ा लगा लीजिए। वह हमेशा सफ़ेद रंग का कुर्ता पजामा पहनता था। कुर्ता भी ढीला और पजामा तो इतना ढीला कि उसके जैसे के छह पैर उसमें आ जाते। वह जैसे ही गुवाड़ी के गेट से अंदर दाखिल होता, हम सब बच्चे मुँह पर हाथ रख दूध के कुछ टूटे दाँत को दबाते हुए खीं-खीं करके हँसते- घागरे वाला आ गया और फिर बाकी लोगों के सामने बोलते- कलई वाला आ गया।

उसका पजामा सचमुच घाघरे नुमा ही होता था और पता नहीं क्यों उसे सफ़ेद कपड़े पहनने का शौक था, जबकि उसका काम जो था उसमें तो उसके कपड़े मैले ही होते थे।

उसके सिर पर घने बाल थे, मूँछें घनी और थोड़ी नुकीली और सिर पर अजीब-सी टोपी पहनता था। गोरा चिट्टा उसका रंग था लेकिन मुझे याद है कि जब वह कलई करने बैठता था तो कोयले की कालिख से उसके हाथ, कपड़े, मुँह तीनों काले हो जाते थे।

साथ ही उसके बेटे के भी चेहरे और हाथों पर कालिख पुती ही रहती थी।

और तो और वह उसे धोने या साफ़ करने का उपक्रम करते भी दिखाई नहीं देते थे। पता नहीं क्यों। लम्बे समय से आते हुए उसके बारे में यह जानकारी भी थी कि उसकी पत्नी का निधन हो चुका था। इसलिए बेटे को साथ लिए घूमता था। हालाँकि वह कलीकर जितना वाचाल था, उसका बेटा उतना ही ख़ामोश रहता था।

पता नहीं कहाँ का था, लेकिन उसकी भाषा अजीब लगती थी। हिन्दी वाली हिन्दी नहीं थी। अब सालों पुरानी बात है ना तो किसी से पूछ भी नहीं सकती कि वह बंदा कहाँ का था..!

तब इतनी समझ भी नहीं थी और अब यह बातें मन में खलबली पैदा करती हैं। क्योंकि उन धुँधली यादों को जब शब्द रूप दे पन्नों पर उतारना चाहती हूँ, तो बहुत सारे प्रश्न कौंधते हैं और उनके जवाब नहीं मिलने पर बिल्कुल ऐसा ही होता है जब हम रेडियो पर कोई गाना सुन रहे हैं

ज्योति जैन
1432/24, नंदानगर
इन्दौर-452011, मप्र
मोबाइल- 930031812

और यह याद नहीं आ रहा कि वह कौन-सी फिल्म का है और किस पर फिल्माया गया है। जब तक दस जनों से पूछ कर पता न कर लो तब तक खलबली मचती रहती थी। अब इस ज़माने की बात और है क्योंकि गूगल अंकल जो आ गए हैं लेकिन गूगल अंकल और सब भले ही बता दें मगर मेरे दिमाग़ के अलग-अलग, छोटे-छोटे अलमारी नुमा खाँचों में जो भरा पड़ा है, उसका जवाब तो वह भी नहीं दे सकते। तो चलिए हम मान लेते हैं कि वह शिदा कलीकर कहीं किसी पहाड़ी क्षेत्र का रहा होगा।

वह जैसे ही गुवाड़ी में आता था, सतरह घरों की महिलाओं में से अधिकांश को उससे काम निकल आता था।

उसके बैठने की कोई जगह वैसे तो फिक्स नहीं थी। जो पहले आवाज़ देकर बर्तन कलई करने बुलाता, उसके घर के बाहर ही उसका ठिया हो जाता था, क्योंकि हर जगह कच्चा ही था। आँगन तो गोबर से लीपे हुए रहते थे, इसलिए आँगन से बाहर वाली जगह पर वो बैठता था। लेकिन उसकी कोशिश रहती कि बाहर सार्वजनिक नल और पानी की बड़ी हौद के बाजू में जो पीपल का पेड़ था, वह वहीं बैठे। धीरे-धीरे सबकी समझ में आने लगा कि वही जगह उसकी प्रिय है, तो वहीं उसे अपनी सिगड़ी जलाने देते।

अरे हाँ...! उसकी सिगड़ी अजीब थी। सिगड़ी जैसी जगह जहाँ पत्थर के कोयले को सुलगाता था और फिर उससे लगा हुआ एक बेलननुमा टीन का पाइप उससे जुड़ा रहता। फिर एक हैंडल वाला पहिया जिसे वह घुमाता था तो हवा पत्थर के कोयलों तक जाती और वह सुलगते रहते थे।

अपने मैले-कुचेले थैले में से वह सारा सामान निकलता। एक-एक कर जिसके भी बर्तन होते उसे कोयल पर औंधा रखता, फिर संडासी से पकड़कर उसमें कुछ तो भी डालकर और एक कपड़ा फेरता था और लो..! बर्तन कलई हो गए।

इस तरह जिस दिन कलई वाला आता उस दिन महिलाओं का एक उत्सव ही होता था। वैसे भी जितना मुझे याद है उस गुवाड़ी में हर पूजा पाठ या हर दिन को ही महिलाएँ उत्सव मना लेती थीं। चाहे सर्दियों में छोड़ (हरे चने) छीलकर दाने निकालना हो, मटर छीलना, या मेथी धनिया तोड़ना हो। या गर्मियों में धान बीनना हो या पापड़ सुखाना हो। तो इसी तरह कलई वाले का आना भी उत्सव ही होता था। शिदा कलीकर भी तो हर एक को अपने साथ एक रिश्ते में बाँध चुका था।

उसका आने का दिन छुट्टी वाला तो नहीं होता था। इसलिए अक्सर ऐसा होता कि जब मैं स्कूल से लौटती तब तक वह काफी सारे लोगों का काम निपटा चुका होता था। या कभी ऐसा होता कि वह आता और मैं स्कूल के लिए निकल जाती।

लेकिन उस दिन आया तो स्कूल की छुट्टी थी। मैं और मेरी हम उम्र सखियाँ रोटा-पानी खेल रहे थे। वहीं... अपने पीपल के पेड़ के नीचे। और तभी शिदा कलीकर अपना गाना गाता आ गया और अपना मजमा जमा कर बैठ गया।

इस बीच उसका बेटा हमारे साथ खेलने आ गया। "मैं भी खेलूँगी"...कहते कहते यहाँ हमारे पास आकर बैठ गया। हम सब खी..खी...करके हँस पड़े। "लड़का रोटा पानी नहीं खेलता और यह खेलूँगी क्यों कहता है..? पग्गल है क्या?" हम सब ने उसका विरोध किया। लेकिन वह अड़ गया और फिर से मैं भी खेलूँगी कहते हुए बड़े यत्न से हमारे खिलौनों से खेलने लगा।

तब तक आसपास गुवाड़ी की महिलाएँ एकत्र हो गई और कुछ अजीब नजरों से उसके बेटे को देखने लगी। कहते हैं न कि दाई से पेट नहीं छुपता। शायद सयानी महिलाएँ भी भाँप गई थीं कि यह लड़का नहीं है। "ऐ..कलीकर यह बेटी है क्या?"

एक पल को वह सकपका गया। सबकी प्रश्नवाचक निगाहें उस ओर थी।

कोयले को सुलगाने वाले पहिए का हैंडल चलाते उसके हाथ थम गए।

कुछ अपराध बोध से पहले तो वह सिर झुकाकर बैठ गया। फिर धीरे से बोलना शुरू किया- "मैं आप सबको बहुत शुक्रिया कहता हूँ कि आप सबके कारण मुझे रोज़गार मिला और अपनापन भी। लगता है अपने परिवार के बीच ही हूँ। इसकी माँ नहीं है..." उसने अपने बेटे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा- "रोज़ी-रोटी कमाऊँ कि इसका ध्यान रखूँ। इसको घर पर नहीं छोड़ सकता। आपने सच कहा यह मेरी बेटी है।"

सबके चेहरों पर कुछ संदेह, आश्चर्य और अविश्वास के भाव थे।

उसने कहना जारी रखा "शुरू-शुरू में मैं जिस जगह जाता था तब यह बेटी ही थी। लेकिन वहाँ के कुछ पुरुषों की निगाहों में मेरी बेटी के लिए अजीब और गंदे भाव देखे। तब से मैं चौकन्ना हो गया और उसके बाद वह इलाक़ा छोड़ दिया। दूसरे इलाक़ों में जाना शुरू किया तो इसे बेटे की तरह ही रखा। इसीलिए इसे बोलता हूँ कम बोला कर। पर आज आपकी बेटियों को देखकर यह अपने को रोक नहीं पाई। और कहते-कहते उसका गला रुँध गया और आँखों से आँसू बहने लगे। बेटी भी उसके गले लग कर रो रही थी। उसे लगा कि उससे कुछ ग़लती हो गई है। बोली- "बाबा अब कुछ नहीं करूँगी...पक्का..! अब कुछ नहीं कहूँगी।"

तब की बारह साल की उम्र की लड़की को उतनी समझ नहीं थी जितनी आजकल की बारह साल की लड़कियों को है। लेकिन मैं इतना ज़रूर समझ गई थी कि उसने पुरुषों से बचाने के लिए अपनी बेटी को बेटा बना कर रखा था। मुझे भी कई जगह, कई पुरुषों की आँखों के भाव से डर लगता था। लेकिन तब समझ नहीं पाती थी। बस ऐसे पुरुषों के पास जाने से कतराती थी।

गुवाड़ी की सारी भाभियों, काकियों, जीजियों ने उसकी बेटी को गले से लगा लिया। आँसुओं से धुलकर दोनों के चेहरों की कालिख साफ हो गई और गुलाबी गोरा रंग निखर आया था। लेकिन मुझे इस बात की तकलीफ़ है कि तब से लेकर अब तक या उसके भी पहले से लेकर अब तक भी, कई पुरुषों के चरित्र की कालिख आज भी बरकरार है। कोई कलई वाला उसे चमका नहीं सकता।

000

सद्य जागृत का साक्षात्कार

कमलेश पाण्डेय

- आपको कैसे पता चला कि आप जाग गए हैं?

- मुझे जागने वालों ने ही बताया। वैसे उन्होंने ही ये ख़बर भी दी थी कि मैं सोया पड़ा था वरना मुझे लगता था कि मैं एक जागृत इंसान हूँ। मैं अकेले नहीं जागा, बल्कि मेरे साथ मेरी पूरी क़ौम भी जागी है। मालूम हुआ कि हम दशकों से सोए पड़े थे।

- कौन हैं ये जगाने वाले?

- सुना है ये जन जागरण के कारोबार में मिशनरी भाव से लगे हुए लोग हैं। बाकायदा जागरण मंच बनाकर उस पर चढ़ जाते हैं और लिख-बोल, दिखा-सुना कर जगाते हैं। यही नहीं बाँग देने वाले मुर्गे का इंतज़ाम भी करते हैं और मुर्गे से काम न चले तो कुछ गुर्गे भी रखते हैं जो जागृति के औज़ारों से कोंच-कोंच कर जगा देते हैं।

- आप इतने यक़ीन से कैसे कह सकते हैं कि आप जगाए ही गए। किसी हंगामे या हल्ला गुल्ला से नींद टूट गई होगी। या हो सकता है कोई सपना नींद में चलते-चलते टूटा हो और उसकी किरचें चुभने से आँख खुल गई हो। या फिर नींद मियाद पूरी हो जाने से ख़ुद ही खुल गई हो।

- मुझे एक पुकार सुनाई दी - तेरी गठरी में लगा चोर, मुसाफिर जाग ज़रा। वैसे लूटने लायक मेरे पास कुछ है नहीं, पर सुनकर नींद ज़रा उचट तो गई ही। फिर एक साधु ने प्रकट होकर कहा जो जागे सो पावे। कुछ पाने की उम्मीद में तो इस देश का आदमी मृत्यु शय्या से भी उठ खड़ा होता है। मुझे लगता है पुकारने वाले जागृति मिशन के ही लोग थे और वह साधु उन्हीं के आराध्य।

- नींद एक झटके से खुली या धीरे-धीरे किस्तों में?

- शायद दोनों ही बातें हुई। जब जगाने की कवायद शुरू हुई तो मैं बाईं करवट लेटा था। वे लोग मुझे दाईं करवट दिलाते तो मैं कुनमुना कर बार-बार पहले वाली स्थिति में आ जाता। बड़ी मुश्किल से उन्होंने मुझे चित किया, फिर दाएँ मोड़ कर उठा दिया।

- अपना पूरा अनुभव सुनाइए।

- मेरा जागरण दैनिक और चौबीसों घण्टे की कोशिशों का नतीजा है। सपनों की स्क्रीन पर लगातार बहस चलती रहती थी। साधु महाराज साक्षात् प्रवचन करते और भक्त उनका भाष्य। मुझे बताया गया है कि मेरे दिमाग़ में कुछ पुराने कुतर्कों का कचरा फँसा हुआ था, जो इन सुभाषितों के निरंतर प्रवाह से बाहर बह गया। दिमाग़ साफ हो गया, तभी तो नींद टूटी।

- यह बताएँ कि यह जागना हर रोज़ प्राकृतिक नींद से जागने से कैसे अलग था?

- प्रकृति और समाज ने सोए इंसान को जगाने के लिए माँ-बाप, पति-पत्नी, गुरु-मालिक आदि का प्रबंध किया हुआ है जो नींद से भी सुखद गरमागरम चाय देकर भी जागते हैं और छड़ी, कड़क डाँट या ठंडे पानी के छींटों से भी। पर जागरण वालों का नुस्खा भी मिलता जुलता है। अकेले भी आते हैं और दलबल के साथ भी। पुचकारते भी हैं और हड़काते भी। न उठने पर दुनिया से ही उठा दिए जाने का विकल्प भी दिया जाता है। एक बार जाग गए तो उनके जगाए हुए एकदम उठ खड़े होते हैं। फिर बाक़ायदा ऐलान भी होता है कि फलाँ क़ौम या व्यक्ति जाग उठा है।

- जैसा आपने कहा कि आप अकेले नहीं जागे, आपकी पूरी क़ौम ही जाग गई है तो इस सामूहिक जागरण का अनुभव बताइए।

- ऐलान में बताया गया था कि अब सबकी आँखें खुल गई हैं। जिस सच की तरफ आँखें मूँदे सो रहे थे अब सबको साफ़ साफ़ दिखेगा। सबका साथ विकास की गारंटी है। सोते हुए तो आपस में जान पहचान भी नहीं थी, पर अब इतने लोग साथ चलते हैं तो लगता है मानों एक ही रंग की सुंदर भेड़ों का एक विशाल झुंड ऊँचाई की ओर चढ़ता चला जा रहा है।

कमलेश पांडे
बी-260, पॉकेट-12, केंद्रीय विहार
सेक्टर-12, नोएडा (उ.प्र.)
मोबाइल- 8383016604
ईमेल- kamleshpande@gmail.com

- अब जो जाग ही गए हैं तो यह बताइए कि आप कैसा महसूस कर रहे हैं?

- जागते ही लगा जैसे कोई सपना देख रहा हूँ। देश नया-नया सा लगा। जैसे अपनी गलीज़ गलियों से निकल किसी स्मार्ट से शहर में आ गए हों। रेलवे स्टेशन हवाई अड्डे हो गए हैं और मंदिर किसी चमचमाते मॉल सरीखे। जैसे सूरज नए ढंग से उगा हो और पेड़ों के पत्ते उसका रंग चढ़ा कर बंदनवार बन गए हों। हवाओं में कोई मस्त करने वाला नशा घुला हो। कानों में मंदिरों की घंटियाँ टुनटुना रही हों। लोग चौपालों पर पहले जैसी बहस नहीं कर रहे बल्कि समवेत स्वर में भजन सा गा रहे हैं। चारों तरफ साधु साधु की गूँज है, साधु की ही छवि और वाणी की छटा बिखरी है। सब कुछ पॉजिटिव पॉजिटिव हो रहा हो।

- एक मिनट रुकिए। आपने कहा आप जागकर भी सपने जैसा ही कुछ देख रहे थे। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप दोबारा सो गए हों या फिर जागे ही न हों। आपको बस ऐसा लगा कि आप जागे क्योंकि जगाने वालों ने बताया। यह भी हो सकता है कि आप पहले भी नींद में नहीं थे और अब भी आपकी जागती आँखों के आगे ही नए सपनों की कोई रील चल रही हो।

- फिलहाल तो मुझे सोते से जाग उठने पर पूरा यकीन है। मेरे साथ जागी मेरी क़ौम भी यही फील दे रही है। आगे का पता नही।

- चलिए, यही सही। तो अब जागते हुए क्या करने की योजना है? क्या शयन काल में जो खोया उसे जागकर पा लेने का इरादा है। साधु का मूल संदेश भी यही तो है।

- खोने के लिए तो कुछ था नहीं मेरे पास और पाने की विश - लिस्ट भी कोई ख़ास बड़ी नहीं। अभी तो 'जागते रहो' के नारे पर अमल करेंगे और दिल को बहलाए रखेंगे कि ऑल इज़ वेल। आगे आँखें भरसक खुली रखके सोने जागने में फ़र्क समझने की कोशिश करेंगे कि कोई और यह तय न करे कि हम सो रहे हैं या जाग उठे हैं। मेरे ख़याल से पत्रकार महोदय, आप भी अपनी जाग्रत अवस्था की जाँच करवा लें। कहीं ये भी नींद का कोई नया वेरिएंट न हो।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

नुसरत मेहदी

गाहे गाहे ही सही, ध्यान में आते रहना
तुम यहीं हो मुझे एहसास दिलाते रहना
दायमी नींद न आ जाये फ़राग़त में कहीं
ख़्वाबे ग़फ़लत में न सो जाऊँ,जगाते रहना
टूट ही जायेगा इक रोज़ उदासी का जुमूद
हिज्र की आँच में जज़्बों को तपाते रहना
रंग लाएगी यक़ीनन ये रियाज़त तेरी
कूज़ागर चाक पे मिट्टी को घुमाते रहना
बाग़ ए हस्ती में बहारें हैं मोअत्तल नुसरत
फिर भी उम्मीद की शाख़ों को बचाते रहना

000

गाहे गाहे - कभी कभी, दायमी- स्थायी, फ़राग़त - फ़ुरसत पाना, ख़्वाबे ग़फ़लत - मदहोशी की हालत, जुमूद - जम जाना, रियाज़त - अभ्यास, मोअत्तल - निरस्त

कोई भी रब्त नहीं लफ़्ज़ और मआनी में
बिखर के रह गया मफ़हूम तर्जुमानी में
अब इसके बाद नहीं चाहते वज़ाहत हम
अगरचे झोल बहुत है तेरी कहानी में
तमाम फ़ैसले ऐलान कर रहे हैं तेरे
है तेरा दिल कई ज़ेहनों की हुक्मरानी में
यक़ीन बाइस ए रंजो मलाल है सो हम
ख़ुशी तलाशते रहते हैं ख़ुशगुमानी में
न जाने कैसे ज़रूरत ही बन गया नुसरत
वो सब जो ग़ैरज़रूरी था ज़िन्दगानी में

000

रब्त - सम्बन्ध, मफ़हूम - आशय, तर्जुमानी - अनुवाद, वज़ाहत - व्याख्या, बाइस - कारण

बात दिल तक आ गई है दरगुज़र कैसे करूँ
ज़िक्र तेरा है तो क़िस्सा मुख़्तसर कैसे करूँ
वक़्त काटूँ किस तरह, शामों सहर कैसे करूँ
सोच में हूँ हिज्र लम्हों को बसर कैसे करूँ
जुस्तजू तेरी यहाँ कारे मुसलसल है मुझे
मैं बहुत मसरूफ़ हूँ कारे दिगर कैसे करूँ
इश्क़ में सहरा नवर्दी, आब्ला पाई का ग़म
तू है नावाक़िफ़ तुझे मैं हमसफ़र कैसे करूँ
इक नज़र टकरा रही है परदये एहसास से
मैं नज़र अंदाज़ तो कर दूँ मगर कैसे करूँ
गोशए दिल में बला का शोर है नुसरत मगर
उसकी यादें हैं तो इनको दरबदर कैसे करूँ

000

ख़ैरियत ग़ैर की मानिन्द हमारी मत पूछ
ये तकल्लुफ़ तो हुआ जाता है भारी मत पूछ
सिलसिले दर्द के कैसे हुए जारी, मत पूछ
और करने दे हमें ज़ख़्म शुमारी, मत पूछ
तेरे होने में न होने का गुमाँ है, सो अभी
दिल को करने दे ज़रा रायशुमारी, मत पूछ
ज़ब्त से काम लिया ख़ुश भी रहे हँस भी दिए
उफ़्फ़ मगर मरहला ए हिज्र गुज़ारी, मत पूछ
कितनी बे रब्त नज़र आती हैं आँखें नुसरत
मौत जब होती है आसाब पे तारी, मत पूछ

000

ज़ख़्म शुमारी- घाव गिनना, मरहला ए हिज्र गुज़ारी- विरह काटने की चुनौती, बेरब्त- असम्बद्ध, आसाब - स्नायु तन्त्र

सुख़न के नाम पे इज़हारे बे दिली मत कर
भटक रहा है तख़इयुल तो शायरी मत कर
हमारा ज़िक्र तवज्जो तलब ज़ियादा है
मज़ीद सोच कोई बात सरसरी मत कर
सदा ये आई जवाबों से मुतमईन हो जा
सवाल पूछ मगर उसकी पैरवी मत कर
अजीब ख़ौफ़ है सूरज की रंगदारी का
कि रात सुब्ह से कहती है रौशनी मत कर
नज़र बचा के गुज़र जा कभी कभी नुसरत
हर इक नज़ारे को आँखों पे लाज़मी मत कर

000

नुसरत मेहदी
विला -20, हैमिल्टन कोर्ट, लाल घाटी,
भोपाल 462030 म.प्र.
मोबाइल- 9425012227
ईमेल - nusratmehdi786@gmail.com

आलोचना रचना का सुविधावादी संस्करण नहीं

डॉ. शोभा जैन

हम एक ऐसे समय में हैं जहाँ आलोचना और रचना के बीच व्यक्ति की घुसपैठ हो चुकी है। शायद यह समय आलोचना से अधिक धारणाओं और विमर्शों के टकरावों का समय है। शिविरों में बंटी आलोचना के कथ्य और शिल्प पर खरे उच्च स्तरीय मानकों की कसौटियाँ क्या होंगी हम नहीं जानते क्योंकि धातु ही खोटी है इन दिनों। एक समय हुआ करता था जब बनारस, इलाहाबाद, कलकत्ता, लखनऊ, पटना, भोपाल, जैसे स्थलों के नाम सुनते ही निष्पक्ष तटस्थ सृजन का भाव स्वत: फूट पड़ता था। लेकिन अब इनमें डूबने, गोते लगाने पर भी वह नहीं मिलता जिसे पूर्वग्रह, आत्म-मोह विहीन हो। कुछ अपवाद ज़रूर हैं जो विदुषी आलोचना के बचे-खुचे अंश सहजने का उपक्रम रच रहे हैं। अज्ञेय कहते रहे हैं कि आलोचक में अहं की स्फीति अच्छी तरह होती है। अज्ञेय ने विनम्र भाव से माना है कि समीक्षक को जैसा सुपठित, शास्त्र-निष्णात् होना चाहिए, वैसे हम नहीं हैं। उसका हमें पूरा ज्ञान है। आचार्यत्व की न हममें पात्रता है, न आकांक्षा किंतु मूल्यों का प्रश्न केवल आचार्य के लिए महत्त्व रखता है।

ऐसा नहीं है, साहित्य के प्रत्येक अध्येता के लिए यह एक गुरुतर प्रश्न है। और लेखक के लिए तो उसकी मौलिकता असंदिग्ध है। आलोचना का अर्थ जाने बिना बल्कि उसका हृदय पक्ष जाने बिना उसके मस्तिष्क के साथ क्रीड़ा करना सदा नुकसानदेय ही रहा। इन दिनों रचनाओं के सर्जनात्मक गुण-दोषों का तो विश्लेषण कम हुआ है, आलोचकों ने उसे अपने सैद्धांतिक मानदंडों के अमूर्त चौखटों (ऐब्सट्रेक्ट केटेगरीज़) में फिट करने का प्रयत्न ही अधिक किया है। अक्सर समीक्षाओं के नाम पर केवल भावुकतापूर्ण प्रशंसा या समग्र लेखकीय योगदान पढ़ने को मिलता है, जिस विधा में रचना लिखी गई है उसके विधा तत्व, विषयवस्तु की प्रासंगिकता पर रज मात्र स्वर सुनाई देते हैं। आलोचना सृजन में अर्थ का अन्वेषण है। आलोचना का काम टीका का नहीं है और न ही वह रचना का कोई सुविधावादी संस्करण है। कहना समीचीन होगा हिन्दी कविता और कथा ने साहित्य में जो स्थान रचा है, वह आलोचना न रच सकी। ढलती आलोचना की शाम में अँधेरे या कुहासे की-सी स्थिति है। कहीं-कहीं कृतिगत आलोचना के नाम पर पुस्तक समीक्षाएँ ज़रूर रची जाती हैं, बल्कि अतिरेक के साथ। प्रतिफल स्वरूप पुस्तक चर्चा का स्वरूप पूर्वापेक्ष: ऊपर उठा है, विवेचनात्मक आलोचना सक्रिय है। लेकिन कविता, नाटक और निबंध जैसी विधाओं में सन्नाटा ही छाया है। आलोचना को किसी फ़ैशन की तरह अपनाकर शैली और रूप की नकली वैज्ञानिकता रचना, उसकी संरचना की अपूरणीय क्षति है।

इन दिनों सबसे पहले तो लिखने की होड़ मची है। फिर अपने लिखे हुए को विधा की श्रेणी में रखने की जल्दबाज़ी क्यों ? इधर कोई घटना घटती है और उधर व्हाट्सएप पर पंक्तियाँ आ जाती हैं, जिसे 'कविता' कह दिया जाता है। नि:संदेह भाव उसमें भी है, विचार भी लेकिन उसे 'कविता', 'संस्मरण' या किसी भी विधा का होने के लिए बहुत सारे सँकरे रास्तों से गुज़रना होगा। चलन और विचलन वाक्य का एक गुण है। लेकिन वह अपनी समग्रता में एक 'विधा का

डॉ. शोभा जैन
304, कृष्णा मेंशन, 21-श्री कृष्ण ऐवेंन्यु (फेसवन-1), लिम्बोदी, खंडवा रोड, इंदौर -452001 मप्र
मोबाइल- 9424509155
ईमेल- drshobhajain5@gmail.com

रूप' कैसे धारण करता है यह गहन अध्ययन का विषय है।

निष्पक्ष आलोचना के अभाव में विधाएँ अपने साथ न्याय नहीं कर पा रहीं। हर विधा की एक भाषा है कुछ मानक। विधा विशेषज्ञ या विधा लेखक होने के लिए बहुत पापड़ बेलने पड़ते हैं। फेसबुक पर पोस्ट चिपकाते समय आपको यह लिखना पड़े कि यह 'ख़ाली स्थान' विधा में मेरा 'ख़ाली स्थान' पढ़िए, इसका अर्थ क्या हुआ। वह क्या लिखा है यह पाठक को तय करने दीजिये। शब्दों की काया में आंतरिक अर्थों का अन्वेषण करना रचना का गुणधर्म है। हालाँकि यह आलोचकों का काम है लेकिन मेरा ऐसा मनना है हर पाठक के भीतर एक आलोचक है अगर वह पत्र -पत्रिकाओं का नियमित 'सेवन' करता है। शब्द के प्रति चौकन्ना, अर्थ के प्रति गंभीर। कहने का अर्थ आपने कहानी, उपन्यास, कविता, व्यंग्य निबंध, ललित निबंध या संस्मरण ही क्यों न हो हर विधा का अपना कला पक्ष होता है, आप केवल शब्दों से खेल खेलकर उसे विधा घोषित नहीं कर सकते। लेखकों को विधा विशेषज्ञ कहलाने की जल्दबाज़ी बहुत है। भाषा के साथ शैली उसका मनोविज्ञान, इन तत्वों पर उपन्यास या कहानी तक कुछ संवाद ज़रूर सुनाई देते हैं शायद यही वजह है हिन्दी कथा साहित्य इन दिनों अधिक समृद्ध हुआ है बल्कि स्त्री लेखकों ने नए प्रतिमान स्थापित किये हैं। कहने का अर्थ पाठकीय प्रक्रिया से गुज़रते वक़्त अक्सर विधा के संकेत भर मिल सकते हैं फिर भी वह पूरी की पूरी विधा होने से अछूती भी रह सकती है। दरअसल साहित्य में हम जिस वैचारिक स्वयत्ता और वैचारिक स्वराज्य पर ध्यान देने की बात करते हैं दरअसल वह हमारे समय के आलोचकों की नज़रअंदाज़ी का ही प्रतिफल है। स्वतंत्र विचार जब तानाशाही विकसित करने लगे, तकनीक जब अमानवीय परिणीतियाँ दिखाने लगे, तब नई स्थापनाओं का समय लौटता है। हिन्दी आलोचना में अब कुछ नई स्थापनाओं की प्रतीक्षा है।

000

ग़ज़ल

ग़ज़ल

इस्मत ज़ैदी 'शिफ़ा'

पड़ने लगी दिलों की ज़मीं पर दरार भी
मिट्टी की तरह कटने लगे एतबार भी
हुश्यार रहना शह्र की इस भीड़भाड़ से
हो सकते हो कभी भी किसी का शिकार भी
अब के ख़िज़ाँ जो आई तो कुछ ऐसे छा गई
गुलशन तक आने पाई न फ़स्ले-बहार भी
वो धूप की तपिश थी कि पत्थर चटख़ गए
फिर यूँ हुआ कि सूख गए आबशार भी
क़ासिद ने आने-जाने की रस्में ही तोड़ दीं
दिल को मगर उमीद भी है इंतज़ार भी

000

अब ख़यालात के इज़हार से डर लगता है
है वो माहौल कि गुफ़्तार से डर लगता है
जिस को बेजुर्म, ख़तावार भी ठहराया गया
उस को ज़ंजीर की झंकार से डर लगता है
जबकि सच्चाई सलीबों पे चढ़ा दी जाए
तब वजूदे रसन ओ दार से डर लगता है
जाने कब कौन लगा दे कोई इल्ज़ाम नया
वो ज़माना है कि अब प्यार से डर लगता है
हुक्म से उन के अना हो गई मजरूह मगर
ऐसी दहशत है कि इन्कार से डर लगता है

000

पीर, दुख, अवसाद से बाधित न हो
देश भ्रष्टाचार से शापित न हो
मत करो विश्वास इक अंजान पर
मानसिकता ही कहीं दूषित न हो
प्रार्थना है उस विधाता से यही
मेरे शब्दों से कोई पीड़ित न हो
तू ने जो सपना सँजोया प्रीत का
मूँद ले पलकें कि वो खण्डित न हो
भावना है मन की, द्वारे पर खड़ी
शब्द के आघात से शोणित न हो
है खुला नभ छू ले तू ऊँचाइयाँ
अब क्षितिज के पार जा, वंचित न हो
अपनी इच्छाओं को वश में रख सदा
ऐसा क्या जीवन जो मर्यादित न हो

000

सारे रंगों को सजाने वाला
दूरियाँ दिल की मिटाने वाला
कोई महफ़िल में नज़र तो आए
अपने वादों को निभाने वाला
अपने हाथों को जला बैठा है
मेरी बस्ती को जलाने वाला
कितनी यादों को लिये आता है
तज़किरा पिछले ज़माने वाला
किस भरोसे पे हमें छोड़ गया
इल्म की जोत जलाने वाला
सो गया, अपनी सदाओं से 'शिफ़ा'
मुर्दा ज़ेह्नों को जगाने वाला

000

ये सच है रुख़ वही पुरनूर होगा
गुनाहों से जो यकसर दूर होगा
मुहब्बत बाँटने निकला जहाँ में
क़लम का वो कोई मज़दूर होगा
तु कैसे ख़ुद ब ख़ुद ही मान बैठा
तेरा जौरो सितम मंज़ूर होगा
ज़रा जा कर तो देखो वो इलाक़ा
फ़ज़ाओं में घुला काफ़ूर होगा
'शिफ़ा' कर लो इलाज ए ज़ख़्म वरना
ये बढ़ कर इक नया नासूर होगा

000

इस्मत ज़ैदी 'शिफ़ा', मकान नं. 1, लाल बिल्डिंग, सिंफनी अपार्टमेंट, गली नं. 10,गफ्फार मंजिल, जामिया मिलिया इस्लामिया के पास, नई दिल्ली 110025
मोबाइल- 7697702823

सिडोना-लाल पत्थरों का स्वर्ग

रेखा भाटिया

मैं जिन तृष्णा के तृप्त होने की प्रतीक्षा में थी, तप रही थी। कहीं न कहीं बड़ी उल्लसित हो रही थी यूटाह राज्य छाँव की ठंडक लाएगा ! कहते हैं न कई बार लेखक त्रिकालदर्शी हो जाता है। कभी सूक्ष्मता से ध्यान दीजिएगा !

आज हम लॉस वेगस से ढाई घंटे दूर यूटाह स्टेट के एक बहुत सुंदर "ज़ायान नेशनल पार्क" में जा रहे हैं। मैं बहुत प्रफुल्लित थी। सुबह-सुबह खाने-पीने को भूल घूमने की अभिलाषा में मन मयूरा बस में नहीं था। यूटाह अमेरिका एक बहुत सुंदर राज्य है। इस स्टेट में पाँच नेशनल पार्क, 46 स्टेट पार्क हैं। यह अमेरिका के सबसे सुंदर राज्य में से एक है। हॉलीवुड मूवी में घोड़े पर सवार, टोपी पहने काऊ बॉय जिन लाल चट्टानों की वादियों में घूमते संसार को रोमांचित करते हैं, उनकी शूटिंग यूटाह स्टेट में होती है। संसार के सबसे अधिक और बड़े डायनासोर प्राणी यूटाह स्टेट में पाए जाते थे। यहाँ कोयला प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यूटाह का 60 प्रतिशत हिस्सा जंगलों से ढका हुआ है, यह एक मरुस्थलीय प्रदेश है और पश्चिम की पर्वत मालाओं में स्थित है। सूखी जलवायु के कारण यहाँ स्नो पाउडर जैसी होती है, जिसे संसार की सबसे आनंददायक स्नो माना जाता है, यहाँ अमेरिका का सबसे बड़ा स्की रिसोर्ट है। यह अमेरिका का सबसे ख़ुशनुमा राज्य है। इस राज्य के हर प्रान्त का कुछ हिस्सा किसी राष्ट्रीय फॉरेस्ट में आता है। यूटाह स्टेट को "बी हाइव" स्टेट कहा जाता है, यहाँ के लोग अमेरिका के किसी अन्य राज्य से सबसे अधिक सेवा का कार्य करते हैं और यहाँ की जनसंख्या में सबसे अधिक तादाद युवाओं की है। यहाँ गर्मी और सर्दी दोनों ऋतुएँ बड़ी चटक रहती हैं।

स्प्रिंगडेल शहर ज़ायान नेशनल पार्क के बाहर ही बसा हुआ बहुत छोटा शहर है, यहाँ से पार्क में जाने के लिए शटल बसें चलती हैं, कुछ होटल और रेस्टोरेंट हैं। बसंत ऋतु में भी यहाँ पर बहुत ठंड थी। ज़ायन नेशनल पार्क के आगमन द्वार से पार्क में भीतर घुसते ही एक अलग दुनिया का नज़ारा मिला, लगा मानों एक ऐसी नायाब दुनिया में प्रवेश कर गए हैं, जिसकी कल्पना कर ऊपरवाला भी दो बार झूमा होगा। अब अधीर मन तो रमना चाहे प्रकृति के रमणीक स्वर्ग में और वास्तविक दुनिया ला पटके यथार्थ के धरातल पर। आप कितने भी विलक्षण प्रतिभा के धनी हों, जब नियमों की भीड़ में खड़े हों, तब कुछ काम नहीं आता। पार्क में दिग्गज खिलाड़ियों ने शीघ्र सुबह पूरी पार्किंग पर कब्ज़ा जमा लिया था। वाशरूम के बाहर आधा मील लाईन थी। पार्क के भीतर खाने के लिए कुछ नहीं मिलता है, ख़ासकर शाकाहारियों के लिए। अब हमारी उत्तेजना कहिए या शातिराना अंदाज़ हमने वही पुराना खेल खेला, करत -करत अभ्यास मिले सफलता ! ज़ायन पार्क में सैलानियों के बढ़ने के साथ ही बसंत ऋतु में कारों के लिए रास्ता बंद कर शटल बसें चलाते हैं। अमेरिका में एक बात है किसी भी दार्शनिक स्थल पर भीड़ पर को बहुत सलीके से नियमित किया जाता है। ठंड की कुढ़ -कुढ़ी में चार तहों में छिपा शरीर, बैग में चिप्स, चॉकलेट, पानी भर पैंतालीस मिनट में शटल बस पकड़ खो गए ज़ायन पार्क में या यों ही कह लीजिए आपके अपने भीतरी स्वर्ग में ! स्प्रिंगडेल शहर से पहाड़ एक दूसरे से दूर-दूर दिखाई पड़ते थे, यहाँ पहाड़ों की आपस की दूरी कम होती जा रही थी। श्यामल बादलों के धूसर -धूमिल रंग में कुहासे की रंगत में सिमट आया एक परीलोक था यहाँ जिसमें थे अनोखे आकारों में मनमोहक खड़ी चट्टानों के पहाड़ों, पठारों की कतारें, कैनियन की कतारें, वादियाँ, घाटियाँ सिर्फ़ और सिर्फ़ नारंगी -पीले रंगों में जिन पर काला रंग इस तरह था मानों किसी चित्रकार ने ब्रश से काले रंग के सीधे स्ट्रोक्स किये हों। चोटियों पर बर्फ़ छिटकी हुई। कहीं दूर से वातावरण में संगीत गूँजता, कल-कल करते पानी का मध्यम शोर, पंछियों का कलरव, गिलहरियाँ, हिरन, छोटे-छोटे सघन वृक्ष, पहाड़ों पर लटकती झाड़ियाँ (हेंगिंग बगिया) जगह-जगह शटल से उतर हम कई स्थानों पर पद भ्रमण करते रहे। लगा मानों राम की अशोक वाटिका या कृष्ण के वृन्दावन में भ्रमण कर रहे हों।

यहाँ एंजल ट्रेल पर हाइकिंग सबसे रोमांचक और ख़तरनाक है लेकिन परमिशन लेनी पड़ती है, जो हमारे पास नहीं थी। वर्जिन नदी पार्क के अंदर बहती है और मिनरल्स की प्रचुरता से

रेखा भाटिया
9305 लिंडन ट्री लेन, शार्लोट, नॉर्थ कैरोलाइना, यू एस ए -28277
मोबाइल- 704.975.4898
ईमेल- rekhabhatia@hotmail.com

इसका पानी हल्का हरा -भूरा राख के रंग का है, यहाँ की वनस्पति भी उसी रंग की थी। एक पॉइन्ट पर जिसे "नैरो पॉइन्ट" कहते हैं, बहती नदी के दोनों ओर कैनियन संकरी होती पास-पास होती जाती हैं। कई पहाड़ों से छोटे-छोटे झरने बहकर नदी में गिरते हैं जैसे शिव की जटाओं से गंगा बह रही हो। कई झरनों की कोमल धारों से पानी बहकर नीचे बर्फ़ बन शिवलिंग के आकर में जम रहा था। आसपास सृष्टि का रंग राख के रंग का था। यहाँ आसपास पंछी, जीव जंतु बेधड़क इंसानों के करीब आ जाते थे। मैं इसे शिव धाम पुकार रही थी, यहाँ का आभास अद्भुत था। यहाँ नदी के किनारे और शांत नदी के भीतर चलकर हाइकिंग करना जग प्रसिद्ध है। यहाँ पद भ्रमण में किसी तीर्थ यात्रा का सुकून था। भीतरी ऊर्जा के शांत स्पंदन की अनुभूति का आभास हो जाता है। आधे दिन के बाद हमने कार से पूरा पार्क घुमा, कहीं प्राकृतिक सुरंगें थी, कहीं झरोखे, कहीं मेहराब, कहीं चौकोर नक़्क़ाशीदार चट्टानों के पहाड़ उन पर चौकोर जमी बर्फ़, चट्टानों की रंगबिरंगी परतें और परतों से बने चपटे ढलाऊ पहाड़, ढलानें ! धरा का एक अंश नहीं बचा था जहाँ अपनेपन की चट्टान की नर्म परतें न हों, जिन पर विचरण सुखद उन्माद से भर रहा था। ज़ायन पार्क नारंगी पहाड़ों, कैनियन का डिज़्नी वर्ल्ड था। यहाँ हर बच्चा बन यात्री क्रीड़ा में मग्न था। 27 करोड़ वर्ष पहले समुद्री घाटी में वक्त, नदी और चट्टानों के समांतर कर्मों का अद्भुत प्रतिफल है ज़ायान पार्क की भौगोलिक संरचना जो आज भी पल-पल भी गतिमान है। तारों की छाँव में यहाँ पार्क के भीतर लॉज में ठहरने की और कैंपिंग की आस सभी के मन में रहती है लम्बी कतारों की वजह से महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यहाँ सबसे ऊँची पहाड़ी "हॉर्स रैंच माऊंटेन " 8, 726 फ़ुट ऊँचा है और सबसे छोटा 3, 666 फ़ुट छोटा है। 5000 फ़ुट की विविधता में समाया यह पार्क धरती का एक वरदान है। अँधेरा घिरने के साथ ही हम लॉस वेगस को कूच करने लगे, चाँद भी खिल आया था अब आसमान में।

वापस आते वक्त हमने वर्जिन नदी के जॉर्ज से होकर एरिज़ोना स्टेट में प्रवेश किया। रात के गहरे घुप्प अँधेरे, घुमावदार ऊँचे काले पर्वत, घुमावदार विशाल घाटी और चक्रव्यूह -सा रास्ता ड्राइव करते वक्त एक भय पैदा कर रहा था, आसमान और ऊँचे पर्वत कहीं घुलमिल एक सार हो चले थे और उनके एकालाप में लुप्त हम बड़ी सावधानी से अपना रास्ता तलाशते साँसें थामे आगे बढ़ते रहे। ठीक इसके विपरीत जब लॉस वेगस पहुँचे थे कोमल बसंत वेला में, प्रकृति अपने मिज़ाज के विपरीत निष्ठुर हो चली थी। ठंड, बारिश, बर्फ़ और ठिठुरन का खेल खेल रही थी। दो दिन लॉस वेगस में गुज़ार हम तीसरे दिन बहुत तड़के पहली रोड यात्रा पर निकले थे। एरिज़ोना स्टेट की बॉर्डर लाइन से यूटाह स्टेट जाने के लिए वर्जिन रिवर का जॉर्ज

(कंठ) को पार करना पड़ता है। 'हाईवे 15' पर 50 करोड़ वर्ष पूरानी पीले रंग की बालू चट्टानों के ऊँचे आड़े -टेढ़े जटिल, दुर्गम पर्वतों की 24 मील लम्बी शृंखला के मध्य साँसें रोकता कार ड्राइव करना बहुत रोमांचक था और चट्टानों के मध्य बहती वर्जिन रिवर का नयनाभिराम दृश्य, पल-पल बदलते दृश्य सुबह की पीली धूप में बसंत से खिल आए थे, जिन्हें पार कर हमने यूटाह स्टेट में प्रवेश किया। वर्जिन नदी के जॉर्ज की भावहीन धरती इतनी शुष्क है कि कुछ इंच लम्बी काँटेदार झाड़ियाँ जो धूल, मिट्टी की परतों को उधेड़ कर बाहर आती हैं। सोच रही थी क्या धरती के दर्द की सीमा उसे इतना ही शुष्क और कठोर बना देती हैं, अंदर की सारी नमी सोखकर !

अगले पड़ाव की ग्रैंड कैनियन की तैयारी थी एक दिन बाद। ग्रैंड कैनियन की यात्रा इस यात्रा का उद्देश्य था और मनोकामना भी, वह वजह भी थी तृष्णा की...उस यात्रा का वृतांत तो आप जान ही चुके हैं। साथ हुआ हादसा भी...

ग्रैंड कैनियन से आगे हमें जाना था सिडोना, एरिज़ोना राज्य का एक शानदार रहस्यमयी शहर, ग्रैंड कैनियन से तीन घंटे की दूरी पर बसा है। भला हो आज के ज़माने में उपलब्ध ऑनलाइन जानकारी का। जीवन में मंज़िल के साथ मंज़िल तक पहुँचने के रास्ते बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। रास्ते सुंदर हों तो यात्रा यादगार और आनंददायक हो जाती है। अमेरिका की सड़कें सिर्फ़ सड़कें न होकर यही आनंद है। अवसर मिले तब इन्हीं ख़ूबसूरत रास्तों को चुनना चाहिए, यात्राओं की थकान नहीं रहती साथ ही उत्साह बना रहता है। हमने पहले ग्रैंड कैनियन से फ्लैगस्टाफ़ तक का सफ़र तय किया जाकर ताकि वहाँ से सिडोना तक एक बहुत ख़ूबसूरत रस्ते का आनंद उठा सकें। रास्ते में कई अवशेष हाईवे पर बिखरे पड़े थे जहाँ समय धरती के अतीत में लेकर जाता है, पुरानी सभ्यताओं में लेकर जाता है। कई पर्वत रास्ते में दिखे जो ज्वालामुखियों के फटने से बने थे।

फ्लैगस्टाफ़ से सिडोना के लिए "ओक क्रीक कैनियन हाइवे 89" लिया। एक घंटे का

रास्ता बहुत ही ख़ूबसूरत था। मरुस्थल के मध्य बहुत हरियाली और ठंडे मौसम में पाइन ट्री के जंगल, पीले ऊँचे पहाड़ एक अनोखा स्थान बेहद सुखद अनुभूति रही। पहाड़ों के घुमावदार मोड़ों से ड्राइव करते हम कई हजार फ़ीट नीचे आने लगे तब लाल चट्टानों के ऊँचे पर्वत-पठार दिखने लगे, सिडोना करीब आ रहा था। रास्ते में किनारों पर कई छोटे नाले बहते हैं, जहाँ पर्वतों के क्लिफ़्स के नीचे पिकनिक एरिया और कैंप ग्राउंड हैं। दृश्यों को निहारते- निहारते आँखें ठगी रह गई जब प्रकृति के उस निखरे रूप में आ पहुँचे जहाँ प्रकृति का यौवन चरम पर था। इस मायावी, जादुई नगरी के इश्क़ में मैं पहली नज़र में ही पड़ गई। सिडोना शहर की पहली झलक पाते ही शायद यही प्रतिक्रिया होती होगी सबकी, मरुस्थल का कश्मीर ! हमने 14 मील लम्बा रेड रॉक स्टेट पार्क रमणीक हाईवे 179 लिया, जो सिडोना के दिल से गुज़रता है। विभिन्न आकारों के कई सौ फुट ऊँची गहरे लाल रंग की चट्टानों के पहाड़ जिनमें कई मीनारों से, कई दुर्ग से और उन पर केसरी, नारंगी, पीली परतें पृथ्वी के मादक कर देने वाले सौंदर्य का अनुपम उदहारण हैं। इस शहर को मैं मरुस्थल का स्वर्ग कहूँ तो ग़लत न होगा। कश्मीर की पहाड़ी सुंदरता और सिडोना की लाल चट्टानों की सुंदरता कुदरत के अनमोल रत्न हैं इस धरती पर। लाल चट्टानों वाला ग्रैंड कैनियन पृथ्वी की सतह के भीतर छिपा है और सिडोना सतह के ऊपर लेकिन एकदम भिन्न भौगोलिक संरचना। इसकी सुंदरता विस्मयकारी है, लगता है मानों सचमुच में स्वर्ग ऐसा ही दिखता होगा। इसकी विभिन्न आकारों में विशाल लाल पत्थरों की जिवंत आकृतियाँ चट्टानें ऐसी प्रतीत होती हैं मानों लाखों वर्षों तक लाखों शिल्पकारों ने इन कलाकृतियों को बनाया होगा प्रकृति ने नहीं। मस्तिष्क को विश्वास नहीं होता यह कार्य प्रकृति का है।

किसी कवि की कविता, किसी शायर की ग़ज़ल और किसी पेंटर की पेंटिंग की सबसे ख़ूबसूरत कल्पना के अंतिम छोर से ऊपर है इस शहर की सुंदरता। करोड़ों हज़ारों वर्षों

पहले सभी महाद्वीप एक बड़े भूखंड में आपस में जुड़े थे फिर धीरे-धीरे अलग होने लगे। इस प्रक्रिया में कहीं बहुत दबाव बढ़ा, कहीं कम हुआ, कहीं पृथ्वी की सतह ऊपर उठी, कहीं समुंदर सतह के भीतर तक आ गया, फिर बह गया। पीछे रेत छूट गई, करोड़ों वर्षों में रेत के ऊँचे टीले दबाव में जमकर चट्टानों में बदल गए, इस रेत में लोह तत्व भरपूर मात्रा में था और हवा के साथ रासायनिक क्रिया कर आयरन ऑक्साईड में परिवर्तित हो गया, जिसका रंग लाल होता है। ऐसी भौगोलिक प्रक्रिया ने सिडोना शहर को जन्म दिया और उसका लाल रंग दिया। सन् 1902 में इसे शहर का दर्जा मिला।

जिस स्थान को प्रकृति के प्यारे हाथ लगते हैं, उस स्थान के हृदय में प्रेम और पवित्रता सूक्ष्म रूप में आ जाती है और सकारात्मक

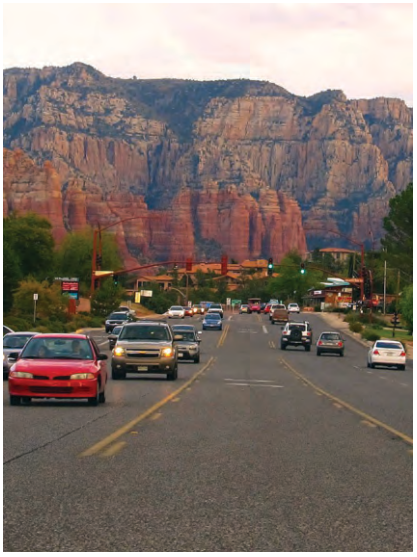

ऊर्जा की शक्ति आ जाती है। उस शक्ति से भीतरी पोषण और भराव होता है। सिडोना शहर संसार के कुछ स्थानों में से है जहाँ कई वोर्टेक्स पॉइंट हैं। विश्वास किया जाता है पृथ्वी पर वोर्टेक्स पॉइंट चंद ऐसे स्थान हैं जहाँ से पृथ्वी के भीतर से ऊर्जा निकलती है या पृथ्वी में प्रवेश करती है। उन स्थानों पर जाने से, वहाँ पर योग-ध्यान करने से आध्यात्मिक विकास होता है और हीलिंग होती है। यहाँ के मूल नेटिव इंडियंस के लिए हज़ारों वर्षों से सिडोना तीर्थ स्थल है। जैसे हम सम्पूर्ण भारत में तीर्थ यात्राओं पर जाते हैं और रोगों से मुक्ति पाने आश्रमों में। वैसे ही यहाँ लोग लाखों की तादाद में हर साल इसी उद्देश्य से आते हैं। यह स्थान आधुनिक युग में अध्यात्म के विकास और मन की शांति को पाने का अमेरिका में और दुनिया में एक प्रमुख स्थान बन गया है। यहाँ कई सौ मैडिटेशन सेंटर्स और आश्रम हैं। पहाड़ों पर, चट्टानों पर, नदी किनारों पर, वनों में कई लोग योग-ध्यान में लीन दिख जाते हैं। प्रकृतिक सुंदरता से लबालब यह बेजोड़ छोटा-सा शहर हजारों कलाकारों को आकर्षित करता है। यहाँ कई आर्ट गेलेरियाँ हैं, रेस्तोरां हैं और शॉपिंग के लिए बेजोड़ वस्तुओं की दुकानें। बुद्ध भगवान् के मंदिर हैं, कई चर्च हैं। पूरा शहर ही किसी आर्ट गैलेरी-सा प्रतीत होता है।

"क्या गिरजा, क्या मंदिर यहाँ सृष्टि स्वयंभू हो स्वयं को रचती आशीर्वादों की झड़ियाँ लगा रही है गगनचुंबी चट्टानों के विशाल बगीचे में", प्रकृतिक छटा यहाँ प्रचुरता में बिखरी पड़ी है। सिडोना का कोना-कोना एक फोटोग्राफर के लिए स्वर्ग है।

हमारा पहला पड़ाव था सन् 1956 में 1000 फुट ऊँची लाल चट्टानों पर बना पिरामिड शेप का "चैपेल ऑफ़ द होली क्रॉस रोमन कैथेलिक चर्च", झीने अलौकिक प्रकाश से लिपटा, सूर्य की लाल रोशनी में रोशन। यहाँ चढ़ाई कर जब ऊपर आते हैं, हर दिशा में शहर और ऊँची लाल विशाल चट्टानों की प्राकृतिक कलाकृतियों के अद्भुत संगम के भव्य दर्शन होते हैं। भीतर चर्च में असीम शांति का एहसास होता है जैसे

किसी मंदिर में दर्शन कर होता है। हर नस्ल, रंग और जाति के लोग यहाँ आते हैं।

हमारा अगला पड़ाव था पहाड़ पर 285 फ़ुट ऊँची "कैथड्रल रॉक", सूर्यास्त देखने के लिए यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। यह एक लोकप्रिय वोर्टेक्स पॉइंट है। छोटी पार्किंग, लंबी कतारें, सूर्य से होती हमारी होड़, मन कर रहा था सूर्य शाम के उस कोने में वहीं ठहर जाए और यह शाम जीवन की कभी न ख़त्म होने वाली शाम बन जाए। भाग्य अच्छा था, जल्द ही पार्किंग मिल गई। हमने तीव्र ढलान वाली पगड़डी से चट्टान पर चढ़ाई करना शुरू किया। पैरों के साथ हाथों का सहारा लेते हुए चढ़ाई करना पड़ती है। आधी चढ़ाई के बाद ही मिलते भीतरी सुकून से मैं उत्तेजना में भर उस चट्टान पर लेट गई और आकाश को निहारती रही, उसके बदलते रंगों में बसंत के सूरज की अठखेलियाँ बहुत लुभावनी थीं। यहाँ लोगों की बहुत भीड़ थी लेकिन बहुतायत अमेरिकी पर्यटक ही थे। दो तिहाई चढ़ाई चढ़ने के बाद चढ़ाई बहुत मुश्किल थी।

उसके बाद हमने हाईवे 179 के दोनों ओर का लुत्फ़ उठाते, सूरज से स्पर्धा करते "बेल रॉक" का रुख किया। दूर से दिखती 480 फ़ुट ऊँची घंटी के आकर की गहरी लाल "बेल रॉक" अनुपम लगी। डूबता सूरज अपनी लालिमा "बेल रॉक" को सौंप कर दूर क्षितिज में जाने को बेकरार था। दिनभर में सूरज की बढ़ती-घटती रोशनी से इन लाल चट्टानों का रंग बदलता हुआ भिन्न दिखता है। पहाड़ों की लाली में सूरज की लाली के मिलने से यह रंग और गहरा हो गया था। वातावरण गहन शांति में डूब रहा था, आसपास पसरता सूनापन, हम लाल पगड़डियों पर अति शीघ्र चल पड़े।

अँधेरा घिर आया था, आसमान साफ़ था, कई तारे चमक रहे थे। सिडोना संसार में उन कुछ स्थानों में से एक है जहाँ रात में स्वस्थ, सघन अँधेरा होता है और साफ़ आकाश में बिना दूरबीन तारों को एकटक देखा जा सकता है। 1930 में "प्लूटो" नवें ग्रह की खोज भी यहीं हुई थी, अब वह ग्रह नहीं कहा जाता है।

सिडोना में कई वोर्टेक्स पॉइंट हैं जिनमें "एयरपोर्ट मेसा" और "बॉयटॉन केनियन"

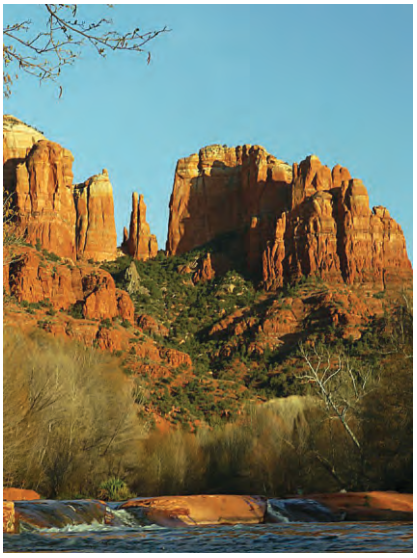

बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ दो स्टेट पार्क हैं और शहर उनके बीचों बीच बसा है। यहाँ हाईकिंग, कैम्पिंग, बाइकिंग, ट्राली टूर, जीप टूर बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ एक नेचरल वाटर पार्क है। यहाँ हेलीकॉप्टर टूर भी उपलब्ध हैं। कहा जाता है जो भी सिडोना आता है, वह फिर कई बार आता है। आध्यात्मिकता इस शहर की रूह में बसती है। इस शहर का इतिहास कई सदियों पुराना है। लेकिन अब यहाँ व्यवसायीकरण बहुत बढ़ता जा रहा है। मुझे याद आया भारत में भी तीर्थ स्थलों पर बहुत भीड़ रहती है। सिडोना ने मेरी रूह को झनझनाया था जैसे तीर्थ करने के बाद होता है।

सिडोना में जाकर एक शांति और विस्मय का अहसास था, न पता था, न सोचा था प्रकृति की इतनी ख़ूबसूरत नैसर्गिकता के बारे में। इंसान प्रकृति में जाता भीतर समाता चला

जाता है और स्वयं विस्मित हो जाता है जैसे एक छोटा ऊर्जा पुंज एक बड़े ऊर्जा पुंज के द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है।

रात बारह बजे हम फ्लैगस्टाफ़ शहर के होटल में पहुँचे। रात रुकने के लिए हमने फ्लैगस्टाफ़ चुना क्योंकि अगली सुबह दूसरे शहर 'पेज' जाना था। यहाँ से पेज दो घंटे दूर है सिडोना से तीन घंटे। पेज शहर को सन् 1957 में बसाया गया था। यहाँ ग्रैंड कैनियन जितनी सुंदर 'ग्लेन कैनियन' हैं जिसे लाखों वर्षों में कोलोराडो नदी ने काटा है। यहाँ डेम बनाकर विशाल 'लेक पावेल' का निर्माण किया गया। ग्लेन कैनियन का बहुत बड़ा हिस्सा लेक पॉवेल की सीमा में चला गया। पेज शहर की ओर जाते हुए हाईवे के दोनों ओर विविध रंगों के रेत के टीले नुमा पहाड़ और गहरे कत्थई पहाड़ दिखते हैं। मरुस्थलीय लैंडस्केप की सुंदरता मनभावन है। यहाँ तांबे का खनन होता है। मैंने रात ही होटल से पेज शहर में गुफाओं नुमा "एंटोलोप कैनियन" का टूर बुक कर दिया था।

"एंटोलोप कैनियन" के टूर सिर्फ़ नेटिव इंडियंस के द्वारा ही लिए जा सकते हैं। पेज में पहुँच कर वहाँ से "एंटोलोप कैनियन" तक ले जाने के लिए एक खुले टेम्पो में भरकर पर्यटकों को कच्चे बालू रेत भरे रास्ते से 3 मील दूर गंतव्य स्थान पर ले जाया गया, अमेरिका में एक मज़ेदार अनुभव था। एंटोलोप कैनियन एक 30 मील लम्बी कैनियन है जिसमें लाखों वर्षों तक वर्षा और स्नो के पानी ने भराव और बहाव से रेत की चट्टानों में कई दरारें और कई आकारों में छिद्र बनाए। इन अँधेरी दरारों से दिन के अलग-अलग समय में सूर्य की किरणें अलग-अलग दिशाओं से छनकर जब भीतर प्रवेश करती हैं, तब भीतर चट्टानों के विविध रंग और रूप दिखाई पड़ते हैं। इनका आभास बहुत जादुई होता है जैसे सुर्ख़ नारंगी दिल का आकर मेरा पसंदीदा रहा। बाहर से यह छोटे पहाड़ किसी छोटे दुर्ग या उल्टे कटोरे से दिखते हैं। पर्यटकों को यहाँ ग्रुप में लाया जाता है और जिसके लिए एडवांस बुकिंग करनी पड़ती है। यह स्थान फ़ोटोग्राफर्स का स्वर्ग है। सन् 1997 में इस स्थान का एक

फ़ोटो 65 लाख डॉलर में बिका था। भीतर जाते ही आप एक अलग और रोमांचक दुनिया में आ जाते हैं। बाहर का कोई शोर-शराबा नहीं, भीतर ठंडे तापमान और झीने अँधेरे में 120 फ़ुट ऊँचाई से छन कर आती सूर्य की किरणें और धारियों वाली घुमावदार पत्थरों की दीवारों के बदलते रंग नारंगी, सुनहरे, बादामी, गहरे कत्थई, बैंगनी, गहरे नीले बड़ी नाटकीय अनुभूति होती है। हर घंटे में सूर्य की बदलती अवस्था के साथ भीतर का दृश्य बदल जाता है। विश्वास नहीं होता कि इन सुरंग नुमा दरारों में पानी बड़े नाटकीय अंदाज़ में अपने चित्र स्वयं इन पत्थरों की दिवारों पर उकेरता इन दिवारों को बहुत सारे आकारों में तराशता है। बहुत नाटकीय लग रहा था सब, मानों किसी फिल्म का सेट हो। एक घंटे तक कैनियन के भीतर हृदय का विस्मयकारी टूर लेकर जब वापस बाहर आए, तब मेरे हृदय का नक्शा बदल चुका था। सैकड़ों तस्वीरें लीं, मन नहीं भर रहा था, सम्मोहित कर देने वाला मनमोहक नज़ारा था। यहाँ और भी कई स्लॉट (दरार) कैनियन हैं और उनके टूर लिए जाते हैं। चार बज चुके थे और अभी 475 किलोमीटर, साढ़े चार घंटे वापस ड्राइव करना था लॉस वेगस के लिए। बसंत में दिन खुल जाते हैं लेकिन गर्मियों की तरह लम्बे नहीं होते। मृग मरीचिका बन तृष्णा अतृप्त ही रहती है, नई तृष्णाओं को जन्म देती है। हालाँकि यह योजना में शामिल नहीं था लेकिन मैंने बताया न आपको, मेरी तृष्णा ने कई नए द्वार खोले थे। विस्मयकारी प्रकृति की विभिन्न कला विधाओं की दिव्यता को जानने और देखने में गहरी आस्था जो भीतर थी, प्रत्यक्ष जन्म ले चुकी थी।

मैंने पत्रिकाओं और वीडियो में देखा था "हॉर्स शू बैंड", मुझे वहाँ जाना था। स्थानों के लिए मेरी अधिक जानकारी सहायक भी होती है और बंधन भी बन जाती है। फिर वही तय हुआ, हिम्मत करते हैं और जल्द ही वहाँ से होकर चलते लॉस वेगस हैं। पाँच मील शहर से बाहर आ पहुँचे गंतव्य पर। बहुत भीड़ थी। टिकट खरीद पार्किंग लॉट में आए। एक बड़ा पोस्टर लगा था वहाँ, और सामने खुला बड़ा

खाली मैदान, दूर कुछ चट्टानें यही दिखाई दे रहा था। यकीन नहीं हो रहा था यह विश्व प्रसिद्ध स्थान है और 4000 लोग प्रति दिन यहाँ आते हैं। साथी की चाल अब थकान में कुछ ढीली पड़ गई थी। मैं आगे-आगे चलती पहले पहुँच गई। एक मील तक चलकर आई, थक तो मैं भी गई। लेकिन पहली ही नज़र में जैसे ही "हॉर्स शू बेंड" पर दृष्टि पड़ी, साँसें रुक गई। यहाँ जैसे लॉटरी लग गई, यह जगह तो किसी पोस्टर और वीडियो से हज़ार गुना अधिक आश्चर्यजनक रूप से ख़ूबसूरत थी। थकान कहीं छू मंतर हो गई, भूख-प्यास दूर कहीं छुट्टियाँ मनाने चली गई। कोलोराडो रिवर ने अपना रास्ता बनाने के लिए कठिन श्रम से ग्लेन कैनियन की कठोर चट्टानों को 50 लाख वर्षों में 270 अंश के कोण से 1000 फ़ुट गहरी घाटी में काटा है। यह घुमावदार कटाव

घोड़े की नाल जैसा अर्ध गोलाकार है, तभी इसे "हॉर्स शू बेंड" पुकारा जाता है। सवा पाँच बज चुके थे, सूर्य अस्त होने से पहले आसमान में घाटी के ऊपर उसी स्थान पर खड़ा था, जहाँ से उसकी किरणें सीधी नदी पर पड़ रही थीं। नदी जो कि नीचे गहरी घाटी में बहती है, चमकीला नीला पारदर्शी रूप धारण कर चुकी थी। ऊपर से नदी रहस्यमयी जादूगरनी -सी दिख रही थी, जिसके मोह पाश में सभी बँध रहे थे, जिसे गहरी नारंगी-कत्थई ग्लेन कैनियन घाटी की भुजाओं ने थाम रखा था। नदी को कोई जल्दी नहीं थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों नदी ख़ुश है और इन क्षणों का भरपूर आनंद ले रही है। आसपास पेन केक (पराठों) -सी फैली कत्थई चट्टानें अपनी कठोरता त्याग नरमी से पर्यटकों के स्वागत में बिछी हुई बड़ी आरामदायक लगती थीं। मैं परी लोक के उस भू दृश्य में खोई हुई, चट्टानों पर चढ़कर ख़ूब घूमी, ख़ूब तस्वीरें भी लीं। मैं उन पलों को भरपूर कैद करना चाहती थी मन-मस्तिष्क में, जिसने जीवन के उन पलों को बहुत जीवंत बना दिया था। प्रकृति के करीब जाकर ख़ुद को बेलगाम खो देना ही वह क्षण हो सकता है।

हमने ड्राइविंग शुरू की लॉस वेगस के लिए। सच बताऊँ रास्ते में गुज़रते लेक पॉवेल, कनाब शहर और उसके आसपास के पहाड़, कैनियन, उनके रंग, आकार, विशालता निहारते-निहारते उस जगह को छोड़ने से मन उदास हो रहा था। कितनी शामें हमने कितनी ही तरह की कैनियन के पीछे डूबते सूरज को देख गुज़ारीं। सैकड़ों मील ड्राइव किया। एरिज़ोना, नवाडा और यूटाह स्टेट तीन राज्यों के मध्य से। दिन ढल जाने तक साथी ने ड्राइव किया, मैं नज़ारे देखती रही। अब मेरी बारी थी, अँधेरा घिर आने के बाद भी कई कैनियन अपनत्व से दूर तक साथ देती रहीं। मैं सोचती रही कहाँ से बहुत सारा आत्मविश्वास भर जाता है यात्राओं में। रास्ते में सेंट जार्जिया के पास हाईवे घंटों बंद रहा। हम एक सेंडविच पर जिंदा सात घंटों बाद रात एक बजे लॉस वेगस की सड़कों पर थे...

000

मालवा की संस्कृति, स्वाद और साहित्य के रंग एक साथ दिखे शिवना साहित्य समागम और अलंकरण समारोह में

आकाश माथुर

अब सीहोर का नाम देश भर में जाना जा रहा है, लेकिन जिस शहर का नाम नहीं सुना था, उस शहर का नाम एक साहित्यकार ने देश भर में प्रसिद्ध कर दिया। साहित्य के क्षेत्र में सीहोर का नाम पहले जाना गया और अब शिवना प्रकाशन सीहोर को साहित्य का गढ़ बना रहा है। शिवना प्रकाशन का साहित्य समागम और अलंकरण कार्यक्रम ख़ास होता है और यही कार्यक्रम इस शहर को साहित्य का गढ़ बना रहा है। कार्यक्रम में जिन साहित्यकारों को सम्मानित किया जाता है, उनका चयन निर्णायक मंडल बारीकी से अध्ययन कर करता है। जिससे चयन में हमेशा पारदर्शिता बनी रहती है।

उक्त बातें 31 मार्च 2024 को शहर के क्रीसेंट रिज़ॉर्ट एंड क्लब के लीज़ो हाल में आयोजित शिवना साहित्य समागम कार्यक्रम में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार और व्यंग्य यात्रा के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय ने कहीं। वे बतौर मुख्य अतिथि इस कार्यक्रम में शामिल हुए थे। कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में मौजूद वरिष्ठ कथाकार और उपन्यासकार गीताश्री ने कहा कि शिवना प्रकाशन एक सराहनीय कार्य कर रहा है। साहित्यकारों के सम्मान में इस तरह के आयोजन नहीं किए जाते। यह आयोजन उत्सव की तरह है और उत्सव हमें ऊर्जा देते हैं। यह आयोजन साहित्यकारों को प्रोत्साहित करता है। साथ ही शिवना हमेशा से ऐसे साहित्यकारों, जो बड़े शहरों के प्रकाशनों के चक्कर काट कर साहित्य से दूर होने लगने हैं उनका साथ देता है। नए लोगों को आगे लाने के लिए शिवना निरंतर प्रयास कर रहा है। यह आयोजन लगातार नई ऊँचाइयों को छू रहा है और आगे भी इसी तरह निरंतर आगे बढ़ता रहेगा। कार्यक्रम में मालवा की संस्कृति, स्वाद और साहित्य के रंग एक साथ दिखने को मिले।

साहित्य को छोटे शहरों और गाँवों से जोड़ने का प्रयास हम सब को करना चाहिए

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार महेश कटारे ने कहा कि छोटे शहर, क़स्बे और गाँव अब भी साहित्य से दूर हैं। शिवना प्रकाशन एक छोटे शहर में काम कर रहा है और बड़े देशों के साहित्यकारों की किताबें छाप रहा है। साहित्य को छोटे शहरों और गाँवों से जोड़ने का प्रयास हम सब को करना चाहिए। शिवना इस दिशा में काम कर रहा है यह सुखद है और सराहनीय भी। कार्यक्रम में मध्यप्रदेश के कई शहरों के साथ ही दूसरे प्रदेश के साहित्यकार भी शामिल हुए। कार्यक्रम का संचालन कर रहे प्रसिद्ध साहित्यकार पंकज सुबीर ने अतिथियों को सीहोर के बारे में विस्तार से जानकारी दी। उन्होंने बताया कि सीहोर शरबती गेहूँ के लिए प्रसिद्ध है और हमारे शहर के अनाज व्यापारी श्री अनिल पालीवाल ने एक पहल की है। वे चाहते हैं कि अतिथियों को स्मृति चिह्न के रूप में शरबती गेहूँ भेंट किया जाए। ताकि वे जान सकें कि सोने सी चमक वाले सीहोर के शरबती गेहूँ की क्या ख़ास बात है।

कार्यक्रम का शुभारंभ मालवा के कबीर गीतों की प्रस्तुति के साथ हुआ। कबीर के भजनों की प्रस्तुति अंचल के भजन गायक प्रह्लाद प्रजापति ने दीं। सभागार में उपस्थित श्रोतागण श्री प्रजापति के भजनों पर ख़ूब तालियाँ बजाते रहे। अतिथियों द्वारा दीप प्रज्ज्वलन के साथ शुभारंभ के बाद मंचासीन अतिथियों डॉ. प्रेम जनमेजय, श्री महेश कटारे तथा गीताश्री जी का स्वागत कार्यक्रम समन्वयक आकाश माथुर, पंखुरी पुरोहित तथा शिवना महाप्रबंधक शहरयार ने पुष्पगुच्छ भेंट कर किया।

सम्मानित लेखक

शिवना सम्मानों के लिए बनाई गई चयन समिति के संयोजक तथा लेखक आकाश माथुर और प्रकाशन के महाप्रबंधक शहरयार खान ने बताया कि शिवना द्वारा दो सम्मान प्रदान किए जाते हैं। एक 'अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान' जो वर्ष भर में सभी प्रकाशनों द्वारा प्रकाशित साहित्य की सभी विधाओं की पुस्तकों में से निर्णायकों द्वारा चयनित एक पुस्तक को प्रदान किया जाता है तथा दूसरा 'शिवना कृति सम्मान' जो वर्ष भर में शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में गुणवत्ता तथा विक्रय के सम्मिलित आधार पर एक पुस्तक को प्रदान किया जाता है। वर्ष 2023 के लिए शिवना प्रकाशन ने अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान से कवि, गद्यकार यतींद्र मिश्र को वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उनकी किताब 'गुलज़ार साब-हज़ार राहें मुड़ के देखीं' के लिए सम्मानित किया। वहीं शिवना कृति सम्मान कविता संग्रह इतना तुम मय होकर के लिए लेखक स्नेह पीयूष को प्रदान किया गया। वर्ष 2021 का अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान, वरिष्ठ कथाकार हरि भटनागर को उनके शिवना प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'दो ग़ज ज़मीन' के लिए तथा और 2022 का अंतर्राष्ट्रीय शिवना सम्मान कवि, कथाकार नीलेश रघुवंशी को राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित उनके उपन्यास 'शहर से दस किलोमीटर' के लिए प्रदान किया गया। शिवना कृति सम्मान वर्ष 2021 के लिए ओमप्रकाश शर्मा उनके यात्रा वृत्तांत 'नर्मदा के पथिक' के लिए और आदित्य श्रीवास्तव को उनकी रिपोर्ताज पुस्तक 'वायरस से वैक्सीन तक' के लिए संयुक्त रूप से प्रदान किया गया। आयोजन में ढींगरा फैमली फाउंडेशन इंडिया द्वारा समाजसेवी अखिलेश राय को 'अवार्ड ऑफ एक्सीलेंस' सम्मान से सम्मानित किया। सम्मानित लेखकों का परिचय पारुल सिंह ने प्रस्तुत किया। सभी सम्मानित लेखकों ने इस अवसर पर श्रोताओं के साथ अपनी रचना प्रक्रिया को साझा किया। तथा चयन समिति के प्रति अपना आभार व्यक्त किया।

किताब विमोचन

शिवना प्रकाशन ने आयोजन में दो किताबों का विमोचन भी किया। लेखक शैली बक्षी खड़कोतकर के कहानी संग्रह 'सुनो नीलगिरी' और लेखक पारुल सिंह के उपन्यास 'ऐ वहशते-दिल क्या करूँ' का विमोचन इस अवसर पर किया गया। अतिथियों ने दोनों लेखकों को शिवना प्रकाशन की ओर से सम्मानित किया।

कार्यक्रम के अंत में मंचासीन तीनों अतिथियों को कवि, कथाकार श्री संतोष चौबे, वरिष्ठ पत्रकार श्री पलाश सुरजन, श्रीमती ज्योति जैन तथा श्रीमती रश्मि व्यास ने अंगवस्त्र तथा स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया।

महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ

आयोजन में ऑनलाइन अमेरिका से जुड़ीं वरिष्ठ साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने कार्यक्रम को ऑनलाइन संबोधित किया। उन्होंने अपने संबोधन में शिवना की आगामी कार्य योजनाओं से भी अवगत कराया। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ साझा की। उन्होंने कहा कि इस वर्ष से शिवना प्रकाशन एक 'शिवना नवलेखन पुरस्कार' भी प्रारंभ करने जा रहा है, जो 35 वर्ष से कम आयु के लेखक/लेखिकाओं को उनकी किसी भी विधा की पहली पांडुलिपि के लिए प्रदान किया जाएगा। हर वर्ष अलग-अलग विधाओं के लिए पांडुलिपियाँ आमंत्रित की जाएँगी। चयनित श्रेष्ठ पांडुलिपि को पुरस्कार राशि प्रदान की जाएगी तथा शिवना से उस पांडुलिपि का प्रकाशन किया जाए। इस वर्ष से शिवना प्रकाशन की अपनी वेबसाइट shivnaprakashan.com काम करना प्रारंभ कर देगी। शिवना द्वारा अपनी किताबों की बिक्री अपनी वेबसाइट से भी की जाएगी। साथ ही यहाँ शिवना के लेखकों के परिचय सहित उनके बारे में पूरी जानकारी भी उपलब्ध रहेगी। शिवना प्रकाशन इस वर्ष से एल.एल.सी. कंपनी के रूप में शिवना प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड के नाम से काम करना प्रारंभ देगा। डॉ. ओम ढींगरा, जो एस ओ वी थेराप्यूटिक्स फार्मा कंपनी के प्रेज़िडेंट

और कई फार्मा कंपनियों के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर हैं, इस कंपनी के सी.ई.ओ. के रूप में कार्य करेंगे। सुधा ओम ढींगरा ने कहा कि शिवना प्रकाशन इस वर्ष से अमेरिका में भी एल.एल.सी. के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर देगा। एक अन्य महत्त्वपूर्ण घोषणा करते हुए उन्होंने कहा कि शिवना प्रकाशन अमेरिका के सरकारी वेंडर के रूप में रजिस्टर्ड हो चुका है। शिवना प्रकाशन द्वारा पुस्तकों की पहली खेप प्रदान भी की जा चुकी है। अब शिवना की किताबें अमेरिका की पब्लिक लाइब्रेरीज़, जो हर शहर, हर क़स्बे में हैं, हिन्दी प्रेमियों और पाठकों को मिलेंगी। यूनिवर्सिटीज़ के हिन्दी विभागों में तथा पुस्तकालयों में स्टूडेंट्स को शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किताबें मिल सकेंगी। उन्होंने कहा कि शिवना प्रकाशन ने इसी वर्ष से अपनी ऑडियो बुक्स लांच करना शुरू कर दिया है। यह कार्य इस क्षेत्र की प्रतिष्ठित कंपनी 'रचनाएँ' के साथ मिल कर किया जा रहा है। ऑडियो बुक्स के साथ-साथ 'रचनाएँ' की वेबसाइट तथा मोबाइल एप पर शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों को 'ई-पुस्तक' के रूप में भी ख़रीद कर पाठक पढ़ सकेंगे।

कार्यक्रम में बाहर से आने वाले अतिथियों में श्री संतोष चौबे, श्रीमती विनीता चौबे, श्री एवं श्रीमती पलाश सुरजन, श्री पियूष सोनकर, श्री एवं श्रीमती मुकेश वर्मा, श्री एवं श्रीमती सविता भार्गव, श्री शशांक गर्ग, श्री वसंत सकरगाए, श्री विनय उपाध्याय, ज्योति रघुवंशी जी, श्री रणविजय राव, श्री कैलाश मंडलेकर, श्रीमती ज्योति जैन, श्री शरद जैन, श्रीमती हेमलता मिश्रा, श्रीमती राखी गुप्ता, श्री मनु व्यास, श्रीमती रश्मि व्यास, श्री एवं श्रीमती स्मृति आदित्य, श्री तिलक राज कपूर, श्री संतोष तिवारी, श्री मनीष वैद्य, श्री मोहन वर्मा, श्री एवं श्रीमती यशोधरा भटनागर, श्री एवं श्रीमती शैलेन्द्र शरण, श्री गोविंद शर्मा, श्री अरुण सातले, रश्मि दुधे आदि प्रमुख थे। भोपाल, इन्दौर, देवास, ग्वालियर, खंडवा, दिल्ली से अतिथि इस कार्यक्रम में पधारे। कार्यक्रम की आयोजन समिति के सदस्यों सुधा ओम ढींगरा, डॉ. ओम ढींगरा, लोकेंद्र

मेवाड़ा, दिलीप शाह, अनिल पालीवाल, कैलाश अग्रवाल, अशोक राय, राजेश चाण्डक, उमेश शर्मा, सुदर्शन राय, हितेन्द्र गोस्वामी, सुनील भालेराव, रेखा पुरोहित, अनीता भालेराव, राजकुमार राठौर, अथर अली, सुरेंद्र सिंह ठाकुर, स्वदेश विश्वकर्मा, जोरावर सिंह, सनी गोस्वामी, राजनंदनी, अंकुर परसाई, अभिमन्यु पुरोहित, हिना अली ख़ान, जितेन्द्र राठौर, सचिन पुरोहित, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी, परी पुरोहित ने बाहर से पधारे सभी अतिथियों का आभार व्यक्त किया।

इन्होंने लगाए कार्यक्रम में चार चाँद

श्री अनिल पालीवाल ने कार्यक्रम में शामिल हुए सम्मानितजनों और अतिथियों को सीहोर के स्मृति चिह्न के रूप में यहाँ का प्रसिद्ध शरबती गेहूँ प्रदान करने का अभिनव प्रयोग किया। क्रीसेंट समूह ने इस पूरे कार्यक्रम के वेन्यू पार्टनर के रूप में जुड़ कर हमें अपूर्व सहयोग प्रदान किया। पूरी व्यवस्थाओं में यहाँ के स्टॉफ़ का भरपूर सहयोग शिवना प्रकाशन को प्राप्त हुआ। श्री मिथुन और श्री राजेश के साथ सभी ने सहयोग दिया। श्री अभिमन्यु पुरोहित तथा श्री ध्रुव ने कार्यक्रम का सोशल मीडिया पर प्रचार-प्रसार करने का दायित्व एक माह पूर्व से उठाया तथा कार्यक्रम की पूरी फोटोग्राफ़ी तथा वीडियोग्राफ़ी का सुंदरता से संयोजन किया। श्री मोंटी राठौर ने पूरे कार्यक्रम में बहुत अच्छी साउंड तथा लाइट की व्यवस्थाएँ की। श्री जितेंद्र कुशवाह ने कार्यक्रम में सुंदरता से पुष्प सज्जा की। श्री जितेंद्र राठौर ने बहुत अच्छे से कार्यक्रम के ग्राफ़िक्स बनाने का कार्य एक माह पूर्व से किया। श्री प्रहलाद प्रजापति ने लोक गायन से कार्यक्रम की गरिमा में चार चाँद लगाये। श्री यश यादव तथा श्री मोजामिल का कार्यक्रम में संगीत की प्रस्तुति प्रदान की। मालवा का भोजन अतिथियों के लिए तैयार किया श्री दिलीप प्रजापति ने।

कार्यक्रम के पश्चात् रात्रिभोज में अतिथियों ने मालवा के स्वादिष्ट व्यंजनों का आनंद उठाया।

000

मालवा का स्वाद, सीहोर की महक और शिवना की तहज़ीब वाह क्या बात है!

- यशोधरा भटनागर

31 मार्च 2024 की सुरमई शाम को शिवना अंतर्राष्ट्रीय साहित्य समागम एवं अलंकरण कार्यक्रम का आग़ाज़ हुआ। सुप्रसिद्ध कबीर गायक श्री प्रहलाद प्रजापति एवं मंडली के भजनों द्वारा शुरुआत हुई। प्रत्येक भजन की समाप्ति पर क्रीसेंट रिसोर्ट का भव्य लीसो हॉल श्रोताओं की करतल ध्वनि से गुंजित होता रहा। मुख्य कार्यक्रम निर्धारित समय पर सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं मखमली आवाज़ के धनी श्री पंकज सुबीर द्वारा अतिथियों के मंच पर आमंत्रित किए जाने के साथ आरंभ हुआ। अतिथि परिचय एवं संबोधनों के पश्चात् बहुप्रतिक्षित अलंकरण समारोह एवं कृति सम्मान का सिलसिला आरंभ हुआ। इस दौरान साहित्य जगत् के दैदीप्यमान नक्षत्रों तथा डॉ. प्रेम जनमेजय, श्री महेश कटारे, गीताश्री, यतींद्र मिश्र व श्री हरि भटनागर को देखने और सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उपस्थित साहित्यकार एवं गणमान्य जन दो पुस्तकों के विमोचन के साक्षी भी बने। कार्यक्रम के अंत में ढींगरा फैमिली फाउंडेशन की वाइस प्रेसिडेंट व सेक्रेटरी सुधा ओम ढींगरा ने 'शिवना साहित्य प्रकाशन' से संबंधित महत्त्वपूर्ण घोषणाओं के साथ अपना उद्‌बोधन पूर्ण किया। और अंत में मालवा के सुस्वादु भोजन का आनंद ले कर शिवना साहित्य प्रकाशन से पंकज सुबीर से शहरयार से और उनकी पूरी टीम से फिर मिलने का वादा कर, शानदार कार्यक्रम की स्मृतियों के साथ सीहोर से विदा ली। वाह सीहोर क्या ख़ूब बुलाया आपने!

000

सीहोर के सिर शिवना का सेहरा

- गोविंद शर्मा

शरबती और शिवना सीहोर के पर्याय बन गए हैं। फसल गेहूँ की हो या शब्दों की बारहमास लहलहा रही है। बैशाखी की तरह शिवना सम्मान भी पर्व की तरह साहित्यिक बिरादरी में मनाया जा रहा है।

वित्तीय वर्ष के अंतिम छोर पर रविवार की तपती दोपहर में खंडवा से सीहोर की यात्रा मित्रों के साथ आरंभ की। शिवना सम्मान समारोह में शामिल होने का पहला अवसर था। सोच थी सूबे के मझले आकार के क़स्बों में होने वाले आम साहित्यिक आयोजनों की तरह एक और आयोजन में शामिल होने जा रहे हैं।

हमारा अनुभव बिलकुल भिन्न था। रवानगी से कुछ पलों बाद ही भाई शहरयार ने हमारी लोकेशन लेना आरंभ कर दिया। माह रमज़ान में निराहार शहरयार रास्ते भर हमारी फिक्र करते रहे.. कुछ खाया कि नहीं। जल्द पहुँचें। सीहोर आयोजन स्थल पर तमाम व्यस्तताओं के बावजूद शहरयार मुख्य द्वार पर स्वागत के लिए मौजूद थे। सामान की सुध लेने सहायक भी थे। स्वागत द्वार पर खड़ी बैटरी चालित गाड़ी स्विमिंग पूल के किनारे किनारे क्रिसेंट रिसोर्ट के मुख्य भवन तक ले गई। तीखी गर्मी में हरियाली देख आँखें तृप्त हो गई। कमरे में पहुँचे नहीं कि पानी की बोतलें हाज़िर।

कार्यक्रम स्थल लीज़ो हॉल के बाहर टीम शिवना ऐसे स्वागत कर रही थी मानों बारातियों की अगवानी की जा रही हो। इतना काफी न था, हॉल के अंदर खुद पंकज सुबीर शानदार शेरवानी में सजे मेहमानों का स्वागत कर रहे थे।

बढ़िया बैठक व्यवस्था के बीच शीतल पेय और अल्पाहार का दौर अनवरत चलता रहा। भव्य मंच पर दिव्य सजावट की चकाचौंध वाह करने को मजबूर कर रही थी। नौकरी के दौरान कई सितारा होटलों में बड़े कार्यक्रमों का हिस्सा बने, वहाँ आत्मीयता ग़ायब रहती थी।

दृष्टि दिव्यांग कबीर गायक ने धीरे-धीरे राम गाड़ीवाले का आह्वान कर कार्यक्रम का आगाज किया। फिर तो कार्यक्रम की गाड़ी चल पड़ी। संचालन की बागडोर पंकज सुबीर के हाथों में थी। मंच और श्रोताओं के बीच कोई फासला न था। सूत्रधार बातचीत की शैली में सम्मान समारोह को सूत्र में बाँधे जा रहे थे। गरिमामय सम्मान समारोह और

अर्थवान् उद्बोधनों के बाद मालवा के उत्तरी प्रवेश द्वार सीहोर के क्रिसेंट रिसोर्ट के खुले मैदान में सुस्वादु भोजन का भर पेट आनंद लिया। रात गहरा रही थी, हमें वापस खंडवा लौटना था। समारोह की मीठी-मीठी यादें लिए वापसी हुई। आयोजक मित्रों को चलने से पहले धन्यवाद ज्ञापित नहीं कर पाए। क्यों करें, वे भी तो हमारे अपने ही हैं।

शिवना पूरा परिवार है

- ज्योति जैन

परिवार क्या होता है या परिवार का होना क्या होता है यह वह ही जान सकता है या वह ही इसके महत्त्व को समझ सकता है जो कि इससे जुड़ा होता है। परिवार शब्द जब हम ज़ेहन में लाते हैं तो सबसे पहले तो रक्त संबंधी परिवार ही ध्यान में आता है। फिर नये रिश्तों के गठबंधन वाला परिवार होता है। और कुछ स्नेहिल धागों में बँधा हुआ परिवार होता है। यहाँ मैं जिस परिवार की बात कर रही हूँ वह परिवार शब्दों से बँधा हुआ परिवार है।

जी हाँ....! शिवना परिवार शिवना नदी की तरह ही ढेर सारे शब्दों की बाढ़ वाला परिवार है। तो कभी बाढ़ का पानी उतरने पर उथली नदी में पड़े गोल-गोल पत्थरों वाले शब्दों से बँधा परिवार।

शिवना परिवार से जब से जुड़ी हूँ हमेशा लगता है यह एक अनोखा ही परिवार है। बिना डोर से बँधे हुए हैं सारे रिश्ते, ना ही किसी से कुछ लेने की उम्मीद ना ही कुछ पाने की ख्वाहिश।

यही तो परिवार का महत्त्व है। इन्हीं अनदेखी डोर से बँधे रिश्तों में बँधे पंकज भैया और शहरयार जब इंदौर आते हैं और कहते हैं की शिवना साहित्य समागम में तो आपको आना ही है। एक अलग तरह का आग्रह और एक ऐसा आग्रह कि स्वास्थ्य ठीक ना होने के बावजूद मैं अपने पतिदेव शरद जी के साथ वहाँ चली जाती हूँ।

दिल से बँधे हुए रिश्ते हैं शायद इसीलिए। और वैसे भी इस बार टैग लाइन भी यही थी 'सीहोर बुला रहा है...' तो अब सीहोर बुला रहा है तो सीहोर तो आना ही है। तो बस जैसे ही सीहोर पहुँचे बाहर ही शहरयार मिल गए।

शरद जी ने परिहास में कहा भी कि अच्छा ही हुआ लेने आ गए वरना मैं तो जीजा हूँ बाहर ही ग़ुस्से से खड़ा रहता। ख़ैर, ये परिहास था। इस तरह क्रिसेंट में कदम रखा, पहली बार ही।

शहरयार का कहना था कार्यक्रम हम 7:30 बजे आरंभ कर लेंगे।

शिवना साहित्य समागम जैसे आयोजन का एक बड़ा लाभ है। जिन्हें हम सतत पढ़ते रहते हैं या ग्रुप में जिनकी बातचीत चलती रहती है उनसे रू-ब-रू मिल लेना। कुछ कुछ ऐसा लगता है जैसे घर में मांगलिक प्रसंग हो और उस प्रसंग में जाने का यह लालच भी रहता है कि सारे रिश्तेदारों से मिलना हो जाएगा। वरना आजकल कहाँ किसी को इतनी फुर्सत होती है कि एक दूसरे के घर जाए। तो शिवना साहित्य समागम भी इस तरह का ही आयोजन था कि सब लोगों से मिलने का लालच था।

सबसे पहले तो गीताश्री दीदी मिल गईं। उनसे क्योंकि पूर्व में भी मुलाकात हो चुकी है, इंदौर आ चुकी हैं। वह मुझे वरिष्ठ हैं और मैं उनका बहुत सम्मान करती हूँ इसीलिए मैं उनको गीता दीदी कहती हूँ, लेकिन बहन से ज़्यादा सखी सा अपनत्व उनसे पाया है। उन्हें देखते ही उनसे गले मिलने का मन हुआ और हम उसी तरह मिले। वह भी बहुत ख़ुश हुईं।

पारुल से भी इस समागम में पहली बार मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। बहुत अच्छी लेखिका के साथ ही वे एक बहुत अच्छी इंसान हैं।

इस तरह सब लोगों से मिलते हुए नीचे आयोजन जहाँ था उस हाल में पहुँच गए। हाल के गेट पर शिवना प्रकाशन के लोगों की खूबसूरत रंगोली बनी हुई थी पता चला वह आकाश जी की धर्मपत्नी शिवानी माथुर के द्वारा बनाई गई थी। तब तक मेरी मित्र स्मृति और शैली भी आ चुकी थीं। कई लोग थे जिन्हें हमेशा पढ़ा तो है, लेकिन मुलाकात नहीं हुई सो सबसे मुलाकात हुई। हरी भटनागर जी, निलेश रघुवंशी जी और जब यतींद्र मिश्र जी आए तो उनसे मिलना भी बहुत सुखद रहा। क्योंकि उन्हें विभिन्न लेखों के माध्यम से तो जानती ही थी साथ ही हर हफ्ते उन्हें नईदुनिया

में पढ़ना बेहद सुखद रहता है। उनसे रू-ब-रू मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम में खंडवा और देवास से आए साहित्यकारों से मेल मिलाप का सिलसिला जारी रहा। अच्छा लगा और अच्छा यह भी हुआ कि जल्दी ही हाल में पहुँच गए, ताकि सबसे मुलाकात हो गई क्योंकि एक बार कार्यक्रम प्रारंभ होने के बाद बातचीत थोड़ी मुश्किल हो जाती है।

7:00 बजे लोक गायक प्रह्लाद प्रजापति ने अपनी टीम के साथ सुमधुर वाणी में कबीर गायन शुरू किया। आश्चर्य होता है कि... नहीं.. नहीं.. आश्चर्य नहीं होता, ऊपर वाले पर विश्वास और प्रगाढ़ हो जाता है जब हम देखते हैं कि ऊपर वाले ने कोई एक कमी दी है तो किसी दूसरी विशेषता से नवाज़ देता है।

झोली का एक हिस्सा ख़ाली रखा तो दूसरा इतना समृद्ध कर दिया कि लोगों को आपसे ईर्ष्या होने लगे। इन कबीर गायक के साथ भी यही हुआ। आँखों की रोशनी नहीं थी, लेकिन स्वर इतना समृद्ध था कि दूसरों के जीवन में रोशनी भर दे। तभी तो ऊपर वाले के प्रति आस्था से सर अपने आप झुक जाता है।

जैसे की उम्मीद थी कि कार्यक्रम समय पर शुरू हो जाएगा... वह तो नहीं हुआ। लेकिन ये बात अच्छी थी की बहुत ज़्यादा लेट नहीं हुआ।

ये पंकज भैया का ही मैनेजमेंट है कि मंच पर सिर्फ तीन लोग ही विराजित थे और ये भी उन्हीं का प्रताप है, उन्हीं का स्नेह है, उन्हीं का मान है कि संतोष चौबे जी, मुकेश वर्मा जी, पलाश सुरजन जी जैसे वरिष्ठ साहित्यकार मंच पर न होकर सामने की पंक्ति में थे। मंच पर सिर्फ गीताश्री, प्रेम जनमेजय जी और महेश कटारे थे। चूँकि संचालन पंकज भैया का था, प्रोग्राम बहुत सहज और सरलता के साथ चलता रहा। जैसे कोई लहर आराम से बह रही हो और साथ ही साथ श्रोता और दर्शकों को भी अपने साथ लिए जा रही है।

सभी के उद्‌बोधन का केंद्र बिंदु वैसे तो शिवना ही था लेकिन प्रेम जनमेजय जी की एक बात मुझे बड़ी अच्छी लगी..., उनका कहना था कि यह सब कन्हैया हैं, यानी पंकज

जी, शहरयार, आकाश, सनी... ये सब कान्हा है। मुझे चंद पल लगे समझने में कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा है। और मेरे शहर में वह भजन आ गया... कि मेरा आपकी कृपा से सब काम हो रहा है.... करते हो तुम कन्हैया मेरा नाम हो रहा है। कितने सुंदर भाव थे और यह भाव इतने सुंदर तो होना ही थे, क्योंकि कार्यक्रम शिवना के मंच पर हो रहा था।

शिवना सम्मान का सिलसिला शुरू हुआ और विमोचन पर समाप्त हुआ। शिवना कृति सम्मान प्रदान किए गए और दो पुस्तकों के विमोचन के संक्षिप्त आयोजन ने अपनी गरिमा और अपनेपन से इस आयोजन को बहुत विशाल बना दिया था। निश्चित रूप से इसका श्रेय पंकज सुबीर और उनकी पूरी टीम को है। भविष्य में तरह के समागम उत्तरोत्तर उन्नति करेंगे। ये विश्वास है और ये विश्वास इसलिए है क्योंकि शिवना अकेला नहीं.... शिवना पूरा परिवार है।

समय से 15 मिनट देरी से समाप्त हुए आयोजन के पश्चात् सुस्वादु भोजन के साथ सबसे मिलना जुलना और गपशप हुई और सबसे विदा लेकर हम चल पड़े पुनः इंदौर की ओर....।

000

टीम का संयोजन बेजोड़

- रणविजय राव

रविवार, 31 मार्च को मध्यप्रदेश में भोपाल के निकट सीहोर में आयोजित शिवना प्रकाशन के अलंकरण समारोह में भागीदारी का अवसर मिला। शिवना के शहरयार और आकाश माथुर की टीम का संयोजन बेजोड़ रहा। कार्यक्रम के अंत में वरिष्ठ साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा द्वारा कई अन्य सम्मानों की घोषणा की गई जो अत्यंत सराहनीय है। इस विशिष्ट आयोजन में दिल्ली, भोपाल, ग्वालियर, इंदौर, उज्जैन, देवास, खंडवा तथा अन्य जगहों से साहित्यकारों की बड़ी संख्या में उपस्थिति रही। वरिष्ठ साहित्यकार संतोष चौबे, मुकेश वर्मा, कैलाश मंडलेकर, यशोधरा भटनागर, मनीष वैद्य, शैलेंद्र शरण आदि साहित्यकारों से मिलना सुखद रहा।

000

आप गए थे पुस्तक मेले में...?

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल- 9977855399
ईमेल- subeerin@gmail.com

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में भले ही एक दिन के लिए जाएँ, पर जाना ज़रूर चाहिए। एक तो यह होता है कि अपने महान् होने के बारे में जो भ्रम होता है, वह न केवल टूट जाता है बल्कि चूर-चूर हो जाता है। दूसरा यह कि भाँति-भाँति के चरित्रों से, भाँति-भाँति की घटनाओं से रू-ब-रू होने का मौक़ा मिलता है। अपने महान् होने के बारे में जो भ्रम होता है, वह इसलिए टूट जाता है कि यह पुस्तक मेला है, और आप लेखक हैं, मतलब यह आपका ही मेला है, मगर इसके बाद भी आपको कोई नहीं पहचानता। जो लेखक हैं, वे तो आपको पहचान लेंगे, उसमें कोई बड़ी बात नहीं है, वे तो आपके पूर्व परिचित हैं मगर उसके अलावा कोई नहीं पहचानता। ऐसा बिलकुल नहीं होता कि कोई मेले में विचरण करता कोई अपरिचित अचानक आपको देखे और प्रसन्नता के साथ आपके पास आए। आपके साथ सेल्फ़ी खिंचवाए और उसे सोशल मीडिया पर पोस्ट करे। न... ऐसा बिलकुल नहीं होगा। पुस्तक मेले में घुसते समय आप महान् होते हैं, कुछ तो भगवान् भी होते हैं, लेकिन पुस्तक मेले से निकलते समय आप केवल इंसान ही होते हैं। उसके बाद आप एक साल तक इंसान ही बने भी रहते हैं। एक साल बीतते न बीतते आप धीरे-धीरे एक बार फिर महान् बनना प्रारंभ हो जाते हैं, फिर पुस्तक मेला आ जाता है, जाइए और बूस्टर डोज़ लगवा आइए, इंसान हो जाइए। पुस्तक मेले में आपको भाँति-भाँति के लोगों और घटनाओं से रू-ब-रू होने का मौक़ा भी मिलता है। जैसे किसी स्टॉल पर कोई विमोचन चल रहा था, मैं भी आमंत्रित विमोचनकर्ताओं में शामिल था। अचानक दूर से एक लगभग साहित्यिक सज्जन (साहित्यिक इसलिए कि साहित्य के कार्यक्रमों में मिलते रहते हैं, लगभग इसलिए कि उनका कुछ भी लिखा हुआ मेरी नज़र से आज तक नहीं गुज़रा।) ने यह विमोचन का विहंगम दृश्य देखा। वे आंमत्रित विमोचनकर्ता नहीं थे, मगर इस पूरे दृश्य को देख कर उनकी आँखों में एक ख़ूनी चमक (ख़ूनी...? असल में इससे बेहतर कोई विशेषण मिल नहीं रहा मुझे) आ गई। उन्होंने वहीं से पदड़म-पदड़म दौड़ लगा दी। उनकी दौड़ देख कर विचरण कर रहे लोग भौंचक्के रह गए कि कहीं आग तो नहीं लग गई पुस्तक मेले में। मगर उनकी मंज़िल तो विमोचन का मंच था। (वैसे स्टॉल में कोई मंच नहीं होता, जो स्टॉल के अंदर है, वह मंच पर है और जो स्टॉल के बाहर खड़ा है वह श्रोता है।) कार्यक्रम स्टॉल पर पहुँच कर उन्होंने पहले बाहर खड़े श्रोताओं को धकिया कर जगह बनाई, फिर अंदर पहुँच कर मंचासीन अतिथियों में। अतिथि वैसे ही छोटे से स्टॉल में ठुसम-ठुस टाइप से खड़े हुए थे, और यह थोड़े भारी-भरकम भी थे, इसलिए इनके आने के बाद एक-दो आमंत्रित अतिथि (जिनमें मैं भी था) आगे की पंक्ति से अपने आप पीछे हो गए। पीछे जगह तो थी नहीं, इसलिए जैसे-तैसे पीछे रखी किताबों के बीच जगह बना कर, एक पैर हवा में उठाए खड़े रहे। जब भी फ़ोटो खिंचता तो शुतुरमुर्ग की तरह गर्दन को लम्बी कर के फ्रेम में आने का प्रयास करते रहे। विमोचन के बाद जब भाषण की बारी आई तो इन्होंने स्वयं ही संचालक से माइक अपने हाथ में ले लिया और उसके बाद ये इतना बोले कि बाक़ियों के बोलने के लिए समय ही नहीं बचा। अपना भाषण समाप्त कर ये तुरंत यह जा-वह जा हो गए अगले किसी मंच की तलाश में। पुस्तक मेले में सबसे मज़ेदार होता है यह देखना कि पिछले पुस्तक मेले में कौन लेखक / लेखिका किसी लेखक / लेखिका का ख़ास दोस्त होता था, या कट्टर दुश्मन होता है और इस पुस्तक मेले में रिलेशनशिप स्टेटस क्या है ? अमूमन एक साल बीतते न बीतते यह स्टेटस अक्सर ही बदल चुका होता है। पिछले मेले में जो एक-दूसरे को गालियाँ दे रहे थे, वे इस बार गलबहियाँ डाले साथ घूमते नज़र आते हैं तथा पिछली बार के दोस्त इस बार दुश्मन हो चुके होते हैं। ऐसी बहुत सी बाते हैं, जो पुस्तक मेले में आपको देखने / सीखने को मिल सकती हैं। मगर उसके लिए आपको पुस्तक मेले में आना पड़ेगा और भीड़ में खड़े होकर देखना पड़ेगा सारा तमाशा। आप गए थे पुस्तक मेले में या नहीं...? **सादर आपका ही**

पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

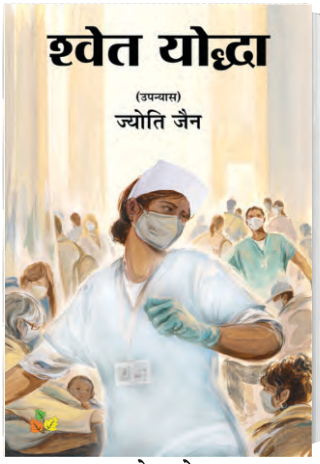

श्वेत योद्धा
उपन्यास
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

ऐ वहशते-दिल क्या करूँ
उपन्यास
लेखक - पारुल सिंह
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

टूटी पेंसिल
कहानी संग्रह
लेखक - हंसा दीप
मूल्य- 300 रुपये, वर्ष- 2024

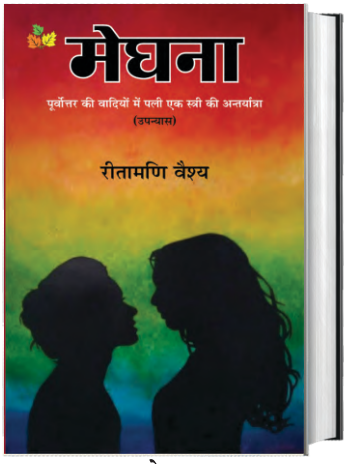

मेघना
उपन्यास
लेखक - रीतामणि वैश्य
मूल्य- 400 रुपये, वर्ष- 2024

पीली पर्ची
कहानी संग्रह
लेखक - शिवेन्दु श्रीवास्तव
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

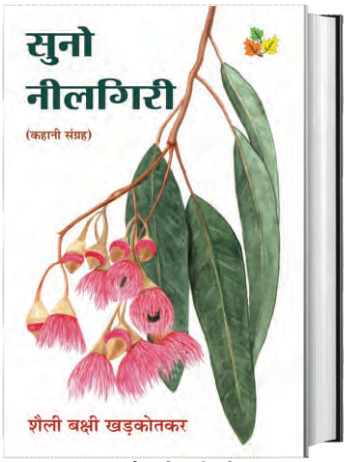

सुनो नीलगिरी
कहानी संग्रह
लेखक - शैली बक्षी खड़कोतकर
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

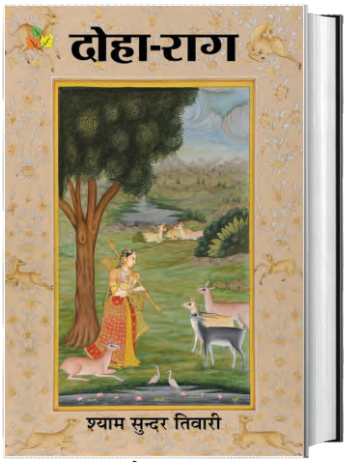

दोहरा राग
दोहा संग्रह
लेखक - श्याम सुन्दर तिवारी
मूल्य- 200 रुपये, वर्ष- 2024

कुछ चेहरे कुछ यादें
रेखाचित्र संग्रह
लेखक - ज्योति जैन
मूल्य- 175 रुपये, वर्ष- 2024

व्यंग्य के नेपथ्य - 2
आलोचना
संपादक - प्रेम जनमेजय
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

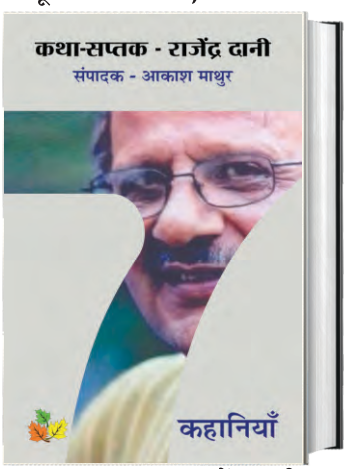

कथा सप्तक - राजेंद्र दानी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

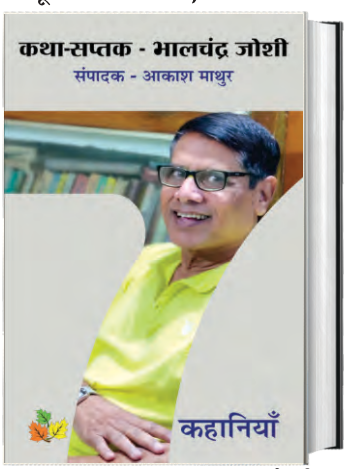

कथा सप्तक - भालचंद्र जोशी
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 250 रुपये, वर्ष- 2024

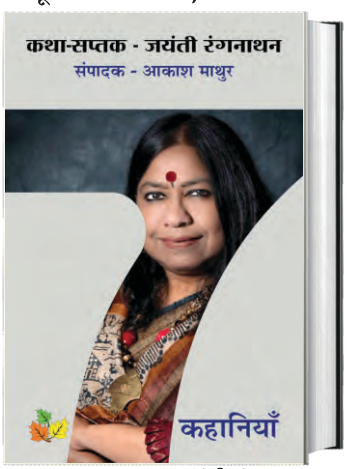

कथा सप्तक - जयंती रंगनाथन
कहानी संग्रह
संपादक - आकाश माथुर
मूल्य- 150 रुपये, वर्ष- 2024

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 2-8, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फ़ोन- 07562405554, 07562490372
मोबाइल- +91-9806162184 (शहरयार), +91-6265665580
व्हाट्सएप- +91-8959446244, ईमेल- shivna.prakashan@gmail.com
वेबसाइट- www.shivnaprakashan.com

Gmail Email- shivna.prakashan@gmail.com
+91-8959446244 https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
https://www.amazon.in/s?me=A17JJYGSVM2CEV

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकों का विमोचन

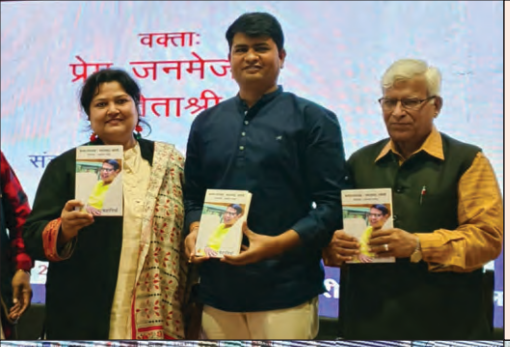

नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकों का विमोचन

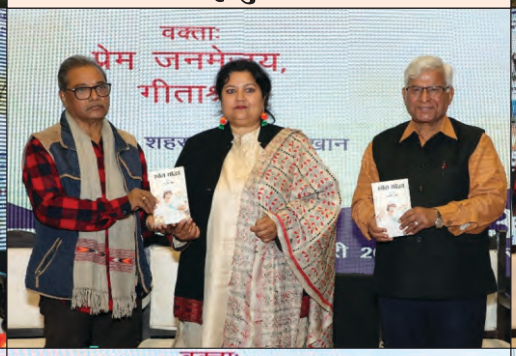

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2022-23 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह। अतिथिगण- पंडित अजय पुरोहित, समाजसेवी श्री अखिलेश राय, डॉ. विजय सक्सेना, श्री अनिल पालीवाल तथा श्री कैलाश अग्रवाल।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-490372, Mobile 09806162184, 08959446244 07828313926

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।